उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श

Course Code: M23HD10DC

Discipline Core Course

Postgraduate Programme in

Hindi Language and Literature

SGOU

SELF LEARNING MATERIAL

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University of Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

SGOU

उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श

Course Code: M23HD10DC

Semester-III

Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature
Self Learning Material
(with Model Question Paper Sets)

SGOU

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श

Course Code: M23HD10DC
Semester- III
Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature
for PG Programmes

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

Academic Committee
Dr. Jayachandran R.
Dr. Pramod Kovvaprath
Dr. P.G. Sasikala
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. R. Sethunath
Dr. Vijayakumar B.
Dr. B. Ashok

Development of Content
Dr Reshma P.P.

Review and Edit
Dr. Anagha A.S.
Dr. Sophia Rajan

Linguistics
Dr. Anagha A.S.
Dr. Sophia Rajan

Scrutiny
Dr. Sudha T.
Dr. Indu G. Das
Dr. Krishna Preethy A.R.
Christina Sherin Rose K.J.

Design Control
Azeem Babu T.A.

Cover Design
Lisha S.

Co-ordination

Director, MDDC :
Dr. I.G. Shibi
Asst. Director, MDDC :
Dr. Sajeevkumar G.
Coordinator, Development:
Dr. Anfal M.
Coordinator, Distribution:
Dr. Sanitha K.K.

Scan this QR Code for reading the SLM on a digital device.

Edition:
January 2025

Copyright:
© Sreenarayanaguru Open

ISBN 978-81-985080-0-3
9 788198 508003

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University. Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

Visit and Subscribe our Social Media Platforms

MESSAGE FROM VICE CHANCELLOR

Dear learner,

I extend my heartfelt greetings and profound enthusiasm as I warmly welcome you to Sreenarayanaguru Open University. Established in September 2020 as a state-led endeavour to promote higher education through open and distance learning modes, our institution was shaped by the guiding principle that access and quality are the cornerstones of equity. We have firmly resolved to uphold the highest standards of education, setting the benchmark and charting the course.

The courses offered by the Sreenarayanaguru Open University aim to strike a quality balance, ensuring students are equipped for both personal growth and professional excellence. The University embraces the widely acclaimed "blended format," a practical framework that harmoniously integrates Self-Learning Materials, Classroom Counseling, and Virtual modes, fostering a dynamic and enriching experience for both learners and instructors.

The university aims to offer you an engaging and thought-provoking educational journey. Major universities across the country typically employ a format that serves as the foundation for the PG programme in Hindi Language and Literature. Given Hindi's status as a widely spoken language throughout India, its pedagogy necessitates a particular focus on language skills and comprehension. To address this, the University has implemented an integrated curriculum that bridges linguistic and literary elements. The learner's priorities determine the endorsed proportion of these elements. Both the Self Learning Materials and virtual modules are designed to fulfil these requirements.

Rest assured, the university's student support services will be at your disposal throughout your academic journey, readily available to address any concerns or grievances you may encounter. We encourage you to reach out to us freely regarding any matter about your academic programme. It is our sincere wish that you achieve the utmost success.

Regards,
Dr. Jagathy Raj V. P.

01-04-2025

Contents

BLOCK 01: उत्तर- आधुनिकता की अवधारणा........ 1

इकाई 1: आखिर क्या है उत्तर-आधुनिकतावाद?........ 2

इकाई 2: उत्तर-आधुनिकता का आरंभ........ 11

इकाई 3: उत्तर-आधुनिकता की परिभाषा........ 16

इकाई 4: आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता एक अधूरी बहस........ 21

BLOCK 02: विमर्शों की सैद्धांतिकी........ 28

इकाई 1: रोला बार्थ-संरचनावाद........ 29

इकाई 2: जॉक देरीदा-विखंडनवाद........ 40

इकाई 3: जां बौद्रीआ-छलना सिद्धांत........ 48

इकाई 4: जां फ्रास्वा ल्योतार-महाआख्यान का अंत........ 57

इकाई 5: मिशेल फूको-विमर्श सिद्धांत, नव इतिहासवाद........ 63

इकाई 6: फ्रेड्रिक जेमेसन-वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क........ 70

इकाई 7: एडवर्ड सईद-प्राच्यवाद........ 83

इकाई 8: गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक-कैन दि सबाल्टर्न स्पीक........ 92

BLOCK 03: भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद........ 100

इकाई 1: हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़........ 101

इकाई 2: भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद........ 107

इकाई 3: उत्तर-आधुनिकतावाद पर आक्षेप........ 113

इकाई 4: अध्ययन के नवीन विषय........ 119

BLOCK 04: हिन्दी कथा साहित्य में उत्तर-आधुनिक शिल्पगत प्रयोग........ 134

इकाई 1: हिन्दी उपन्यास और उत्तराधुनिकता के बदलते संदर्भ........ 135

इकाई 2: 'तिरिछ' कहानी - उदय प्रकाश, तिरिछ कहानी में शिल्पगत प्रयोग, जादुई यथार्थवाद : अर्थ, परिभाषा, अवधारणा और आवश्यक तत्व........ 152

इकाई 3: संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में........ 161

इकाई 4: किन्नर विमर्श – मिथकों से अधिकारों तक........ 169

Model Question Paper Sets........ 195

01

BLOCK

उत्तर-आधुनिकता की अवधारणा

Block Content

Unit 1 आखिर क्या है उत्तर-आधुनिकतावाद?

Unit 2 उत्तर-आधुनिकता का आरंभ

Unit 3 उत्तर आधुनिकता की परिभाषा

Unit 4 आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता एक अधूरी बहस

इकाई 1

आखिर क्या है उत्तर-आधुनिकतावाद?

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आधुनिकता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से अवगत होता है
- उत्तर-आधुनिकतावाद पदबंध को समझता है
- उत्तर- आधुनिकतावाद को एक सिद्धांत के रूप में जानता है
- उत्तर - आधुनिकतावाद की अवधारणा को समझता है

Background / पृष्ठभूमि

जिस तरह आधुनिकता को अक्सर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में माना जाता है, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान यूरोपीय समाज की भौतिक स्थितियों को बदल दिया, उसी तरह उत्तर-आधुनिकता को अक्सर बीसवीं सदी के अंत में पूँजीवाद के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिकता का ऐतिहासिक काल, जो अठारहवीं सदी के मध्य से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक फैला हुआ है, औद्योगिक पूँजीवादी बुनियादी ढांचे और उत्पादन के साधनों—जैसे रेलवे, ऑटोमोबाइल, हवाई परिवहन, बिजली और टेलीफोनिक संचार—के विकास का साक्षी रहा। इसने शहरों के विकास और आधुनिकीकरण, सार्वजनिक विद्यालयों, अस्पतालों और जेलों के विस्तार तथा सामाजिक जीवन के नियमन के लिए नौकरशाही और तर्कसंगत प्रक्रियाओं के विकास को भी देखा। 'आधुनिकतावाद' शब्द का उपयोग आमतौर पर एक कलात्मक संवेदनशीलता को संदर्भित करने के लिए किया जाता है, जो नवाचार और परिवर्तन को अपनाता है। आधुनिक होने का अर्थ है, क्रियाशीलता के प्रति वीरतापूर्ण प्रतिबद्धता और आत्म-परिवर्तन के साथ-साथ कलात्मक उत्पादन के साधनों में क्रांतिकारी बदलाव लाना। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में, आधुनिकता का तात्पर्य विभिन्न कलाओं की शैलियों और रूपों के साथ प्रयोग करने से था। आधुनिकतावाद औद्योगिक युग का उत्पाद था। उस युग की विशेषता यह थी कि व्याख्या एवं अभिव्यक्ति की पारंपरिक पद्धतियों का स्थान तर्क और विज्ञान ने ले लिया। तर्क और विज्ञान की मौलिक प्रवृत्ति महाआख्यानों (grand narratives) और सिद्धांतों को सूत्रबद्ध करना है। आधुनिकतावाद की प्रकृति इन्हीं कारणों से अत्यधिक केंद्रीकृत और एकरूपी (monolithic) है, जिससे गौण पहचानों और स्वरों का दमन होता है। आधुनिकतावाद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह सत्य के एकमात्र अर्थ की धारणा को स्वीकार करता था। हालांकि, बीसवीं सदी में आधुनिकतावाद द्वारा उत्पादित तार्किक और वैज्ञानिक चिंतन पद्धति तथा उससे उत्पन्न आत्मविश्वास की जड़ें हिलने लगीं। शांति और सद्भाव के समय के विपरीत, इस युग ने इतिहास के दो

सबसे विनाशकारी युद्धों का सामना किया। विज्ञान में अंध आस्था को भी कई कारणों से जबरदस्त झटके लगे। आधुनिकता के वादों के प्रति गहरी निराशा और विज्ञान एवं इतिहास की दोहरी प्रवृत्ति के प्रति जागरूकता ने कई विचारकों को उन आधारों पर प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया, जिन पर आधुनिक काल की नींव रखी गई थी। ये विश्व-परिवर्तनकारी घटनाएँ और चिंतन प्रणालियाँ ही थीं, जिन्होंने आधुनिकता द्वारा निर्मित आत्मविश्वास, आशावाद और यूरोप-केंद्रित विश्वदृष्टि को चुनौती दी। इसी पृष्ठभूमि में उत्तर-आधुनिकतावाद का उदय हुआ, जिसे आधुनिकतावाद के प्रभुत्व के विरुद्ध एक तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में देखा जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

समकालीन, महाआख्यान, पूँजीवाद, आधुनिकतावाद, औद्योगिक क्रांति, सैध्दान्तिक-संवाद, औद्योगीकरण, नवाचार, विश्वदृष्टि, प्रभुत्व

Discussion / चर्चा

1.1 भूमिका

- वर्तमान में होना या अपने समय में अवस्थित होना 'आधुनिक' होने की पहचान है।

सामान्य समझ के अनुसार, वर्तमान में उपस्थित होना या अपने समय में अवस्थित होना आधुनिकता की पहचान है। यहाँ 'समकालीन' और 'आधुनिक' शब्दों के अर्थों में भेद जानना अनिवार्य है। 'समकालीन' वह है, जो हमारे समय में घटित हो रहा है; यह समय एवं इतिहास से जुड़ी हुई परिघटना है। लेकिन जो कुछ समकालीन है, वह आधुनिक भी हो, यह आवश्यक नहीं है।

'परंपरा और आधुनिकता' नामक निबंध में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिकता के तीन लक्षण बताए हैं—

- ऐतिहासिक दृष्टि
- मनुष्य को इस दुनिया में सभी प्रकार की भीतियों और पराधीनता से मुक्त करके सुखी बनाने का आग्रह
- व्यष्टि मानव के स्थान पर संपूर्ण मानव समाज की कल्याण-कामना।

इस प्रकार, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक दृष्टि, इहलौकिकता (इस लोक से संबंधित विचार) और मुक्ति की सामूहिक चेतना को आधुनिकता के प्रमुख लक्षणों के रूप में स्वीकार किया है। आधुनिकता के दौर में, यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से पाश्चात्य पुनर्जागरण के बाद की अवधि को देखें, तो हमें विज्ञान के अध्येता में एक ऐसे नायक की छवि दिखती है, जो वस्तुनिष्ठ दृष्टि से जगत की खोज करना चाहता था। वह इसके नियमों को उद्घाटित कर घटनाओं की भविष्यवाणी करने के लिए तत्पर था और

निरपेक्ष अंतिम सत्य की खोज में संलग्न था। यह एक वास्तविकता है कि औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) और भौतिक वैज्ञानिक प्रगति की उपलब्धियों ने सभी देशों को अपने सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों को उसी के अनुरूप नियोजित करने के लिए प्रेरित किया।

1.1.1 आधुनिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

- यूरोप में 476 ई से 1453ई तक के युग को अंधकार युग कहा गया।

आधुनिकता से पूर्व यूरोप के इतिहास में (476 ई. से 1453 ई.) तक के कालखंड को अंधकार युग कहा जाता है। इस काल में यूरोप आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक रूप से जड़ता की स्थिति में था। इस युग के अंत का एक महत्वपूर्ण पड़ाव 1453 ई. में कुस्तुनतुनिया (कॉन्स्टेंटिनोपल) पर ऑटोमन तुर्कों का अधिकार था। यह नगर यूरोप और एशिया के बीच स्थित होने के कारण व्यापारिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। तुर्कों के आधिपत्य के कारण यूरोपीय व्यापार मार्ग बाधित हो गए, जिससे यूरोप की आर्थिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह घटना न केवल एक व्यापारिक संकट थी, बल्कि यह एक बड़े सभ्यता संघर्ष का प्रतीक भी बनी।

- क्रिस्टोफर कोलंबस ने भारत पहुँचने के प्रयास में 1492 ई. में अमेरिका की खोज की।

ऑटोमन तुर्कों द्वारा समुद्री मार्गों के नियंत्रण के कारण यूरोप का व्यापार सीमित हो गया, जिससे यूरोपीय शक्तियाँ भारत, चीन तथा अन्य पूर्वी देशों से व्यापार हेतु वैकल्पिक मार्गों की खोज में जुट गईं। इसी क्रम में क्रिस्टोफर कोलंबस ने भारत पहुँचने के प्रयास में 1492 ई. में अमेरिका की खोज की। व्यापारिक महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित इन खोजों ने यूरोप को नए महाद्वीपों और देशों की संपदा का दोहन करने का अवसर दिया। परिणामस्वरूप, यूरोपीय शक्तियों ने इन नव-अन्वेषित क्षेत्रों को अपने उपनिवेशों में परिवर्तित कर लिया, जिससे यूरोपीय व्यापार और उद्योग-धंधों का व्यापक विकास हुआ।

यही आर्थिक प्रगति आगे चलकर यूरोप की आधुनिक सभ्यता के विकास का आधार बनी। पश्चिमी जगत ने अपनी शक्ति के चरमोत्कर्ष पर एक केंद्रीकृत विश्व-व्यवस्था का स्वप्न देखा, जिसमें समस्त विश्व एक सार्वभौमिक सिद्धांत के अंतर्गत आ जाए। किंतु वास्तव में यह पूँजीवादी विश्व-व्यवस्था थी, जिसने साम्राज्यवादी नीतियों के माध्यम से शेष विश्व को अपने अधीन करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में यूरोप ने आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक वर्चस्व स्थापित करते हुए एक वैश्विक प्रभुत्व की नींव रखी, जिसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।

1.1.1 आधुनिकता का प्रभाव एवं प्रसार

- 400 वर्षों के कालखंड को आधुनिक काल माना जाता है।

सोलहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक, अर्थात् लगभग 400 वर्षों के कालखंड को आधुनिक काल माना जाता है। इस काल की प्रमुख विशेषता बुद्धि अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण में दृढ़ विश्वास रही है। केवल वही ज्ञान प्रामाणिक और विश्वसनीय माना गया, जो वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा प्राप्त किया गया हो। आधुनिक युग में ज्ञान का सर्वोपरि रूप वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं तर्कबुद्धि पर आधारित हो गया।

- 'मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ' (Cogito, ergo sum)। यह कथन बुद्धिवाद और मानव - केंद्रित चिंतन का आधार बना, जिसे आधुनिक दर्शन की नींव माना जाता है।

इस दौर में चिंतन की प्रवृत्ति में आमूल-चूल परिवर्तन आया। जहाँ मध्ययुगीन समाज धर्म और आस्था को सर्वोपरि मानता था, वहीं आधुनिकता ने विवेक, तर्क और बुद्धिवाद को प्रमुखता प्रदान की। अंधविश्वास और रूढ़ियों से अलग, इस नए युग में मानव बुद्धि को सभी समस्याओं के समाधान का मूल स्रोत माना जाने लगा। फ्रांसीसी दार्शनिक और गणितज्ञ रेने देकार्त (Rene Descartes) ने इस विचारधारा को सार्थक आधार प्रदान किया। उन्होंने कहा— 'मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ' (Cogito, ergo sum)। यह कथन बुद्धिवाद और मानव-केंद्रित चिंतन का आधार बना, जिसे आधुनिक दर्शन की नींव माना जाता है।

इसी काल में गैलीलियो, बेकन और न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों ने अपने चिंतन और प्रयोगों से आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति को सुदृढ़ किया। इनके विचारों ने बुद्धिवाद और वैज्ञानिक सोच को गति दी, जिससे आधुनिक विज्ञान, तकनीक और शिक्षा का विकास संभव हुआ। किंतु आधुनिकता केवल प्रगति का प्रतीक नहीं रही; इसके साथ अनेक सामाजिक और नैतिक समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं।

- 'बुद्धि ही हमारा वास्तविक ईश्वर है।' - सिग्मंड फ्रायड

आधुनिकता ने जब ईश्वर और प्रकृति के स्थान पर मनुष्य को केंद्र में रखा, तो इतिहास के पुनर्निर्माण और उसकी व्याख्या को लेकर गंभीर प्रश्न उठने लगे। आधुनिकतावादियों ने बुद्धि में अटूट विश्वास व्यक्त किया और इसे प्रगति का आधार माना। उदाहरण के लिए, मनोविश्लेषक सिग्मंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने कहा कि— 'बुद्धि ही हमारा वास्तविक ईश्वर है।' उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया कि मानव बुद्धि से प्रत्येक समस्या का समाधान संभव है। यदि आज कोई समाधान उपलब्ध नहीं है, तो भविष्य में बुद्धि उसे अवश्य खोज लेगी।

आधुनिकतावादियों ने इतिहास को प्रगति की निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखा। उनके अनुसार, वर्तमान में जो समस्या असाध्य प्रतीत होती है, वह भविष्य में अवश्य हल हो जाएगी। इस प्रकार, आधुनिकता ने वैज्ञानिक बुद्धिवाद को स्थापित कर प्रगति के विचार को गति प्रदान की, जिससे मानव सभ्यता के विकास की नई संभावनाएँ उभर सकीं।

- आधुनिक युग में बुद्धिवाद को प्रमुखता मिलने लगी।

पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार की प्रक्रियायों से आधुनिकता की ज्ञान परंपरा ने यूरोप ही नहीं पूरी दुनिया के सोच एवं चिंतन को बदल दिया। आधुनिकता के द्वारा पूरी दुनिया में वैज्ञानिक सोच को जगह मिली और एक नई औद्योगिक सभ्यता का विकास हुआ। लेकिन कालांतर में आधुनिकता के अभियान की कई विसंगतियाँ उजागर हुई। आधुनिकता ने जिस वस्तुनिष्ठ एवं निरपेक्ष सत्य की प्रतिष्ठा की थी, अब उस पर सवाल खड़े किए जाने लगे। पहले धर्म पर सवाल करना संभव नहीं था। आधुनिक ज्ञान और विज्ञान के समाज में प्रतिष्ठित होने के बाद धर्म पर काफी प्रभाव पड़ा। इस दौरान यूनान और रोम के शास्त्रीय दर्शन एवं साहित्य का प्रचार प्रसार हुआ। प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने पूरे यूरोप में विचारों के प्रवाह को तेज़ किया। पुनर्जागरण काल में अर्जित यूनान और रोम के साहित्यिक एवं दार्शनिक ज्ञान के कारण यूरोप में 17वीं एवं 18वीं शताब्दी में ज्ञानोदय (Enlightenment) का प्रादुर्भाव हुआ। ज्ञानोदय ने मानवता,

ईश्वर, विवेक एवं प्रकृति को लेकर नए विचार दिए। यह विचार उस युग के दर्शन, कला एवं साहित्य में प्रकट हुआ। ज्ञानोदय के केन्द्र में विवेक था। और विवेक आश्रित मानवता का लक्ष्य ज्ञान प्राप्ति और स्वतंत्रता प्राप्ति था। परिणामतः धार्मिक मूल्यों के स्थान पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई।

- आधुनिकता का प्रयोग मुख्यतः तीन संदर्भों में

आधुनिकता का प्रयोग कम से कम तीन मुख्य संदर्भों में किया जा सकता है— दार्शनिक विचार के रूप में, समाज के एक प्रकार के रूप में और आधुनिक महानगरों की क्षणभंगुर एवं परिवर्तनशील धारणाओं के समूह के रूप में। आधुनिक भावबोध के विकास में पुनर्जागरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस दौर में स्वतंत्रता, समता, बंधुता और सामाजिक न्याय जैसे श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना हुई। परिणामस्वरूप, आधुनिक युग में एक नए मानववाद की स्थापना हुई, जो पूर्ववर्ती विचारधाराओं की तुलना में अधिक मानवीय और वैज्ञानिक था।

- आधुनिकता का आधारभूत तत्व- मानववाद, तर्क- निष्ठा, बौद्धिकता, वैज्ञानिकता एवं सार्वभौमिकता।

हालाँकि, आधुनिकता की कुछ सीमाएँ और अपर्याप्तताएँ भी उजागर हुईं, जिसके परिणामस्वरूप उत्तर-आधुनिक चिंतन का उदय हुआ। आधुनिकता का आधार मानववाद, तर्क-निष्ठा, बौद्धिकता, वैज्ञानिकता और सार्वभौमिकता था। इसकी अवधारणा के केंद्र में मनुष्य था, लेकिन आधुनिक विचार की विशेषता यह थी कि वह अपने विरुद्ध किसी भी प्रश्न को सुनने के लिए तैयार नहीं था।

आधुनिकता की एक अन्य पहचान राजनीतिक और भौगोलिक स्तर पर भी देखी जा सकती है, जहाँ यह एक वैश्विक विचारधारा के रूप में विकसित हुई। यह पश्चिमी देशों के शक्ति परीक्षण और उपनिवेशवाद का वैचारिक औज़ार बन गई। एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के देशों ने बहुत बाद में यह समझा कि ज्ञानोदय, जिसे स्वतंत्रता और प्रगति का प्रतीक माना गया था, वास्तव में एक नई प्रकार की बौद्धिक गुलामी थी—उन विचारधाराओं की गुलामी, जो कहीं बाहर विकसित हुई थीं और जिन्हें इन देशों पर थोपा गया था।

आधुनिक विचारकों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया कि वैज्ञानिक ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है। कई आधुनिक विद्वानों का विश्वास था कि विज्ञान हमारी अधिकांश समस्याओं का समाधान करेगा और हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को अधिक सुरक्षित, आरामदायक और श्रेष्ठ बनाएगा। आधुनिक होने का अर्थ विज्ञान में आस्था रखना और उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करना था।

- पश्चिमी विचारकों ने स्वयं को केंद्र में रखा

आधुनिक युग में प्रगति, विशेष रूप से वैज्ञानिक प्रगति, मुख्यतः विश्व के एक विशेष क्षेत्र—पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका—में केंद्रित रही। पश्चिमी संस्कृति को अन्य संस्कृतियों की तुलना में न केवल अधिक समृद्ध माना गया, बल्कि नस्ली और सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ भी समझा गया। पश्चिमी विचारकों ने स्वयं को केंद्र में रखा और शेष दुनिया को परिधि के रूप में देखा।

भारत जैसे औपनिवेशिक देशों में, पश्चिमी शक्तियाँ बड़ी संख्या में ऐसे स्थानीय लोगों को प्रभावित करने में सफल रहीं, जो यह मानने लगे कि पश्चिमी संस्कृति स्वाभाविक रूप से श्रेष्ठ है, जबकि उनकी अपनी संस्कृति निम्न स्तर की है। इस सांस्कृतिक अहंकार का उपयोग उपनिवेशवाद को न्यायोचित ठहराने के लिए किया गया। इसे आर्थिक और राजनीतिक शोषण के बजाय 'सभ्य बनाने की प्रक्रिया' के रूप में प्रस्तुत किया गया।

- आधुनिक होने का अर्थ है विज्ञान में आस्था और उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करना।

आधुनिकता ने मानवता को अज्ञान और अविवेक से मुक्त करने का संकल्प लिया था। बीसवीं सदी आधुनिकता के चरम उत्कर्ष का प्रतीक बनी, लेकिन युद्ध, दरिद्रता, अस्वास्थ्य, अन्याय और प्रगति एवं विकास की सीमित अवधारणा ने इसकी सर्वव्यापकता पर प्रश्नचिह्न खड़े कर दिए।

1.1.2 आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता में रूपांतरण

- उत्तर-आधुनिकतावाद बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारंभ

उत्तर-आधुनिकतावाद बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारंभ हुआ एक सैद्धांतिक आंदोलन है। यह एक साथ आधुनिकता का विकास भी है और उसका विलोम भी। इसने पुराने सिद्धांतों पर पुनर्विचार करने पर ज़ोर दिया। उत्तर-आधुनिकतावाद को पूँजीवाद का एक विकसित रूप समझा जा सकता है। यह आधुनिकतावाद के विरोध में जन्मी एक नवीन विचारधारा थी, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों को एक अलग दृष्टिकोण से देखती थी।

- 'उत्तर' शब्द के दो अर्थ है

उत्तर-आधुनिकतावाद को समझने से पहले आधुनिकतावाद के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना आवश्यक है। इसके अलावा, 'उत्तर-आधुनिकता' शब्द पर विचार करने से पूर्व 'उत्तर' शब्द के महत्व को समझना ज़रूरी है। 'उत्तर' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—पहला, पूर्व स्थिति का नकार; और दूसरा, पूर्व स्थिति का अगला चरण। उत्तर-आधुनिकता में ये दोनों ही पक्ष महत्वपूर्ण हैं।

बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध उत्तर-औद्योगिक क्रांति का एक महत्वपूर्ण युग है। इस युग में समाज, संस्कृति, कला, राजनीति, साहित्य, दर्शन और संपूर्ण मानव चिंतन में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ। इसी परिवर्तनशीलता को व्यक्त करने वाला नाम है—'उत्तर-आधुनिकतावाद'।

- समाज और संस्कृति के संबंधों में आए परिवर्तनों को दर्शाता है।

उत्तर-आधुनिकतावाद ज्ञान की एक विशेष दशा है। यह समाज और संस्कृति के संबंधों में आए परिवर्तनों को दर्शाता है। यह अपने समय का एक सैद्धांतिक वाद-विवाद है, जो कला, साहित्य और दर्शन के संवाद के रूप में विश्व-परिदृश्य को व्यक्त करता है। यह विचारधारा बहुलतावाद में विश्वास रखती है और केंद्रवाद को तोड़कर परिधि की ओर बढ़ती है। साथ ही, यह अपनी जड़ों की ओर लौटने का प्रयास भी करती है, जिससे यह एक अनंत और खुला विचार क्षेत्र बन जाता है। इसमें पुरानी विचारधाराओं, वादों और प्रवृत्तियों का अंत घोषित किया जाता है।

उत्तर-आधुनिकता किसी निश्चित विचार या दर्शन से अधिक एक प्रवृत्ति का नाम है,

- अलग-अलग क्षेत्रों में उत्तर-आधुनिकता के विभिन्न आयाम हैं

जिसका जन्म मुख्यतः बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप में हुआ। साहित्य, समाज, विज्ञान और आम जीवन के अनेक क्षेत्रों में इस प्रवृत्ति के लक्षण देखे गए। अलग-अलग क्षेत्रों में उत्तर-आधुनिकता के विभिन्न आयाम हैं, किंतु लगभग सभी क्षेत्रों में इसकी एक मुख्य विशेषता यह रही कि यह आधुनिकता की चेतना के साथ-साथ पूर्व-आधुनिकता की ओर भी दृष्टि डालती है।

अंग्रेज़ी में उत्तर-आधुनिकता या Postmodernism को एक Umbrella Term माना गया है। जिस प्रकार एक छाता अपने अन्दर कई चीज़ों को समाहित कर लेता है ठीक उसी प्रकार उत्तर - आधुनिकता अपने अन्दर कई चीज़ों को समा लेती है।

It is an umbrella term which brings under its fold post structuralism, deconstruction and even post colonialism and feminism.

देवेन्द्र इस्सर के मतानुसार—"अगर हम उत्तर आधुनिकतावाद के मूल तत्वों का अध्ययन करें तो यह साठ के दशक के उन लिबरेशन आन्दोलनों से निकली है जिन्होंने व्यक्ति तथा व्यवस्था, अल्प समूह तथा बृहत् समाज, विचारों तथा विसंगतियों, मूल्यों, तथा विविध-विधान, विचारधाराओं, नीतियों, राजनीति, राष्ट्रीयता आदि पर प्रश्नचिह्न लगा दिए। उत्तर-आधुनिकतावाद एक ऐसी चुनौती भरी विचारधारा है, जिसमें समस्त मानवीय चिन्तन, साहित्य, व्यवस्था, विचारधारा, धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति सभी को 'उत्तर', 'पोस्ट' व्यतीत घोषित कर दिया है।"

- खोई हुई विरासत को पुनः प्राप्त करने की इच्छा

अंधाधुंध औद्योगीकरण ने यूरोपीय समाज से बहुत कुछ छीन लिया था और उत्तर-आधुनिकता में उस स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह, एक दृष्टि से, जीवन के हर क्षेत्र में औद्योगीकरण की गहरी पैठ के प्रति यूरोपीय धनी समाज की प्रतिक्रिया थी।

उत्तर-आधुनिकता कोई सुव्यवस्थित प्रणाली या सिद्धांतों का एक तार्किक समूह नहीं है। इसे नए आंदोलनों के एक समूह के रूप में देखा जाना चाहिए, जो विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से विकसित हुए और एक-दूसरे को प्रभावित किया। यद्यपि उत्तर-आधुनिकतावाद ज्ञान के सिद्धांत में एक प्रमुख प्रवृत्ति है, इसकी उत्पत्ति को लेकर आम सहमति कम है। यह किसी एक व्यक्ति या विचारक का दर्शन नहीं है; इसे विभिन्न विचारकों ने प्रस्तुत किया, जिससे कई अंतर्विरोध भी उत्पन्न हुए।

- इतिहासकार अर्नोल्ड टॉयनबी ने 1920 में पॉस्टमॉडर्न शब्द का प्रयोग किया

'उत्तर-आधुनिक' (Postmodern) पदबंध का सबसे पहला प्रयोग अंग्रेज़ चित्रकार जॉन वाटकिंस चैपमैन ने 1870 में 'पोस्ट-मॉडर्न पेंटिंग' के संदर्भ में किया था। इस शब्द का पहली बार औपचारिक प्रयोग 1914 में जे. एम. थॉमसन ने The Hibbert Journal में प्रकाशित एक लेख में किया। इतिहासकार अर्नोल्ड टॉयनबी ने 1920 में 'पोस्ट-मॉडर्न' शब्द का प्रयोग किया और इसके बाद यह साहित्य में व्यापक मान्यता प्राप्त करने लगा। इस पदबंध का उपयोग आधुनिकता की समाप्ति के संकेत के रूप में किया गया था।

1970 में फ्रेडरिक जेम्सन की पुस्तक Postmodernism: Cultural Logic of Late

Capitalism के प्रकाशन के बाद 'उत्तर-आधुनिकतावाद' को एक स्पष्ट विचारधारा के रूप में पहचाना जाने लगा।

- समय के निरंतर प्रवाह में यांत्रिक दबाव से उत्पन्न घटना

संक्षेप में कहा जा सकता है कि उत्तर-आधुनिकता समय के निरंतर प्रवाह में यांत्रिक दबाव से उत्पन्न हुई एक घटना है। यह वर्तमान समाज की विचारधारा, मानसिक प्रवृत्ति (मूड), एक ऐतिहासिक युग, सामाजिक विशेषता, सैद्धांतिक संवाद, पारिभाषिक परिचर्चा और वर्तमान का वृत्तांत है। एक बौद्धिक आंदोलन के रूप में, उत्तर-आधुनिकता ने निस्संदेह कई जटिल प्रश्नों को उठाया है, जो जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं। यह एक अपरिभाषित परिस्थिति का नाम है, जिसे उदाहरणों और व्यावहारिक आचरणों से अधिक समझा जा सकता है, बजाय सैद्धांतिक व्याख्याओं के।

1.1.3 साहित्यिक सिद्धांत के रूप में उत्तर-आधुनिकतावाद

साहित्यिक आलोचना साहित्य की व्याख्या और अध्ययन करने की प्रक्रिया को संदर्भित करती है, जबकि साहित्यिक सिद्धांत साहित्यिक ग्रंथों के विश्लेषण के लिए एक विशिष्ट, व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो उस पर बौद्धिक तर्क की एक विशेष दिशा लागू करता है। उदाहरण के लिए, एक मनोविश्लेषणात्मक साहित्यिक सिद्धांतकार सिग्मंड फ्रॉयड के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को आधार बना सकता है और अज्ञेय के 'शेखरः एक जीवनी' जैसे उपन्यास की आलोचनात्मक समझ विकसित करने का प्रयास कर सकता है।

- आलोचना के विभिन्न स्कूलों में विभाजित

आधुनिक और उत्तर-आधुनिक साहित्यिक आलोचना की एक विशेषता यह है कि आलोचना को विभिन्न स्कूलों में विभाजित किया गया है। हालांकि, साहित्यिक आलोचना और साहित्यिक सिद्धांत दोनों ही साहित्य के विश्लेषण के तरीके हैं। साहित्यिक सिद्धांत, साहित्यिक आलोचना के एक विशेष रूप को संदर्भित करता है, जिसमें साहित्यिक ग्रंथों का विश्लेषण करते समय एक व्यवस्थित, शैक्षणिक, वैज्ञानिक या दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। उत्तर-आधुनिक साहित्यिक सिद्धांत सामान्यतः साहित्य से जुड़े विभिन्न मुद्दों से संबंधित होता है, जिनकी चर्चा हम आने वाली इकाइयों में करेंगे।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर-आधुनिकतावाद किसी सिद्धांत, संगठन या मत से अधिक एक मानसिकता या संवेदनशीलता है। यह वास्तव में कोई ठोस सिद्धांत नहीं, बल्कि एक विशेष दृष्टिकोण है, जो साहित्य, कला, लेखन की शैलियों, नैतिकता, सामाजिक व्यवहार और प्राथमिकताओं को प्रभावित करता है। आधुनिक भावबोध के विकास में पुनर्जागरण और ज्ञानोदय का विशेष योगदान रहा। उत्तर-आधुनिकता ने आधुनिकता की सीमाओं को पहचाना—कहीं उसे चुनौती दी, कहीं उसका हिस्सा बनी और कहीं उससे आगे भी बढ़ी। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्तर-औद्योगिक क्रांति

का एक नया दौर देखने को मिला। इसी दौर में समाज, संस्कृति, कला, राजनीति, साहित्य, दर्शन और मानव चिंतन में तेज़ी से बदलाव हुए। इन परिवर्तनों की ओर ध्यान आकर्षित करने वाली प्रवृत्ति को ही 'उत्तर-आधुनिकतावाद' कहा जाता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 'आधुनिकता' की अवधारणा एवं उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. 'आधुनिकता' के प्रभाव एवं प्रसार का विवेचन कीजिए।
3. 'उत्तर-आधुनिकता' पदबंध का सर्वप्रथम प्रयोग किन-किन क्षेत्रों में हुआ?
4. किन विद्वानों ने सर्वप्रथम 'उत्तर- आधुनिकतावाद' पदबंध का प्रयोग किया?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष - सं रवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य - प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/EDMK7ycT9cs?si=0YEVRwgy6aNr-AAb
- https://youtu.be/1LMfs3_XjNE?si=RtVLK5AzLzPsGY62
- https://youtu.be/13dJ8yrUuQQ?si=_zX-7s1gQhZUhbZU

इकाई 2

उत्तर-आधुनिकता का आरंभ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर-आधुनिकतावाद की प्रारंभिक रुझानों को जानता है
- उत्तर-आधुनिकता के आरंभ होने के कारणों को समझता है
- आधुनिकता का उत्तर-आधुनिकता पर प्रभाव समझता है
- उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में उत्तर-आधुनिकतावाद की रुझानों को समझता है

Background / पृष्ठभूमि

कुछ लोगों, विशेष रूप से उत्तर-आधुनिकतावादियों का मानना है कि हम आधुनिकता से आगे बढ़ चुके हैं और अब एक उत्तर-आधुनिक युग में जी रहे हैं। नए समाज के उदय की इस अवधारणा के आधार पर कई विचारकों ने तर्क दिया है कि इससे हमारी ज्ञान प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। 'उत्तर-आधुनिक' शब्दावली के उपयोग में मुख्य रूप से सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों पर ज़ोर दिया जाता है। इसका अर्थ यह निहित करता है कि आधुनिकता का समापन हो चुका है और एक नई सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी का जन्म हो रहा है, जो वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के तीव्र विकास की दिशा में हमें अग्रसर कर रही है। इस रूपांतरण के सिद्धांतकारों का दावा है कि जैसे अतीत में भूमि-आधारित कृषि प्रधान समाजों का स्थान कारखाना-आधारित समाजों ने लिया था, वैसे ही अब औद्योगिक समाजों का स्थान उत्तर-औद्योगिक विश्व ले रहा है, जहाँ सेवा क्षेत्र (Service Sector) का महत्व सर्वोपरि होगा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

फूको, ल्योतार, रोलां बार्थ, देरीदा, ज्ञानोदय, सिद्धांतकार, औद्योगिक सभ्यता, पुनर्जागरण

Discussion / चर्चा

1.2 उत्तर-आधुनिकतावाद की प्रारंभिक स्वरूप

- The Coming of Post-Industrial Society
  - डानियल बैल

उत्तर-आधुनिकतावाद (Postmodernism) शब्द का प्रयोग सबसे पहले किसने किया, यह सवाल कई बार उठता है। डानियल बैल ने अपनी पुस्तक The Coming of Post-Industrial Society में इस अवधारणा पर चर्चा की। उन्होंने एक नए समाज के आगमन की बात की, जो पारंपरिक औद्योगिक समाज से भिन्न था। उनके अनुसार, पहले के कारखाना मज़दूरों की जगह अब सेवा क्षेत्र के पेशेवर लोग ले रहे हैं। इसी तरह, पुरानी मशीनों की जगह सूचना और संचार की नई तकनीक (Technology) ने ले ली है। 'उत्तर-आधुनिक' शब्द का उपयोग आमतौर पर आधुनिकता से आगे बढ़ने के संदर्भ में किया जाता है। इसका एक लंबा ऐतिहासिक विकास है और इसे विभिन्न संदर्भों में प्रयोग किया गया है।

- सर्वप्रथम प्रख्यात इतिहासकार आर्नल्ड टॉयन्बी ने अपनी शानदार पुस्तक A Study of History में उत्तर-आधुनिक शब्दावली का इस्तेमाल किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पश्चिमी दुनिया में एक बड़ा संकट खड़ा हुआ, जिसने पुराने मूल्यों और विश्वासों को हिला दिया। इस युद्ध में भारी विनाश हुआ, जिससे मानवता पर आधारित सभी मूल्य संदिग्ध हो गए। बुद्धिजीवियों और मानववादी मूल्यों को गहरा आघात पहुँचा और वे लगभग नष्ट हो गए। 1870 में, ब्रिटिश चित्रकार जे. डब्ल्यू. चैपमैन ने अपने चित्रों को 'उत्तर-आधुनिक' (पोस्टमॉडर्न) कहकर परिभाषित किया। उनके चित्र फ्रांस के प्रभाववादी चित्रों की तुलना में अधिक आधुनिक माने गए। इतिहासकार आर्नल्ड टॉयन्बी ने इस दौर के पतन पर विचार करते हुए बताया कि क्यों प्रगति का इतिहास अंततः विनाश के रूप में सामने आया। 1947 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक A Study of History में टॉयन्बी ने यूरोपीय समाज और संस्कृति में आए बदलाव को 'उत्तर-आधुनिकता' की संज्ञा दी। उन्होंने इसे आधुनिक काल (जो मध्ययुगीन युग के बाद आया था) से अलग बताया। उनके अनुसार, इस उत्तर-आधुनिक युग में तर्कसंगतता, स्थिरता और मूल्य टूटने लगे, जबकि ये 1875 तक आधुनिकता की विशेषताएँ माने जाते थे। उसी समय, टी. एस. इलियट ने The Wasteland (1922) जैसी प्रसिद्ध कविता लिखी, जिसमें मानवता के पतन को दर्शाया गया था। 1920 में, आर्नल्ड टॉयन्बी ने 'पोस्टमॉडर्न' शब्द का पहली बार प्रयोग किया। ललित कलाओं में यह शब्द सबसे पहले प्रयोग हुआ और बाद में समाजशास्त्र व साहित्यशास्त्र में लोकप्रिय हुआ। इस प्रकार, उत्तर-आधुनिकता एक ऐसा विचारधारा बन गया, जो आधुनिकता के आदर्शों और मूल्यों के विघटन को दर्शाता है।

"Ihab Hasan was the first to pull these directions together into a comprehensive definition of Post-Modernism as an epistemic mutation in the 'Western Mind' a vast 'unmaking' of the 'tyranny of wholes' and their replacement with fragments of fractures, and a corresponding ideological commitment to minorities in politics, sex and language."

-Modern North American Criticism and Theory

इतिहासकार बर्नार्ड रोजनबर्ग, अर्थशास्त्री पीटर ड्रकर और समाजशास्त्री सी. राइट मिल्स ने उत्तर-आधुनिकता को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया। इसी दौर में फ्रांस में यह शब्द अधिक प्रचलित हुआ। 1950 के दशक में फ्रांसीसी विद्वानों जैसे फूको, ल्योतार, रोलां बार्थ और देरीदा ने इस विचार को मजबूती दी और सिद्धांत विकसित किए। बाद में, यह विचार अमेरिका के विश्वविद्यालयों तक पहुँचा और वहाँ भी लोकप्रिय हुआ। पीटर ब्रूकर के अनुसार 1950 और 1960 के आस-पास अंग्रेज़ी साहित्य में आलोचनात्मक निबन्धों में 'Post Modernism' पद का इस्तेमाल किया जाता था। मार्सल कोर्निस ने पॉस्टमोर्डनिज़्म की शुरुआत के बारे में अपना मत यों प्रकट किया है—

- फूको, ल्योतार, रोलां बार्थ और देरीदा ने इस विचार को मजबूती दी

"Despite persistent disagreements regarding its definition and applications, Postmodernism became an established term in literary and art criticism by the mid 1970's. In a few years Postmodernism became an indispensable concept in theories of the contemporary literature"

1970 दशक के बाद से इस शब्दावली का उपयोग आधुनिकता की विरासत की आलोचना और उस पर प्रश्न उठाने के लिए किया जाने लगा। इस दिशा में सबसे पहले फ्रांस के विचारकों ने कार्य किया और बाद में अमेरिकी विद्वानों ने भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके द्वारा विकसित सिद्धांतों से एक नए उत्तर-आधुनिक दर्शन की शुरुआत हुई, जिसने पूरे विश्व में प्रभाव डाला।

- अमरीका में उत्तर - आधुनिक युग के विचार को 1950 के दशक से अभिव्यक्ति मिली।

ल्योतार की पुस्तक The Postmodern Condition, A Report on Knowledge (1979) और फ्रेडरिक जेमेसन की Postmodernism and Cultural Logic of Late Capitalism (1984) ने उत्तर-आधुनिकता (Postmodernism) की बुनियाद रखी। भारत में इसका प्रभाव 1960 के आसपास विशेष रूप से कोलकत्ता में देखा गया। 1980 तक यह अन्य भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी में, तेजी से फैल गया।

क्या सब कुछ समाप्त हो चुका है? क्या अब केवल मृत्यु का चिंतन शेष है? 1960 में विचारक डैनियल बेल ने अपने अध्ययन के आधार पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The End of Ideology' (विचारधाराओं का अंत) लिखी। उन्होंने कहा कि मार्क्सवाद और आधुनिकतावाद जैसी ऐतिहासिक विचारधाराएँ समाप्त हो चुकी हैं। इसी तरह, प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्शे (Nietzsche) ने अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होकर 'ईश्वर की मृत्यु' की घोषणा की। उनके अनुसार, पारंपरिक धार्मिक और नैतिक मूल्यों का पतन हो चुका था। लेकिन ईश्वर की मृत्यु के बाद, यह बहस आगे बढ़ी और 'मनुष्य की मृत्यु' और 'सब्जेक्ट की मृत्यु' (व्यक्ति की पहचान और अस्तित्व का अंत) की अवधारणा सामने आई। इस प्रकार, 20वीं सदी में विचारधाराओं, विश्वासों और पहचान के संकट पर गहरा चिंतन किया गया।

- नीत्शे ने अपने समय की परिस्थितियों से प्रभावित होकर 'ईश्वर की मृत्यु' की घोषणा की

1.2.1 भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद

भारतीय संदर्भ में उत्तर-आधुनिकतावाद 1960 के आसपास एक विचारधारा के रूप में उभरा। इसका सबसे अधिक प्रभाव कलकत्ता में देखा गया और 1980 तक यह

- भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद का आरंभ सन् 1960 के आस-पास हुआ।

अन्य भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिन्दी साहित्य में भी प्रमुख रूप से दिखाई देने लगा। उत्तर-आधुनिकतावाद का विकास मीडिया और बाज़ार की शक्तियों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के प्रभाव से भारतीय समाज में कंप्यूटीकरण, संचार क्रांति और नवउपनिवेशवाद जैसी नई चुनौतियाँ आईं। इन परिवर्तनों ने समाज को गहराई से प्रभावित किया। गत सत्तर वर्षों में हिन्दी साहित्य में इन उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियों का चित्रण होने लगा। इसका एक कारण समाज की आंतरिक ज़रूरतें थीं, तो दूसरा कारण इसे एक फैशन के रूप में अपनाना भी था। इस दौर में साहित्य ने नई तकनीक, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद के प्रभाव को विशेष रूप से दर्शाया।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

'उत्तर-आधुनिकता' और 'उत्तर-आधुनिकतावाद', ये दो शब्द अक्सर एक ही अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं, लेकिन वास्तव में इनके अर्थ अलग हैं। उत्तर-आधुनिकता समकालीन समाजों की सामाजिक स्थितियों और उनकी अर्थव्यवस्था को दर्शाने के लिए प्रयुक्त होता है। यह आधुनिक समाजों के बदलाव और उनकी संरचना से जुड़ा हुआ है। उत्तर-आधुनिकतावाद एक दर्शन है, जो आधुनिकता के दर्शन के बाद विकसित हुआ और आधुनिकता की विचारधारा के विपरीत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस विचारधारा का पहला उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासकार आर्नल्ड टॉयन्बी ने किया। उन्होंने 1920 में पहली बार 'Postmodern' (उत्तर-आधुनिक) शब्द का प्रयोग किया था, जब वे मानव इतिहास में पतन के विषय पर चर्चा कर रहे थे। संक्षेप में, उत्तर-आधुनिकता एक सामाजिक अवस्था को दर्शाती है, जबकि उत्तर-आधुनिकतावाद एक दार्शनिक प्रवृत्ति है जो आधुनिकता की आलोचना करती है और नए विचारों को जन्म देती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 'उत्तर-आधुनिकता' की अवधारणा सर्वप्रथम किसने किया?
2. प्रारंभिक दौर में किन-किन विद्वानों ने 'उत्तर-आधुनिक' पद का प्रयोग किया?
3. भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'उत्तर-आधुनिकता' का आरंभ किन परिस्थितियों में हुआ?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली

3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष - सं रवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य – प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफ़ेरन्स

- https://youtu.be/krS4tOg6aq0?si=Tr3E9X9PKVZ0Gj7W
- https://youtu.be/0GXM4HnHQKg?si=hOg_-326bnQgY2zR
- https://youtu.be/VY_fxbgaHEU?si=8ZlohX6suGIJzQxH

SGOU

इकाई 3

उत्तर-आधुनिकता की परिभाषा

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर-आधुनिकतावाद और आधुनिकतावाद का संबन्ध समझता है
- उत्तर-आधुनिकतावाद की विभिन्न परिभाषएँ समझता है
- उत्तर-आधुनिकता की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत होता है
- उत्तर-आधुनिकतावाद को परिभाषित करने वाले विद्वानों के बारे में जानता है

Background / पृष्ठभूमि

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विज्ञान और तकनीक में तेजी से बदलाव हुए, जिससे पारंपरिक विचारधाराएँ कमजोर पड़ने लगीं। टेक्नोलॉजिकल क्रांति ने समाज के हर क्षेत्र को प्रभावित किया, जिससे पुराने सिद्धांतों की उपयोगिता पर सवाल उठने लगे। मीडिया और बाज़ारवाद के बढ़ते प्रभाव ने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र में पुराने विचारों की जगह नई धाराओं को जन्म दिया। इससे उत्तर-आधुनिकतावाद (Postmodernism) का उदय हुआ, जो ज्ञान और शक्ति के नए स्वरूप को प्रस्तुत करता है। उत्तर-आधुनिकतावाद की विशेषताएँ - पुरानी विचारधाराओं का अंत – परंपरागत सिद्धांतों और मूल्यों को चुनौती दी गई। ज्ञान और शक्ति का नया खेल – सत्ता और ज्ञान का उपयोग नए तरीकों से किया जाने लगा। 'उत्तर' शब्द की महत्ता – यह किसी भी सत्य, अनुभव या इतिहास को नए अर्थों में देखने की दृष्टि देता है। स्पष्ट परिभाषा कठिन – इसे एक निश्चित परिभाषा में बाँधना मुश्किल है, लेकिन इसकी प्रवृत्तियों से इसे समझा जा सकता है। उत्तर-आधुनिकतावाद 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जन्मी एक ऐसी विचारधारा है जो हर चीज़ पर प्रश्न उठाने और नई व्याख्या करने की प्रवृत्ति रखती है। यह पारंपरिक सत्ताओं, विचारों और संरचनाओं को चुनौती देते हुए एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भूमंडलीय, केंद्रवाद, पॉस्ट इंडस्ट्रियलिज़्म, पोस्ट कॉलनियलिज़्म, बहुलतावाद

Discussion / चर्चा

1.3 उत्तर-आधुनिकतावाद

'उत्तर-आधुनिकता' (Postmodernism) एक ऐसा शब्द है, जिसे विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त किया जाता रहा है। प्रश्न उठता है कि वास्तव में उत्तर-आधुनिकता क्या है ? क्या यह केवल एक मानसिक अवस्था है या एक व्यापक सांस्कृतिक माहौल? क्या यह कोई प्रवृत्ति है या एक परिदृश्य? विचारधारा है या मात्र एक विभ्रम? विद्रोह है या प्रतिविद्रोह? क्या यह आधुनिकता के विरोध में उभरा एक नकारात्मक दृष्टिकोण है, जो आधुनिकता की समस्त उपलब्धियों—चिंतन, दर्शन, विचारधारा, व्यवस्था, साहित्य, सभ्यता और मूल्यों—को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है?

- निरंतर परिवर्तनशील, चंचल और विखंडनशील दृष्टि कोण

उत्तर-आधुनिकता की कोई एक सर्वमान्य और ठोस परिभाषा देना संभव नहीं है, क्योंकि यह स्वयं समग्रता के विरोध में खड़ी होती है। यह एक व्यापक अवधारणा है—एक अत्यंत जटिल और विवादास्पद दार्शनिक शब्द, जिसे सीमित शब्दों में बांधा नहीं जा सकता। फिर भी, इसे पूरी तरह अपरिभाषेय भी नहीं कहा जा सकता। इसकी प्रवृत्तियों के माध्यम से इसे समझा जा सकता है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो निरंतर परिवर्तनशील, चंचल और विखंडनशील है। इसने कला, साहित्य और समाज में बहुलतावाद को इस हद तक विस्तृत कर दिया है कि हर व्यक्ति की अपनी परिभाषा हो सकती है, लेकिन कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं।

उत्तर-आधुनिकता के प्रचलन में आने के साथ ही यह विवादों के केंद्र में रही है। इस शब्द के अनेक अर्थ हैं—एक से एक जटिल, गूढ़ और गहरे। वास्तव में, यह ज्ञान की एक अवस्था है, जो संस्कृति और समाज के पारस्परिक संबंधों के बदलते स्वरूप को दर्शाती है। यह अपने समय का एक बौद्धिक विमर्श है—एक कला-साहित्य संवाद, जो समकालीन विश्व का वृत्तांत प्रस्तुत करता है। यह बहुलतावाद को स्वीकारते हुए केंद्रवाद को तोड़ता है और परिधि की ओर बढ़ता है, अपनी जड़ों की ओर लौटता है। यह विचारों का एक अनंत खुला क्षेत्र है, जिसमें पुरानी विचारधाराओं, वादों और संस्थानों के अंत की घोषणा की जाती है।

- उत्तर-आधुनिकतावाद एक चुनौती भरी विचारधारा है।

एक दृष्टिकोण से, उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता का ही एक नया विस्तार है, जो उसकी सीमाओं को चुनौती देते हुए आगे बढ़ती है। यह समस्त मानवीय चिंतन, साहित्य, दर्शन, इतिहास, आंदोलन और संस्थाओं को 'उत्तर' या पोस्ट' (Post) घोषित कर देती है। 'पोस्ट' शब्द आधुनिकता के अंत और उसके बाद की अवस्था की सूचना देता है। यही कारण है कि इसे 'उत्तर' (Post) कहा जाता है—एक ऐसा कालखंड जिसमें सब कुछ 'पोस्ट' हो चुका है या होने की प्रक्रिया में है। यह 'अंत' और 'नवीनता' के द्वंद्व से उपजी एक बौद्धिक क्रांति है, जो विचारों की पुनर्संरचना के लिए आधुनिकता के ढांचे को चुनौती देती है।

- वास्तव में, उत्तर-आधुनिकतावाद अपने समय की एक क्रांतिकारी प्रवृत्ति हैं

बीसवीं शताब्दी में इतिहास, दर्शन, संस्कृति और विचारधाराओं पर इतने नए कोणों से बहसें हुईं कि मानो एक बौद्धिक तूफान आ गया। अतीत, वर्तमान और भविष्य पर चर्चा करते हुए यह तक घोषित किया गया कि 'इतिहास का अंत' हो चुका है। सभी क्षेत्रों में 'पोस्ट' अवधारणाएँ प्रभावी हो रही हैं-'पोस्ट-हिस्ट्री', 'पोस्ट-स्ट्रक्चरलिज़्म', 'पोस्ट-इंडस्ट्रियलिज़्म', 'पोस्ट-कोलोनियलिज़्म' और 'पोस्ट-मार्क्सिज़्म'। वास्तव में, उत्तर-आधुनिकतावाद अपने समय की एक क्रांतिकारी प्रवृत्ति है—एक ऐसा सैद्धांतिक विमर्श जिसमें सभी पुरानी विचारधाराओं, वादों और प्रवृत्तियों का अंत घोषित किया गया है।

1.3.1 उत्तर-आधुनिकतावाद की परिभाषा

अध्ययन की सुविधा के लिए उत्तर-आधुनिकतावाद को कई विद्वानों ने परिभाषित करने की कोशिश ज़रूर की हैं जिनमें प्रमोद के नायर कुछ हद तक सफल भी हुए हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक Contemporary Literature and Cultural Theory में यों लिखा- "Postmodernism is a philosophical and cultural theory that rejects totalizing narratives in favour of partial, fragmented and incomplete ones, and questions the idea that there is any 'real' beyond representations. It also rejects the elite culture"

कई भारतीय विद्वानों ने भी उत्तर- आधुनिकतावाद को परिभाषित किया है।

- ज्ञान की अवस्था के बदल जाने की आत्म-स्वीकृति

भारतीय विद्वानों में हिन्दी के प्रखर आलोचक सुधीश पचौरी के अनुसार – "वह एक भूमंडलीय ज्ञान अवस्था है जिसमें हम सब शामिल हैं। वह ज्ञान की अवस्था के बदल जाने की आत्म-स्वीकृति है। वह हमारे बोध के रूप में बदल जाने का लक्षण है।"

कछ इसी से मिलती - जुलती परिभाषा हिन्दी के उत्तर - आधुनिकतावाद के चिन्तक कृष्णदत्त पालीवाल ने की है-'उत्तर-आधुनिकतावाद एक व्यापक संश्लिष्ट अवधारणा है।

इस शब्द के अनेक अर्थ हैं - एक से एक जटिल, दुरूह और गहरा अर्थ। मूलतः यह बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की नव्य पूँजीवादी, नव्य उपनिवेशवादी, नव्य संरचनावादी, नव्य सांस्कृतिक साम्राज्यवादी विचारधारा (Ideology) है।'

देवशंकर नवीन उत्तर-आधुनिकतावाद को यों परिभाषित करते हैं– 'उत्तर-आधुनिकता एक निश्चित विचार या दर्शन से अधिक एक प्रवृत्ति का नाम है जिसका जन्म मुख्यतः बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में हुआ है।'

- समय के निरंत्तर प्रवाह में यंत्रों के दबाव से उपजी घटना

मुक्ता ने उसे यों परिभाषित किया- 'उत्तर-आधुनिकता समय के निरंत्तर प्रवाह में यंत्रों के दबाव से उपजी घटना है। उत्तर-आधुनिकतावाद की कोई मुकम्मल परिभाषा संभव नहीं है क्योंकि वह स्वयं समग्रता विरोधी है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि पॉस्ट मॉडर्निज़्म वर्तमान समाज की विचारधारा है, मूड है एवं ऐतिहासिक युग है, सैद्धांतिक संवाद है और है पारिभाषिक परिचर्चा।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

यह निर्विवाद सत्य है कि उत्तर-आधुनिकतावाद की कोई निश्चित परिभाषा नहीं हो सकती। यह एक चुनौतीपूर्ण विचारधारा है, जिसे उसकी प्रवृत्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो किसी स्थिर रूप में नहीं है; बल्कि, यह निरंतर अस्थिर, चंचल और विखंडनशील है। इसके केंद्र में पूँजी की भूमंडलीयता है, जहाँ पूँजीवाद ने स्वयं को एक वैश्विक व्यवस्था के रूप में स्थापित कर लिया है। उत्तर-आधुनिकतावाद एक ओर आधुनिकता का विस्तार है, तो दूसरी ओर उससे भिन्न भी है। यह वर्तमान विश्व का एक वृत्तांत प्रस्तुत करता है, जो 'बहुलतावाद' में विश्वास रखते हुए 'केंद्रवाद' को तोड़ता है और परिधि की ओर बढ़ता है। एक बौद्धिक आंदोलन के रूप में इसने निःसंदेह अनेक जटिल प्रश्नों को उठाया है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं। यह एक व्यापक अवधारणा है—एक अत्यंत विवादास्पद पारिभाषिक शब्द, जिसे सीमित शब्दों में परिभाषित करना कठिन है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. क्या उत्तर-आधुनिकतावाद को परिभाषित किया जा सकता है।
2. पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उत्तर-आधुनिकतावाद को किस प्रकार परिभाषित किया गया है।
3. भारतीय विद्वानों ने किस प्रकार उत्तर-आधुनिकतावाद को परिभाषित किया है।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष - सं रवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य - प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/0Xa6sNrDTlk?si=q_wVc8KN6A99eKH7

इकाई 4

आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता एक अधूरी बहस

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर-आधुनिक चिंतन का प्रादुर्भाव से अवगत होता है
- आधुनिकता और उससे उत्पन्न पूँजीवाद की भावना को समझता है
- आधुनिकता और उससे जुड़ी औद्योगिक विकास से परिचित होता है
- यह जान पाएँगे कि उत्तर-आधुनिकता और आधुनिकता की पुनर्व्याख्या समझता है

Background / पृष्ठभूमि

आधुनिकता बौद्धिक अभिवृद्धि का प्रतीक है। इसमें पारंपरिक विचारों, सिद्धांतों एवं सांस्कृतिक मूल्यों से परे हट कर विवेक, वैज्ञानिकता और तर्क के आधार पर चीज़ों को जानने-समझने का प्रयास किया जाता है। विवेकयुक्त (Rational) दृष्टिकोण ही आधुनिकता की पहचान है। इतिहास में प्रत्येक बड़ा परिवर्तन प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों तत्वों से युक्त रहा है। आधुनिकता ने एक औद्योगिक नगर-सभ्यता को जन्म दिया, जिसने ऐसी भीड़ उत्पन्न की, जो न केवल क्षुद्र बाज़ार और संकीर्ण रुचियों से भरी हुई थी, बल्कि चेहराविहीन भी थी। अब कहा जा रहा है कि वह आधुनिक युग समाप्त हो चुका है, जिसमें तर्क, विवेक, मूल्य, सिद्धांत, आदर्श और स्वप्न हुआ करते थे। इसके स्थान पर उत्तर-आधुनिक युग आ चुका है, जहाँ सत्य, न्याय, समता, स्वतंत्रता और समाजवाद का कोई निश्चित अर्थ नहीं बचा है। आज वैश्विक पूँजीवाद ही परम सत्य के रूप में स्थापित हो चुका है। जिसे अब तक हम यथार्थ मानते थे, वह केवल भ्रम था। इतिहास, दर्शन और विज्ञान, जिनके माध्यम से हम यथार्थ को समझते थे, अब मिथक सिद्ध हो चुके हैं। साहित्य, कला और संस्कृति, जिनसे हम दुनिया को जानते थे और स्वयं को पहचानते थे, मात्र विडंबना बनकर रह गए हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

पूँजीवाद, व्यक्तिनिष्ठ, पॉवर शिफट, सार्वभौमिकता, वर्चस्ववाद, विकेंद्रीकरण, एकरूपता, साम्राज्यवाद, सौंदर्यबोध, वर्चस्ववाद, पॉप संस्कृति, केंद्रीयता

Discussion / चर्चा

1.4 उत्तर-आधुनिक चिंतन

सोलहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक के काल को आधुनिक काल माना जाता है। आधुनिकता, जिसका हिन्दी रूपांतर 'Modernity' है, अंग्रेज़ी के ग्रीक मूल के शब्द 'मोडो' (Modo) से आया है, जिसका अर्थ है – हाल-फिलहाल, वर्तमान, इस समय का या समकालीन। यह 'पुराने' का विलोम है और अतीत से पृथक एक नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। आधुनिकता की प्रमुख विशेषता वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कबुद्धि में दृढ़ विश्वास है। आधुनिकतावादियों के इस बुद्धि-प्रधान दृष्टिकोण ने अंततः प्रगति में विश्वास को जन्म दिया और इस प्रगति का प्रमुख साधन विज्ञान बना। अनेक आधुनिक विद्वानों का मानना था कि विज्ञान अधिकांश समस्याओं का समाधान करेगा और मानव जीवन को अधिक सुरक्षित, समृद्ध एवं उन्नत बनाएगा। आधुनिकता के अंतर्गत विभिन्न मूल्यों एवं विश्वासों को सम्मिलित किया जाता है, जिनमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं—

- विज्ञान समस्याओं के समाधान का सर्वोत्तम साधन

- आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपयोगिता पर विश्वास – आधुनिक युग में विज्ञान को समस्याओं के समाधान का सर्वोत्तम साधन माना गया।
- सार्वभौमिक सिद्धांतों (Universal Laws) पर निर्भरता – वैज्ञानिक खोजों और सार्वभौमिक नियमों में अटूट विश्वास, जिससे प्रकृति के रहस्यों को समझकर उन्हें नियंत्रित किया जा सके।
- तर्क और विज्ञान की सर्वोच्चता – यह धारणा है कि वैज्ञानिक पद्धति और तर्क के माध्यम से मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकता है तथा सुखी, समृद्ध और उन्नत जीवन जी सकता है।

आधुनिकता का यह दृष्टिकोण जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में परिलक्षित हुआ, जिससे समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, साहित्य और दर्शन में गहरे परिवर्तन देखने को मिले।

आधुनिकता न केवल एक दार्शनिक अवधारणा है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया भी है, जिसने 19वीं शताब्दी तक आते-आते यूरोप में आधुनिक उद्योगों, पूँजीवाद और सामाजिक संबंधों की एक नई संरचना को जन्म दिया। इस औद्योगिक समाज की विशेषताएँ थीं—शहरीकरण, नौकरशाही का विस्तार, व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद और तर्कबुद्धि का विकास। आधुनिकतावादी वैज्ञानिक सोच मूल रूप से इस धारणा पर आधारित थी कि मानव मस्तिष्क बाह्य जगत का दर्पण है और विज्ञान का उद्देश्य इस जगत की सटीक एवं विश्वसनीय छवि प्रस्तुत करना है। दूसरे शब्दों में, आधुनिक विज्ञान सत्य की अनुकृति प्राप्त करने को अपना केंद्रीय ध्येय मानता था। यह ध्यान देने

योग्य है कि आधुनिकता मूलतः यूरोप की देन है। यूरोप में औद्योगीकरण की प्रक्रिया और वैश्विक स्तर पर नए बाज़ारों की खोज के प्रयासों ने उपनिवेशवाद को जन्म दिया। जहाँ-जहाँ उपनिवेश स्थापित किए गए, वहाँ आधुनिकता एक अतिशयचारी विचार के रूप में पहुँची और विभिन्न स्तरों पर प्रभावी रही।

- परंपरागत रूढ़ियों को त्यागकर नवीनता को आत्मसात करना आधुनिकता का मूलभूत लक्षण

19वीं शताब्दी के साथ आधुनिक युग का सूत्रपात हुआ और ज्ञान-विज्ञान की नई अवधारणाओं का विकास हुआ। परंपरागत रूढ़ियों को त्यागकर नवीनता को आत्मसात करना आधुनिकता का मूलभूत लक्षण बना। मध्ययुगीन मूल्यों के ह्रास और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उदय ने सांस्कृतिक परिवर्तन को भी जन्म दिया, जिससे आधुनिकता की अवधारणा को गति मिली।

- आधुनिकता ने कई देशों में औद्योगिक विकास किया लेकिन विश्व युद्ध के विनाश के बाद सर्वत्र मोहभंग की स्थिति थी।

यह तथ्य निर्विवाद है कि आधुनिकता ने अनेक देशों में औद्योगिक विकास को गति दी, जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया, तथा जीवन को अधिक सुगम एवं सुविधाजनक बनाया। किंतु, प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धों की भीषण विनाशलीला के बाद, आधुनिकता को लेकर मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई। अब यह विचार किया जाने लगा कि यदि आधुनिकता की विचारधारा इतनी प्रगतिशील थी, तो उसी के प्रभाव में विश्व युद्ध जैसी विभीषिकाएँ क्यों जन्मीं? क्या इसका कारण आधुनिकता का मूलभूत चिंतन ही था?

इस प्रश्न ने आधुनिकता की आलोचना के लिए एक नई दिशा प्रदान की और इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता को जन्म दिया। आधुनिकता से जुड़े व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, औद्योगीकरण के दुष्प्रभाव, पूँजीवादी शोषण, तथा वैश्विक असंतुलन की समस्याओं पर विमर्श आरंभ हुआ, जिससे उत्तर-आधुनिक चिंतन की आधारशिला रखी गई।

- अस्मिता का निर्माण अक्सर दूसरों के दमन और नियंत्रण के माध्यम से

आधुनिकता में अस्मिता का निर्माण अक्सर दूसरों के दमन और नियंत्रण के माध्यम से होता है। पश्चिम ने न केवल अपनी अस्मिता को दूसरों पर लादा है, बल्कि हर जगह वह अपनी अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास करता है। उसका यह विश्वास रहा है कि एकीकृत और एकरस राज्य ही प्रभावी रूप से कार्य कर सकते हैं।

आधुनिकता ने जिस गतिशील और संभावनापूर्ण मनुष्य को जन्म दिया था, उसी के साथ अनेक लोगों के विस्थापन और दमन की अकथनीय गाथा भी जुड़ी हुई है। पूँजीवाद - जो आधुनिकता की ही उपज था - ने इन लोगों को प्रताड़ित किया। आधुनिकता के वादों से उपजी यह गहरी निराशा और विज्ञान तथा इतिहास की दोहरी प्रवृत्ति के प्रति जागरूकता, अनेक विचारकों को उन बुनियादी आधारों पर प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित करती है, जिन पर आधुनिक काल का निर्माण हुआ था। आधुनिकता की निर्विवाद निश्चितताओं के प्रति यह गहरी बेचैनी ही उत्तर-आधुनिकता के प्रमुख लक्षणों में से एक है।

- उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता अपर्याप्तता का परिणाम है

यह समझना आवश्यक है कि उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता की मात्र प्रतिक्रिया या विरोध नहीं है, बल्कि उसकी अपर्याप्तता का परिणाम है। ‘उत्तर’ का तात्पर्य ‘बाद’

से है और इसी के अनुरूप उत्तर-आधुनिक चिंतन का उदय होता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, सत्य केवल वस्तुनिष्ठ नहीं होता और न ही विवेक ही ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन है।

- आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के बीच का मूल अंतर उनके विचारों में निहित है

उत्तर-आधुनिकता को आधुनिकता की 'पुनर्व्याख्या' या 'पुनर्लेखन' के रूप में देखा जा सकता है। यह सत्य है कि सांस्कृतिक इतिहास को किसी निश्चित 'पूर्व' या 'उत्तर' की श्रेणी में बांधना कठिन है—और ऐसा प्रयास अर्थहीन भी हो सकता है। इस दृष्टि से, उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता का अंत नहीं, बल्कि उसके भीतर से ही उपजी एक अवस्था है, जो निरंतर उसमें विद्यमान रहती है। आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के बीच का मूल अंतर उनके विचारों में निहित है और यही अंतर इन दोनों को सांस्कृतिक तथा सौंदर्यबोध की दृष्टि से दो अलग-अलग खंडों में विभाजित करता है।

1.4.1 आधुनिकता और उससे उत्पन्न पूँजीवाद

उत्तर-आधुनिकतावाद के बुनियादी लक्षणों का अध्ययन करने पर पाते हैं कि यह आधुनिकतावाद के दशक के मुक्ति आंदोलनों के भीतर से उपजा रेडिकल आंदोलन है जिसने सभी पुरानी विचारधाराओं, संस्थानों, व्यवस्थाओं पर न केवल प्रश्नचिह्न लगाए हैं बल्कि उन्हें अप्रासंगिक करार दिया है। इस बात पर बहुत बहस हो चुकी है कि क्या उत्तर-आधुनिकता कोई नई प्रवृत्ति है या आधुनिकता का ही विस्तार या विकास है। यह तो विवाद का विषय रहेगा ही कि क्या आधुनिकतावाद का युग समाप्त हो चुका है या उत्तर-आधुनिकतावाद इसका अगला चरण है। सुधीश पचौरी के मतानुसार – "उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता का विस्तार भी है और अन्तिम बिन्दु भी है। वह 'अनुपस्थिति' की उपस्थिति है। वह प्रतिनिधित्व-रहित की उपस्थिति है।"

- उत्तर-आधुनिकतावाद आधुनिकतावाद का नया विस्तार है उसकी सीमाओं को तोड़ता 'पॉवर शिफ्ट' का नया विज्ञान और भूगोल।

उत्तर-आधुनिकतावाद, आधुनिकतावाद का ही नया विस्तार है, जो उसकी सीमाओं को तोड़ता है और 'पॉवर शिफ्ट' का नया विज्ञान और भूगोल प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो मानवीय चिंतन, साहित्य, व्यवस्था और धर्म—सभी को 'अतीत' मानकर नई दृष्टि अपनाती है। आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता में एक बड़ा अंतर यह है कि आधुनिकता ने अपने चरम पर पहुँचकर संस्कृति का निषेध करना शुरू कर दिया था। आधुनिक युग में अतीत, परंपरा और बाहरी सत्ताओं को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति थी, जबकि उत्तर-आधुनिकता पूरी तरह संस्कृति पर केंद्रित है। आज संस्कृति के बिना कोई चर्चा पूरी नहीं होती। यह न केवल संस्कृति की शक्ति को दर्शाता है, बल्कि यह भी चेतावनी देता है कि मनुष्यता, व्यापार, विज्ञान और राजनीति—इन सभी क्षेत्रों में संघर्ष करते-करते अब अंतिम मोर्चे के रूप में संस्कृति के मैदान में आ खड़ी हुई है।

आधुनिकता एक केंद्रित, एकरूप और सार्वभौमिक सोच को बढ़ावा देती है, जबकि उत्तर-आधुनिकतावाद इसके विपरीत, केंद्रीय वर्चस्व को नकारकर स्थानीयता और विविधता पर जोर देता है। आधुनिक विचारधारा निश्चितता, क्रमबद्धता और

समानता में विश्वास करती है तथा अस्पष्टता और अनायास को खत्म करना चाहती है। यह भिन्नताओं को मिटाने का प्रयास करती है। लेकिन उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण इसे अस्वीकार करता है और विविधताओं को स्वीकार करता है। इसमें अव्यवस्था और अनिश्चितता को भी स्थान मिलता है।

आधुनिकता में पुनःसृजन की पुकार थी, जबकि उत्तर-आधुनिकता में विकेंद्रीकरण, अलग पहचान, विविध आवाज़ों और विखंडन का बोलबाला है। उत्तर-आधुनिक युग ने आधुनिकता की उस मूल धारणा को चुनौती दी है, जो उच्च संस्कृति और निम्न संस्कृति के बीच कृत्रिम भेद करती है। उत्तर-आधुनिकतावादी कला की अमूर्तता, अभिजात्य प्रवृत्ति और साहित्य समीक्षा को संदेह की दृष्टि से देखता है। वह उच्च और निम्न कला के कृत्रिम वर्गीकरण को अस्वीकार करता है और न ही कला को क्लासिकी या आधुनिक श्रेणियों में बांटता है। इसके विपरीत, वह पॉपुलर कल्चर को अपनाने की प्रवृत्ति रखता है और ऐसे कला रूपों का 'आविष्कार' करता है, जिनमें मीडिया के बिंबों और प्रतिमानों का समावेश होता है।

- उच्च और निम्न कला के कृत्रिम वर्गीकरण को अस्वीकार

आधुनिकता की राजनीति राज्य की राजनीति है। इसका लक्ष्य सभी चीज़ों को एकीकृत (Homogenized) करने की रूपरेखा में डालना है। किन्तु उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा मुक्ति के लिए विभिन्न स्थानीय एवं स्वतंत्र संघर्षों की बात करती है। यह विचारधारा प्रबुद्ध अल्पसंख्यकों के साम्राज्यवाद का विरोध करती है और उपनिवेशों में रहने वाले काले लोगों, अल्पसंख्यकों, धार्मिक समूहों आदि के पक्ष में आवाज़ उठाती है।

- आधुनिकता की राजनीति राज्य की राजनीति है

अभिजीत पाठक के अनुसार—'उत्तर-आधुनिकतावादियों के मतानुसार, सभी समूहों को अपने लिए बोलने का अधिकार है। सीधी-सी बात यह है कि उत्तर-आधुनिकता सभी महाख्यानों को अस्वीकार करती है और विविधता व अंतर को प्रमुखता देती है। आधुनिकता की ऐकिक दृष्टि और एकरूपता की आकांक्षा ने हमें विभिन्न संस्कृतियों और धरोहरों के प्रति उदासीन बना दिया है, जिससे हम सांस्कृतिक रूप से दरिद्र हो गए हैं। आधुनिकता ने अनेक प्रजातीय, लैंगिक और हाशिए पर धकेले गए समुदायों की आवाज़ को दबा दिया है।'

- आधुनिकता ने हाशिएकृत लोगों की आवाज़ को दबा दिया है

उत्तर-आधुनिकता में आधुनिकता के कई पक्ष मौजूद हैं, फिर भी यह तर्कशास्त्र और तार्किकता के उन कठोर प्रतिमानों को अस्वीकार करती है, जो आधुनिकता की विशेषता रहे हैं। आधुनिकता द्वारा निर्मित समस्त संरचनाएँ, जो संपूर्ण विश्व की व्याख्या करने का दावा करती थीं, अब दम तोड़ चुकी हैं।

- उत्तर-आधुनिकता में आधुनिकता के कई पक्ष मौजूद हैं

इक्कीसवीं शताब्दी हमारे समक्ष आधुनिकता की तर्क-प्रणाली, कार्य-कारण श्रृंखला, नैतिक सिद्धांतवाद, आधुनिकोत्तर पॉप संस्कृति, मिश्रित जीवन शैली और साहित्य-कला के नए आयामों को प्रस्तुत कर रही है।

उत्तर-आधुनिकता हर महानता को विदा देती है और सामान्यता या न्यूनतमता को संभव बनाती है। यह विचारों की समग्रता के स्थान पर आंशिकता को स्वीकार करती है, रचना को विज्ञापन में बदल देती है और समीक्षा को प्रायोजित कर देती है। उत्तर-आधुनिकता ने विकेंद्रीकरण और स्थानीय अस्मिता की राजनीति को खुला समर्थन दिया है और इसे स्वीकार भी किया है।

- उत्तर-आधुनिकता हर महानता को विदाई देती है और एक सामान्यता या न्यूनतम्यता सबको संभव करती है।

आधुनिकता समाज में खंड-चेतना और अल्पकालिकता की धारणा लेकर आई थी, जबकि उत्तर-आधुनिकता ने आधुनिकता के मूल दार्शनिक और तात्त्विक आधार स्तंभों पर गंभीर प्रश्नचिह्न खड़े किए हैं। कुल मिलाकर, यह एक ऐसी अवधारणा है जो स्थापित विचारों को चुनौती देती है और नए दृष्टिकोणों को जन्म देती है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में उत्तर-आधुनिकतावाद का बौद्धिक आन्दोलन एक केंद्रीय भूमिका अदा कर रहा है। यूरोप, विशेषतः फ्रांस और जर्मनी में जन्मे इस आन्दोलन ने अन्य क्षेत्रों में भी अपनी प्रासंगिकता स्थापित की है। केंद्रीय अर्थ में यह निश्चित ही आधुनिकतावादी अवधारणा की सीमाओं और कमियों को पहचानने और अनुभव करने की परिणति कहा जा सकता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

आधुनिकता मूल रूप से एक यूरोपीय अवधारणा और स्थिति है। यूरोप के औद्योगीकरण और उपनिवेशों की खोज की प्रवृत्ति ने इसे एक अतिचारी विचार के रूप में अन्य क्षेत्रों तक पहुँचाया। जहाँ-जहाँ उपनिवेश स्थापित हुए, वहाँ आधुनिकता सक्रियन रही और एक केंद्रीकृत व्यवस्था के रूप में उभरकर सामने आई। हालांकि, आज आधुनिक केंद्रीकृत व्यवस्था और स्वायत्त मनुष्य, अपने अंतिम रूप में, व्यर्थ होते जा रहे हैं। यूरोपीय बौद्धिक जगत में भी यह एहसास बढ़ रहा है कि आधुनिकता की महान सभ्यतावादी योजना में कुछ आंतरिक दोष और बीमारियाँ हैं। इसका सत्य ही संकटग्रस्त हो गया है और आधुनिक बोध अप्रासंगिक प्रतीत होने लगा है। आधुनिकता की तरह ही उत्तर-आधुनिकता का भी कोई एकीकृत सिद्धांत नहीं है। यह एक बिखरी और विविधतापूर्ण विचारधारा है, जो आधुनिकता की हल्की-फुल्की आलोचना से लेकर इसके पूर्ण निषेध तक फैली हुई है। हिन्दी में उत्तर-आधुनिकता की चर्चा कभी मुख्यधारा में आ जाती है और कभी हाशिए पर चली जाती है। हालांकि, हिन्दी आलोचकों और चिंतकों के बीच इसका सुव्यवस्थित दर्शन अभी पूरी तरह विकसित नहीं हो पाया है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. विवेकयुक्त होना आधुनिक होने की पहचान है। इस युक्ति से आप किस हद तक सहमत हैं?
2. उत्तर-आधुनिकता किस प्रकार आधुनिकता की पुनर्व्याख्या करती है? स्पष्ट कीजिए।

3. उत्तर-आधुनिकता के प्रमुख दार्शनिकों और विचारकों के योगदान का विश्लेषण करें।
4. पूँजीवाद के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों पर विस्तृत चर्चा करें।
5. क्या औद्योगिक विकास के बिना आधुनिकता संभव थी? तर्क सहित उत्तर दें।
6. उत्तर-आधुनिकता के सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रभावों पर चर्चा करें।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघष - स ंरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य - प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/krS4tOg6aq0?si=OqTwRJzcnGXyDIEG
- https://youtu.be/KSN71Vnz9qw?si=FaJVB5R-DFDOul5Z
- https://youtu.be/KSN71Vnz9qw?si=FaJVB5R-DFDOul5Z

02

BLOCK

विमर्शों की सैद्धांतिकी

Block Content

Unit 1 रोला बार्थ-संरचनावाद

Unit 2 जॉक देरीदा-विखंडनवाद

Unit 3 ज्यां बौद्रीआ-छलना सिद्धांत

Unit 4 जां फ्रास्वा ल्योतार-महाआख्यान का अंत

Unit 5 मिशेल फूको-विमर्श सिद्धांत, नव इतिहासवाद

Unit 6 फ्रेड्रिक जेमेसन-वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क

Unit 7 एडवर्ड सईद-प्राच्यवाद

Unit 8 गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक-कैन द सबाल्टर्न स्पीक

इकाई 1

रोला बार्थ-संरचनावाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- ‘रचना’ और ‘पाठ’ के अन्तर को समझता है
- ‘पाठ’ की बहुलार्थकता को समझता है
- ‘लेखक’ और ‘पाठ’ के बीच के संबंध को नए तरीके से देखता है
- ‘लेखक की मृत्यु’के सही अर्थ को समझता है
- रोलां बार्थ की प्रमुख साहित्यिक अवधारणाओं से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

साहित्यिक आलोचना का अर्थ है किसी साहित्यिक कृति जैसे कविता, कहानी, उपन्यास या नाटक का मूल्यांकन करना। यह सिर्फ रचना का सारांश देने से आगे बढ़कर उसकी गुणवत्ता, लेखक पर उसका प्रभाव और उसकी स्थायी महत्ता पर चर्चा करती है। किसी रचना का विश्लेषण करने के लिए विभिन्न साहित्यिक सिद्धांत होते हैं। आलोचक जिस सिद्धांत या विचारधारा का उपयोग करता है, उसके आधार पर मूल्यांकन अलग-अलग हो सकता है। साहित्यिक आलोचना और साहित्यिक सिद्धांत, दोनों ही साहित्य को समझने के तरीके हैं। साहित्यिक सिद्धांत मुख्य रूप से साहित्य से जुड़े व्यापक प्रश्नों को देखता है, जैसे – लेखक का उद्देश्य क्या था या पाठ का सही अर्थ क्या है। इसे साहित्य का दर्शन भी कहा जा सकता है।

1968 एक ऐसा वर्ष था जिसे उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रतिनिधि प्रतीक माना जा सकता है। इस वर्ष न केवल साहित्यिक आलोचना की पारंपरिक अवधारणाएँ बदल गईं, बल्कि वैश्विक परिदृश्य में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसी वर्ष फ्रांस में छात्र विद्रोह हुआ, जहाँ वर्ग संघर्ष के स्थान पर युवा वर्ग व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष का अग्रणी दस्ते के रूप में उभरा। उत्तर-आधुनिक काल का आरंभ विश्वयुद्धोत्तर काल में हुआ। यह वह समय था जब कई उपनिवेश राज्य तेजी से स्वतंत्र हुए और वैश्विक स्तर पर सत्ता-संतुलन पुनर्निर्मित होने लगा। हालाँकि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बावजूद कई उपनिवेशित राष्ट्रों पर यूरोप और अमेरिका का प्रभाव लंबे समय तक बना रहा, जिससे नव-उपनिवेशवाद का युग आरंभ हुआ। इसका अर्थ यह था कि यद्यपि उपनिवेश राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो गए, वे मानसिक रूप से उपनिवेशवाद की छाया से मुक्त नहीं हो सके। इसी समय, साहित्यिक चिंतन में नवीनता की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस बौद्धिक मंथन ने साहित्यिक आलोचना में नई अवधारणाओं और चिंतन

पद्धतियों को जन्म दिया। यह सत्य है कि जब स्थापित सिद्धांत किसी कृति की व्याख्या में अक्षम हो जाते हैं, तब साहित्यिक चिंतन में नवाचार आवश्यक हो जाता है। समकालीन साहित्यिक चिंतन की इन नई अवधारणाओं एवं चिंतन पद्धतियों को विकसित करने वाले प्रमुख विद्वानों का परिचय हम आगे प्राप्त करेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक एक रचनाकार को सृष्टा का दर्जा दिया जाता था। रचनाकार को ईश्वर के समान माना जाता था, क्योंकि दोनों ही सृजन करते थे। टी.एस. इलियट के 'न्यू क्रिटिसिज़्म' (New Criticism) के आगमन के साथ रचनाकार का यह दर्जा डगमगाने लगा और उत्तर-आधुनिकतावाद के दौर में तो 'लेखक की मृत्यु' की अवधारणा तक आ गई। 1968 में रोलां बार्थ की पुस्तक The Death of the Author प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने इस विचार को विस्तार दिया। उसी वर्ष फ्रैंक कमोंड ने यह कह दिया कि यह युग 'अंत के एहसास' का युग है।

नवें दशक तक आते-आते उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रभाव इतना व्यापक हो गया कि कला, साहित्य, राजनीति और समाजशास्त्र के विमर्शों (Discourse) का केंद्र बन गया। स्थिति यह है कि भारत समेत पूरी तीसरी दुनिया के पास साहित्यिक चिंतन के रूप में जो भी नए विचार आ रहे हैं, वे अधिकांशतः पश्चिम में विकसित साहित्यिक सिद्धांतों से प्रभावित हैं। समकालीन साहित्य चिंतन की विशेषता यह है कि अब इसकी कोई एकरूपी संरचना नहीं रह गई है। किसी एक विचारधारा का महत्व अलग-अलग संस्कृतियों और देशों के लिए भिन्न हो सकता है। अब तीसरी दुनिया के लेखक पश्चिमी विचारकों की अवधारणाओं को आंख मूंदकर स्वीकार करने के बजाय उनका विश्लेषण और पुनर्व्याख्या कर रहे हैं।

उत्तर-आधुनिकतावाद को सूत्रबद्ध करने वाले प्रमुख विचारकों में मिशेल फूको (Michel Foucault), जॉक देरीदा (Jacques Derrida), रोलां बार्थ (Roland Barthes), जॉ बौद्रीआ (Jean Baudrillard), फ्रेड्रिक जेमेसन (Fredric Jameson), जॉ फ्रांस्वां ल्योत्तार (Jean-François Lyotard), एडवर्ड सईद (Edward Said) और गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक (Gayatri Chakravorty Spivak) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के विचारों ने आधुनिकता के आख्यानों को चुनौती दी और उन बुनियादी अवधारणाओं पर प्रश्न उठाए, जिन पर आधुनिकता आधारित थी—जैसे पूँजीवाद, ऐतिहासिकतावाद, मानवतावाद, वैज्ञानिकता और तर्कवाद। उन्होंने निश्चित सत्य की धारणा पर भी प्रश्न खड़े किए। जैसे-जैसे अधिक मानव विज्ञानी नए दृष्टिकोणों के साथ अध्ययन करने लगे, यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत व्याख्या के आधार पर किसी भी सत्य को प्रस्तुत करता है।

इस इकाई में हम उत्तर-आधुनिकतावाद के एक प्रमुख सिद्धांतकार, रोलां बार्थ, के विचारों की विस्तार से चर्चा करेंगे।

Keywords / मुख्य बिन्दु

पाठात्मकता, "पाठ' की बहुलार्थकता, पाठकीय पाठ, लेखकीय पाठ, न्यू क्रिटिसिज़्म

Discussion / चर्चा

2.1 रोलां बार्थ

- सांकेतिकता और मिथक पर महत्वपूर्ण कार्य किया

रोलां बार्थ (Roland Barthes) (1915-1980) एक फ्रांसीसी निबंधकार और साहित्यिक आलोचक थे। उनका जन्म 1915 में पेरिस में हुआ था। अपने जीवन के शुरुआती दौर में उन्होंने सांकेतिकता और मिथक पर महत्वपूर्ण कार्य किया। अपने लेखन में बार्थ ने मिथकों के प्रचलित अर्थों से हटकर नए अर्थो का उद्घाटन किया। उनके लेखन ने संरचनावाद और नई आलोचना को बौद्धिक आंदोलनों के रूप में स्थापित करने में मदद की।

2.1.1 रोलां बार्थ के विचार

- रोलों वार्थ का साहित्यक-दृष्टि लगातार विकासमान

फ्रांस के प्रसिद्ध साहित्य चिंतक रोलां बार्थ ने एक निर्भीक सिध्दांतकार के रूप में भाषा, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में परम्परागत अवधारणाओं को पूरी तरह तहस-नहस करने का प्रयास किया। रोलां बार्थ ने भाषा संकेतों, एवं उनके अर्थ और व्याख्या पर कई सिद्धांत विकसित किए। 'रचना का पाठ बन जाना' एवं 'लेखक की मृत्यु' की घोषणा रोलां बार्थ ने किया जिससे साहित्य जगत में तहलका मच गया। रोलां बार्थ की साहित्यिक - दृष्टि लगातार विकासमान रही है। उनकी आरंभिक आलोचना, मुख्यतः आधुनिक भाषा विज्ञान से सम्बद्ध है।

Roland Barthes

उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं-

- Writing degree Zero (1953)
- The Death of the Author (1968)
- S/Z (1970)
- The Pleasure of the Text (1973)
- The Structural Analysis of Narrative (1977)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक एक रचनाकार को 'सृष्टा'(Creator) का दर्जा दिया जाता था। रचनाकार को ईश्वर के समान माना जाता था क्योंकि दोनों ही सृष्टि को जन्म देते थे। सामान्य संस्कृति में साहित्य की व्याख्या, लेखक के व्यक्तित्व, उसके

जीवन, उसकी रुचियों पर केंद्रित होती है। किसी कृति की व्याख्या हमेशा उस व्यक्ति में खोजी जाती है जिसने उसे बनाया है। बार्थ के अनुसार किसी पाठ को लेखक देना उस पाठ पर एक सीमा लगाना है, उसे अंतिम संकेत देना है, लेखन को समाप्त करना है। टी.एस. इलियट के 'न्यू क्रिटिसिज़्म' में रचनाकार का वह दर्जा हिलने लगा और उत्तर-आधुनिकतावाद के युग में 'लेखक की मृत्यु' की चर्चा तक होने लगी। लेखन एक क्रियात्मक कार्य है जो केवल उस क्षण मौजूद होता है जब हम पृष्ठ पर शब्दों को पढ़ते हैं, क्योंकि यही एकमात्र क्षण होता है जिसमें उन शब्दों को वास्तव में अर्थ दिया जाता है - और उन्हें उनका अर्थ हम ही देते हैं, जो उनकी व्याख्या करते हैं। हमें साहित्य के किसी कार्य को किसी पवित्र पाठ के धर्म निरपेक्ष संस्करण के रूप में नहीं देखना चाहिए जहाँ लेखक एक ईश्वर है जिसने पाठ को एक ही अर्थ से भर दिया है।

- रचनाकार को 'सृष्टा' (Creator) का दर्जा दिया जाता था

रोलां बार्थ ने एक निर्भीक सिद्धांतकार के रूप में भाषा, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में परंपरागत अवधारणाओं को पूरी तरह तहस-नहस करने का प्रयास किया। उन्होंने 'पाठ' पर ध्यान देकर 'पाठ की बहुलार्थकता' का महत्व स्पष्ट किया एवं माना कि पाठ मात्र अर्थ नहीं अर्थोत्पत्ति का नया संदेश है। ऐसा करने से सृजनात्मक अर्थ और आलोचना की निष्पत्ति होती है। रोलां बार्थ ने रचना को 'पाठ' मानना ज़्यादा उचित समझा। 'पाठ' का अर्थ एकत्व को तोड़कर वे पाठ की बहुलार्थकता पर डट गए। पाठ एवं पाठक का संबंध मात्र 'भोक्ता' का नहीं है – अपितु अर्थोत्पन्न करने वाले उत्पादक का है, एक बार पाठ पढ़ा जाता है फिर बार-बार लिखा समझा जाता है—सर्जनात्मक अर्थ का उपभोक्ता पाठ-पाठक दोनों की तदाकारिता है। पाठक जब 'पाठ' को भिन्न दृष्टि से पढ़ता है तो भिन्न अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। बार्थ ने यह प्रस्ताव दिया कि पाठक को पाठ का लेखक माना जाना चाहिए और इसने एक सत्य (एकवचन) पर कई विश्वसनीय सत्य (बहुवचन) के विचार को जन्म दिया। कलाकृति में भाषा बोलती है-व्यक्ति नहीं। बार्थ का मानना था कि किसी पाठ का अर्थ पाठक के अनुभव और उसके साथ बातचीत से उत्पन्न होता है। उन्होंने तर्क दिया कि पाठ के कई अर्थ होते हैं क्योंकि प्रत्येक पाठक उन्हें अलग - अलग तरीके से देखता है।

- रोलों वार्थ ने रचनाको पाठ मानना उचित समझता

एम.एच.एबरहाम उसे यों व्यक्त करते हैं –"Roland Barthes in S/Z (1970) proposed a distinction between a text which is 'lisible' (readable) and one which, although 'scriptible' (writable) is 'illisible' (unreadable). Readable texts are traditional or 'classical' ones. An 'unreadable' text is one which largely violates parodies or innovates upon prevailing conventions."

रोलां बार्थ के अनुसार अन्य पाठों की तरह साहित्यिक कृति भी एक 'पाठ' है। 'पाठ' अपने अर्थ में बहुलार्थक तथा अनिश्चित है। फिर भाषा की भी सीमा है। प्रायः भाषा वह कहने में पंगु मौन हो जाती है, जो वह कहने का अरमान रखती है। अतः कृति के संपूर्ण अर्थ को प्राप्त करने का दावा ही झूठ है। उनके अनुसार एकत्व भ्रांति है-सत्य है - अनेकत्व। उनका मानना था कि प्रत्येक कलाकृति भिन्न होती है, विभेद कलाकृति की अद्वितीयता में नहीं-कृति की 'पाठात्मकता' या Textuality में होती है।

‘लेखक की मृत्यु’ फ्रांसीसी साहित्यिक सिद्धांतकार रोलां बार्थ द्वारा 1968 में लिखा गया एक प्रभावशाली निबंध है। वास्तव में लेखक के प्रति हमारा जुनून एक अजीबोगरीब घटना है। बार्थ के इस निबंध ने लेखकीय कर्म के हमारे पारंपरिक विचार पर प्रश्नचिह्न लगाया है। हमें लेखक और पाठ के बीच के संबंध को नए तरीके से देखने के लिए प्रेरित किया है। 1968 में रोलां बार्थ ने ‘The Death of the Author’ में लेखन की केन्द्रीय स्थिति के समाप्त होने की घोषणा की। रचना का सम्बन्ध रचनाकार से है और ‘पाठ’ का सम्बन्ध पाठक से है। आज रचनाकार से ज़्यादा पाठक महत्व पाने लगा है। पाठ को पढ़कर पाठक की क्या प्रतिक्रिया है यही मायने रखता है। ‘द डेथ ऑफ द ऑथर’ लेखक और साहित्यिक पाठ के बीच के रिश्ते के बारे में कई साहसिक लेकिन महत्वपूर्ण दावे करता है, कि साहित्यिक कृतियाँ मौलिक नहीं होती और साहित्यिक कृति का अर्थ केवल उस कृति के लेखक को देखकर निर्धारित नहीं किया जा सकता। The Death of the Author नामक लेख उस अवधारणा को निरस्त करता है कि कृतिकार ही पाठ का उत्स है। क्योंकि पाठक ही पाठ के भीतर सोऐ हुए अर्थ को जगाता है एवं उससे हृदय संवाद स्थापित करता है।

- 1968 में रोलां बार्थ ने ‘The Death of the Author’ में लेखन की केन्द्रीय स्थिति के समाप्त होने की घोषणा की।

रोलां बार्थ के शब्दों में —“Once a text is in circulation the umbilical chord between the text and the author is cut and the text leads an independent existence.”

उत्तर-आधुनिक बुद्धिजीवी या रचना विश्लेषक यह मानते हैं कि लिखने के बाद हर ‘पाठ’ अपने रचनाकार से अलग हो जाता है यहाँ तक कि रचना अपने रचनाकार से नाता तोड़ लेती है-वह अपना स्वायत्त स्वतंत्र जीवन जीती है और यह जीवन अर्थबहुलता-अर्थअनंतता में जीता बदलता रहता है। रचना का ‘पाठ’ अपने पाठक को कई तरह से जीता है और हर पाठक ‘पाठ’ को नया भाष्य देता है। मूल बात यह है कि पुस्तक चाहे कविता की हो या आलोचना की उसका ‘पाठ’ हर नए पाठक के साथ बदलता है - एक तरह से पाठक ही पाठ के अर्थ का उत्पादक बन जाता है। इस तरह रचना या आलोचना का न कोई स्थायी स्तर होता है न स्थायी व्याख्या। ठीक वैसे ही जैसे प्रसव के बाद नाभी बन्धन के काटने पर बच्चा और जच्चा का सम्बन्ध टूट जाता है और दोनों अलग अस्तित्व रखते हैं उसी प्रकार रचना के प्रकाशित होते ही रचनाकार से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और अगर रचनाकार वापस उस रचना में आना भी चाहता है तो केवल एक अतिथि के रूप में।

रोलां बार्थ के ही शब्दों में—“It is not that the author cannot ‘come back’ into the text into his text, however, he can only do so as a guest, so to speak, he becomes a ‘paper author.”

- किसी पाठ का अर्थ उसके मूल में नहीं बल्कि उसके गंतव्य में निहित होता ह

किसी पाठ का अर्थ उसके मूल में नहीं बल्कि उसके गंतव्य में निहित होता है और पाठक ही पाठ का अर्थ निर्धारित करता है न कि लेखक। बार्थ का मत स्पष्ट है कि ‘कलाकृति’ के ‘पाठ’ या व्याख्या का एकाधिकार या अधिनायकत्व कृतिकार को नहीं है, पाठक को है क्योंकि पाठक ही ‘पाठ’ को उसमें सोए हुए अर्थ को जगाता है उससे

हृदय संवाद स्थापित करता है। यूरोपीय विद्वानों में इस विचार पर बहुत बहस हुई और बहस ज़ारी है कि लिखारी लिखती है, लेखक नहीं। यह प्रश्न भी कम चौंकाने वाला नहीं है कि कब लेखक 'व्यक्ति होता है, समाज होता है, देश होता है, कब नहीं होता'।

'कलाकृति' की पाठात्मकता (Textuality) पर रोलां बार्थ ने अपनी रचना S/Z (एस जेड़) में यों कहा है - प्रत्येक कलाकृति भिन्न होती है। भिन्नता से उत्पन्न विभेद 'कलाकृति' की पाठात्मकता (Textuality) को प्रभावित करती है। इसलिए कलाकृति में अर्थ का परिसीमन न संभव है न उचित। इसलिए 'पाठ' स्वतंत्र स्वायत्त नहीं होता है न हो सकता है, क्योंकि यह पूर्ववर्ती लेखन से जुड़ा होता है। कृष्णदत्त पालीवाल जी के मतानुसार- रचना का खुला पाठ पाठक को यह छूट देता है कि उसमें नई अर्थोत्पत्ति को जन्म दे सके। अतः कलाकृति के 'खुले पाठ' में पाठ और पाठक का संबंध मात्र 'आस्वादक', 'भोक्ता' का नहीं है। यहाँ पाठक ही पाठ को नहीं पढ़ता। 'पाठ' भी पाठक को पढ़ता है।

- पाठक को है क्योंकि पाठक ही 'पाठ' को उसमें सोए हुए अर्थ को जगाता है

रोलां बार्थ—"While the work is held in the hand, the text is held in language, it exists only as discourse."

मतलब व्यक्त है– रचना को हाथ में थामा जा सकता है लेकिन पाठ उसकी भाषा के अन्दर निहित है जो विमर्शों से ही पूर्ण रूप से खुलता है। संक्षेप में कह सकते हें कि आज के युग में 'कलाकृति' का 'बंद पाठ' नहीं हो सकता- चाहे वह 'राम की शक्ति पूजा' हो या 'कामायनी'।

अपनी आत्मकथा 'रोलां बार्थ बाई रोलां बार्थ' (Roland Barthes by Roland Barthes) में वह अपनी ही चीरफाड़ कर अपने ऊपर व्यंग्य करते हैं। उनके चर्चित निबंध 'From Work to Text' ने साहित्य जगत में एक नए विमर्श की शुरुआत की। सुधीश पचौरी के अनुसार, 'उत्तर-आधुनिक संरचना' पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने रचना के केंद्र से रचनाकार को हटा दिया है और 'पाठ' (Text) को उसके पाठक से भी दूर कर दिया है। हालांकि, यह आरोप नासमझी पर आधारित है। वास्तव में, उत्तर-आधुनिक रचना 'पाठ' को नए संदर्भों में स्थापित करती है। यह न केवल रचना-प्रक्रिया को पुनः सन्दर्भित करती है, बल्कि पाठक को भी। उत्तर-आधुनिक दृष्टि कोण में 'पाठ' को संपूर्ण संचार प्रक्रिया के संदर्भ में देखा जाता है, जिसमें सामाजिक, विचारधारात्मक, ऐतिहासिक और सौंदर्यात्मक पहलू शामिल होते हैं। यह उन तमाम प्रक्रियाओं को भी समझने का प्रयास करता है, जिनमें एक रचना अस्तित्व में आती है।

- बार्थ के मतानुसार किसी पाठ पर लेखक को थोपना वास्तव में उस पाठ को सीमित कर देना है।

बार्थ ने 'लेखक की मृत्यु' का निष्कर्ष यह तर्क देकर निकाला कि किसी पाठ पर लेखक को थोपना वास्तव में उस पाठ को सीमित कर देना है। उनके अनुसार लेखन संकेतों का एक समूह है जिसका अर्थ केवल तभी होता है जब पाठक उससे जुड़ता है। कलाकृति का बंद पाठ नहीं हो सकता। उसका खुला पाठ पाठक को यह छूट देता है कि उसमें नई अर्थोत्पत्ति को जन्म दे सके। अतः कलाकृति के खुले पाठ में पाठ और

पाठक का संबंध मात्र आस्वादक भोक्ता का नहीं है, यहाँ पाठक ही पाठ को नहीं पढ़ता। पाठ भी पाठक को पढ़ता है।

2.1.2 रोला बार्थ के आलोचना पद्धतियाँ

रोला बार्थ के समय में निम्नलिखित आलोचना पद्धतियाँ मौजूद थी -

- ● रोला बार्थ के समय में निम्नलिखित आलोचना पद्धतियाँ

- ▶ स्वच्छन्दतावादी आलोचना पद्धति
- ▶ यथार्थवादी आलोचना पद्धति
- ▶ अस्तित्ववादी आलोचना पद्धति
- ▶ संरचनावादी आलोचना पद्धति

रोलां बार्थ ने इनमें से पहली तीन आलोचना पद्धतियों की सीमाओं को उजागर किया और चौथी पद्धति, यानी संरचनावाद को अपनाया। परंतु जल्द ही वे इस पद्धति की सीमाओं के प्रति भी सचेत हो गए और इस क्रम में आगे बढ़ते हुए उत्तर-संरचनावादी आलोचना पद्धति तक पहुँच गए। उन्होंने अपने समय में प्रचलित लगभग सभी साहित्यालोचना पद्धतियों की सीमाओं को पहचानकर अपनी आलोचना पद्धति का विकास किया।

हम कुछ बिंदुओं को लेकर बार्थ के तर्क का विरोध कर सकते हैं। पाठक का जन्म आवश्यक रूप से लेखक की मृत्यु की कीमत पर नहीं होना चाहिए। इसलिए किसी रचना को पढ़ते समय यह ध्यान रखना कि उसे किसने और किन परिस्थितियों में लिखा है, न केवल उचित है बल्कि कई बार इससे उस रचना को गहराई से समझने में भी सहायता मिलती है। 'लेखक की मृत्यु' एक साहसिक और प्रभावशाली वक्तव्य था, लेकिन इसके तर्क में कई पूर्ववर्ती विचार निहित थे—उदाहरण के लिए, अवैयक्तिकता पर उनका जोर, जो लगभग आधी सदी पहले टी. एस. इलियट द्वारा 1919 में लिखे गए निबंध 'परंपरा और व्यक्तिगत प्रतिभा' में दिया जा चुका था। हालाँकि, इलियट कवि को लिखित पाठ का एक महत्वपूर्ण स्रोत मानते थे।

2.1.3 रोला बार्थ के विचारधाराएँ

रोलां बार्थ का विचार था कि प्रत्येक रचना आर्थिक विचारधारा और राजनीतिक निर्णयों की बहुस्तरीयता के आवरण में होती है। अतः कोई भी निष्पक्ष आलोचनात्मक दृष्टिकोण संभव नहीं है। आलोचना कर्म में जो निष्पक्षता, तटस्थता तथा वस्तुनिष्ठता की बात करता है—वह झूठा और भ्रमग्रस्त है।

बार्थ के विचारों ने विविध बौद्धिक क्षेत्रों की खोज की और उन्होंने कई सिद्धांतों का विकास किया, जिनमें संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद प्रमुख हैं। साहित्यिक रचना के अंतिम इच्छित अर्थ की कल्पना करके कोई उसकी अंतिम व्याख्या का अनुमान लगा सकता है, लेकिन बार्थ बताते हैं कि भाषा में अर्थ का अत्यधिक प्रसार और लेखक के

मन की अज्ञात स्थिति किसी भी अंतिम एहसास को असंभव बना देती है।

1968 में लिखा गया उनका निबंध 'द डेथ ऑफ द ऑथर' (The Death of the Author) साहित्यिक पाठ की आलोचना में लेखक या उसके लेखकीय अधिकार को पाठ के अंतिम अर्थ के जबरन प्रक्षेपण के रूप में देखता है। इस संदर्भ में पाठ (Text) और उसके लेखक के बीच संबंध को एक नए धरातल पर स्थापित किया जा रहा है। इस बदलाव में लेखक को केंद्रीय भूमिका से हटा दिया जाता है।

- पाठक लेखक के आंतरिक अभिप्राय को पकड़ने और स्पष्ट करने का प्रयास करता है

सामान्यतः, लेखक को सृष्टा मानते हुए उसकी कृति को पढ़ते समय पाठक का उद्देश्य लेखक के दृष्टिकोण का उद्घाटन करना होता है। दूसरे शब्दों में, वह लेखक के आंतरिक अभिप्राय को पकड़ने और स्पष्ट करने का प्रयास करता है। उत्तर-आधुनिकतावादी विचारक लेखक और सृष्टा के इस प्रभुत्व और मर्यादा को अस्वीकार करते हैं। इसके बदले वे पाठक को व्याख्याकार का स्थान देते हैं, जो किसी भी पाठ को कोई भी अर्थ दे सकता है।

- साहित्यिक पाठ वह स्थान है जहाँ अनेक पूर्ववर्ती रचनाएँ आपस में मिलती-जुलती और टकराती हैं

'द डेथ ऑफ द ऑथर' को उत्तर-संरचनावादी कार्य माना जाता है क्योंकि यह साहित्य को मापने की पारंपरिक परंपराओं से आगे बढ़ता है। 'लेखक' के पारंपरिक विचार से हटकर यह हमें लेखक और पाठ के संबंध को नए दृष्टिकोण से देखने में मदद करता है। हमें साहित्य को एक पवित्र पाठ के रूप में नहीं देखना चाहिए, जहाँ लेखक एक ईश्वर की तरह एकमात्र अर्थ निर्धारित करता है। इसके विपरीत, बार्थ के अनुसार साहित्यिक पाठ वह स्थान है जहाँ अनेक पूर्ववर्ती रचनाएँ आपस में मिलती-जुलती और टकराती हैं। यह प्रभावों, संकेतों और उद्धरणों का एक जटिल ताना-बाना है, जिसमें कुछ भी पूर्णतः मौलिक नहीं होता।

लेखक को रचयिता की सत्ता से च्युत करने का तात्पर्य यह है कि हर रचना किसी न किसी पूर्ववर्ती रचना की प्रतिलिपि होती है, अतः कोई भी रचना शुद्ध रूप से मौलिक नहीं होती। लेखक केवल एक माध्यम होता है; जो कुछ वह लिख या कह रहा है, वह पूरी तरह उसके नियंत्रण में नहीं होता। इसलिए लेखक को स्वामी, शक्ति और प्रभुत्व से जोड़ना एक दोषपूर्ण धारणा है। दूसरी ओर, पाठक द्वारा किसी पाठ की गई व्याख्या भी अंतिम नहीं होती—वह केवल उसी समुदाय और संदर्भ में उपयुक्त होती है, जिसके आधार पर व्याख्या की गई है।

2.1.4 संरचनावाद

- संरचनावाद का मुख्य ध्यान भाषा और दर्शन पर केन्द्रित

युद्ध के बाद आलोचना के क्षेत्र में कई जटिल सिद्धांत उभरे, जिनमें भाषा विज्ञान, साहित्यिक आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना और संरचनावाद शामिल थे। 1930 से 1950 के दशक के बीच ये सिद्धांत आलोचना के क्षेत्र में प्रभावी रहे। इन प्रवृत्तियों में सबसे विवादास्पद आंदोलन संरचनावाद था, जो 1950 के दशक में फ्रांस में विकसित हुआ। 1970 के दशक के अंत और 1980 के दशक की शुरुआत में इसने अंग्रेजी अध्ययन के क्षेत्र में बड़ा प्रभाव डाला। संरचनावाद का मुख्य ध्यान इतिहास

या लेखक पर नहीं, बल्कि भाषा और दर्शन पर केंद्रित था। इसके प्रमुख विचारकों में भाषाविद् फर्डिनेंड डी सौसुरे और मानवविज्ञानी क्लॉड लेवी-स्ट्रॉस शामिल थे। संरचनावाद की जड़ें बीसवीं सदी की शुरुआत में फर्डिनेंड डी सौसुरे के विचारों में मिलती हैं। उन्होंने भाषा के अध्ययन को पारंपरिक ऐतिहासिक पद्धति से अलग करके भाषा की संरचना, पैटर्न और कार्यों पर केंद्रित किया। सौसुरे के अनुसार, भाषा केवल चीज़ों के नामकरण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह संकेतों (signs) की एक प्रणाली है, जिसमें शब्दों का अर्थ उनके आपसी संबंधों से तय होता है। उनके इस दृष्टिकोण ने साहित्य, समाजशास्त्र और अन्य विषयों में संरचनावादी विचारधारा को जन्म दिया।

- भाषा केवल चीज़ों के नामकरण की प्रक्रिय नहीं

1950 के दशक में संरचनावाद एक महत्वपूर्ण विचारधारा के रूप में उभरा, जिसने नई आलोचना (New Criticism) को चुनौती दी। इसका मुख्य सिद्धांत यह है कि किसी भी चीज़ को अलग-थलग समझने के बजाय, उसे उस बड़ी संरचना के संदर्भ में देखना चाहिए जिसका वह हिस्सा है। यह सिद्धांत भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति में गहरे अर्थों की खोज करता है। संरचनावाद की जड़ें भाषा विज्ञान में हैं, खासकर प्राग स्कूल की औपचारिकता से, जिसने शब्दों के आपसी संबंधों पर ज़ोर दिया। इसने शब्दों के अर्थ से अधिक उनके आपसी संबंधों—जैसे समानता, विरोध और समानांतरता—को महत्वपूर्ण माना। साहित्य में संरचनावाद का उद्देश्य किसी रचना के भीतर मौजूद संरचनाओं, जैसे कथानक (Plot), प्रतीक (Symbols), पात्रों के चित्रण (Characterization) और कथा की परतों (Narrative Layers) को खोजना है। यह देखता है कि किसी साहित्यिक कृति के तत्व अन्य ग्रंथों से किस तरह जुड़े हुए हैं। संरचनावादी आलोचना का मानना है कि किसी साहित्यिक पाठ का अर्थ वास्तविकता का सीधा प्रतिबिंब नहीं होता, बल्कि वह भाषा की परंपराओं और अन्य ग्रंथों के साथ उसके संबंधों से बनता है। संरचनावाद ने पाठ (Text) को केंद्र में रखा और लेखक या पाठक की व्यक्तिगत व्याख्या को कम महत्व दिया। इसके अनुसार, पाठ को स्वयं अपनी संरचना के आधार पर पढ़ा और समझा जाना चाहिए, न कि लेखक के इरादे या पाठक की राय से।

- संरचनावाद की जडें भाषा विज्ञान में है

फ्रांस के प्रसिद्ध विचारक रोलां बार्थ ने इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया। उनके विचार कई पारंपरिक साहित्यिक विद्वानों को समझ में नहीं आए और उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। लेकिन बार्थ ने इसे गर्व के साथ स्वीकार किया, क्योंकि उनका उद्देश्य पारंपरिक साहित्यिक आलोचना की स्थिर मान्यताओं को तोड़ना था। संरचनावाद मानता है कि किसी भी चीज़ को अलग-थलग समझने के बजाय उसकी बड़ी संरचना को देखना चाहिए।

साहित्य में यह कथा संरचना, प्रतीकों और ग्रंथों के आपसी संबंधों का अध्ययन करता है। पाठ का अर्थ लेखक की मंशा से नहीं, बल्कि उसकी आंतरिक संरचना और अन्य ग्रंथों से उसके संबंध से बनता है। रोलां बार्थ ने इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया और पारंपरिक साहित्यिक आलोचना को चुनौती दी।

- संरचनावाद एक साहित्यिक सिद्धांत है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रोलां बार्थ ने 'लेखक की मृत्यु' का निष्कर्ष इस तर्क के आधार पर निकाला कि किसी पाठ पर लेखक को थोपना वास्तव में उस पाठ को सीमित कर देता है, क्योंकि इससे हमें साहित्यिक कृति को उसके लेखक के संदर्भ में देखने की बाध्यता होती है। बार्थ के अनुसार, लेखन इस तरह कार्य नहीं करता। यह संकेतों का एक ऐसा समूह है जिसका अर्थ केवल तब उत्पन्न होता है जब पाठक उससे जुड़ता है। बार्थ का मानना था कि किसी पाठ का वास्तविक अर्थ उसके मूल में नहीं, बल्कि उसके गंतव्य में निहित होता है। इसलिए, हमें इस विचार से दूर रहना चाहिए कि पाठ का अर्थ लेखक द्वारा निर्धारित किया जाता है। 'द डेथ ऑफ द ऑथर' निबंध के माध्यम से बार्थ ने लेखक और पाठक के बीच पारंपरिक संबंधों को पुनः परिभाषित करने की कोशिश की। वे तर्क देते हैं कि लेखक हर प्रकार से अपने ही मूल का ध्वंस करता है। इस प्रकार, उन्होंने लेखक के महत्व को कम करते हुए पाठक की भूमिका को स्थापित करने का प्रयास किया। बार्थ के अनुसार, पाठक किसी भी कृति को अपने अनुभव संसार के आधार पर समझता है और उसे अपने संदर्भ में पुनः रचता है। इस दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप उनके समय में पाठक-केंद्रित आलोचना का उदय हुआ। 'लेखक की मृत्यु' का तात्पर्य यह नहीं है कि लिखने वाले व्यक्ति का वास्तविक रूप में अंत हो गया है, बल्कि इसका आशय यह है कि लेखक यह तय नहीं कर सकता कि उसकी कृति का अर्थ क्या होगा। पाठ की व्याख्या पर लेखक का एकाधिकार नहीं होता, क्योंकि हर पाठक अपनी संवेदना और दृष्टिकोण के अनुसार उसमें अर्थ खोजता है। लेखक की मृत्यु' की दूसरी विशेषता यह है कि किसी पाठ को प्रत्येक पाठक अलग-अलग तरीके से ग्रहण करेगा। इसका निर्धारण न लेखक कर सकता है, न आलोचक और न ही कोई अन्य व्यक्ति। कलाकृति का पाठ एक 'बंद पाठ' नहीं हो सकता, बल्कि यह एक मुक्त संरचना है, जिसका अर्थ पाठक स्वयं निर्मित करता है। हमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि किसी पाठ को किसने लिखा है और अर्थ निर्माण में उसकी क्या भूमिका हो सकती है। हालांकि, बार्थ के अनुसार, एक बार जब कोई पाठ लिखा जाता है और दुनिया के सामने आता है, तो वह केवल लेखक की संपत्ति नहीं रह जाता, बल्कि प्रत्येक पाठक की संपत्ति बन जाता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 1968 को उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रतिनिधि प्रतीक वर्ष क्यों माना जाता है।
2. रोलां बार्थ ने 'लेखक की मृत्यु' का निष्कर्ष क्या तर्क देकर निकाला।
3. लेखक की मृत्यु से रोला बार्थ क्या समझाना चाहते हैं।
4. रोलां बार्थ की प्रमुख साहित्यिक अवधारणाएँ क्या-क्या थी।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://www.youtube.com/watch?v=S7e257tlw7Y
- https://en.wikipedia.org/wiki/Roland_Barthes
- http://www.britannica.com/biography/Roland-Gerard-Barthes

इकाई 2

जॉक देरीदा-विखंडनवाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- पाठ की दुहरी पढ़त को जान पाता है
- पाठ के निर्धारित अर्थ को विस्तापित करना समझता है
- लेखकीय रणनीति विखंडन से अवगत होता है
- पाठों का बारीकी से अध्ययन करना सीखता है
- पाठों को पढने के अभ्यस्त तरीके के बजाय विभिन्न विकल्पों पर विचार करना सीखता है

Background / पृष्ठभूमि

उत्तर-आधुनिक सिद्धांत के विकास में विशेष रूप से भाषाई मोड़ देने वाले प्रमुख विचारक जॉक देरीदा (Jacques Derrida) थे। उत्तर-आधुनिक विमर्श में देरीदा का सबसे बुनियादी योगदान उनका 'विखंडन' (Deconstruction) का सिद्धांत है। वे सभी लिखित पाठों को जटिल सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का उत्पाद मानते हैं और उनका तर्क है कि किसी भी पाठ को अन्य पाठों और लेखन की परिपाटियों के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। पारंपरिक रूप से, वाक् या बोली गई भाषा में अर्थ को स्थिर और स्पष्ट रूप से निहित माना जाता रहा है, जो वाचक के अनुभव, इरादे या उद्देश्य के अनुरूप फिट होता है। लेकिन देरीदा के अनुसार, लेखन एक स्वतंत्र क्रीड़ा (free play) है, जिसमें संचार के प्रत्येक क्षेत्र में अंतर्निहित अनिश्चितता का तत्व मौजूद रहता है। पश्चिमी परंपरा में लेखन को दोयम दर्जे का मानने की प्रवृत्ति रही है, क्योंकि वह वाक् में निहित एक स्थायी अर्थ की धारणा को प्राथमिकता देती है। यह प्रवृत्ति केवल पश्चिमी दर्शन तक सीमित नहीं है, बल्कि हमारे शास्त्रों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। वैदिक पंडितों के ब्रह्मणवादी केंद्रवाद से लेकर उन सभी परिपाटियों तक, जहाँ वाचक की प्रमुखता मानी जाती है, अर्थ का केंद्र भी वाचक को ही बनाया जाता है। इसी अवधारणा का विस्तार हमें साहित्यिक पाठों में भी दिखाई देता है, जहाँ एक स्वायत्त, निश्चित और अंतिम सत्य की धारणा स्थापित की जाती है। देरीदा का 'विखंडन' साहित्य के पारंपरिक विमर्श की इन्हीं काल्पनिक सीमाओं को तोड़ने का प्रयास करता है। यह केवल एक सैद्धांतिक सूत्र नहीं, बल्कि एक 'कार्रवाई' (action) है, जो निष्कर्षवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध सक्रिय रहती है। यहाँ हर अर्थ 'अनंतिम' (provisional) होता है, अंतिम नहीं। यही कारण है कि विखंडन न केवल साहित्य के अध्ययन के दृष्टिकोण को बदलता है, बल्कि हमारे संपूर्ण पाठन-प्रक्रिया को भी प्रभावित करता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

विरचनावाद, दुहरी पढ़त, लेखकीय पाठ, निष्कर्षवादी, सैद्धांतिक सूत्र, विखंडन

Discussion / चर्चा

2.2 विखंडनवाद

- फ्रांसीसी दार्शनिक चिंतन की एक परंपरा से उदय

विखंडनवाद का उदय फ्रांसीसी दार्शनिक चिंतन की एक परंपरा से हुआ। 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक की शुरुआत में, अन्य विचारकों की तरह, जॉक देरिदा भी संरचनावाद के उभरते अनुशासन, विशेष रूप से फर्डिनेंड डी सोसुर के संरचनात्मक भाषा विज्ञान की ओर आकर्षित हुए। देरिदा दर्शनशास्त्र में एक विवादास्पद लेखक के रूप में उभरे। उत्तर-आधुनिकतावाद के दार्शनिक और साहित्यिक संवाद को उन्होंने एक नया मोड़ दिया। - 'एक क्रांतिकारी मोड़'।

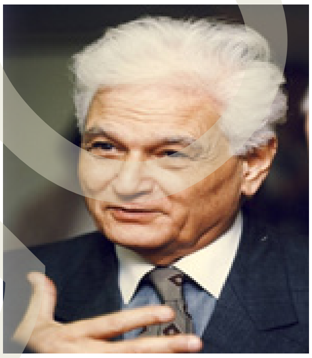

Jacques Derrida

देरिदा के प्रमुख विचार उनके तीन पुस्तकों में निहित है—

- Of Grammatology
- Writing and difference
- Speech and Phenomenon

इन तीनों रचनाओं ने अपनी विद्रोही विचार दृष्टि से संसार को हिलाकर रख दिया। इनके प्रकाशन होते ही दर्शन और साहित्य की दुनिया में बड़ा भारी वैचारिक कोलाहल फूट पड़ा।

- जैक देरिदा का देन दार्शनिक प्रणाली विखंडनवाद

जैक देरिदा की सबसे बड़ी देन उनका 'विखंडनवाद' (Deconstruction) का सिद्धांत है। यह एक दार्शनिक प्रणाली है, जिसमें वे मानते हैं कि किसी भी 'पाठ' (Text) को केवल एक ही तरीके से नहीं समझा जा सकता। वे 'दुहरी पढ़त' (Double Reading) की विधि को अपनाते हैं, जिसका उद्देश्य केवल 'अर्थ' (Meaning) खोजना नहीं, बल्कि

नए संदर्भों में उसका विश्लेषण करना भी है।

परंपरागत रूप से किसी पाठ का जो अर्थ तय कर दिया गया है, वह अकेला सत्य नहीं होता। ज्ञान और शक्ति के प्रभाव में कुछ अर्थ छिपे रह जाते हैं, जिन्हें 'विखंडनवाद' सामने लाने का प्रयास करता है। यह सिद्धांत यह भी दिखाता है कि अर्थ कोई स्थायी या निश्चित चीज़ नहीं है, बल्कि समय और संदर्भ के अनुसार बदल सकता है।

- देरिदा दर्शन और धर्म में 'शब्द केंद्रवाद' का विरोध करते ह

'विरचना' (Deconstruction) शब्द में 'अंतर' (Differ) और 'विलंबन' (Defer) दोनों के अर्थ छिपे हैं। देरिदा यह बताते हैं कि यूरोपीय और भारतीय दर्शन की भी 'विरचना' की जा सकती है, यानी उनकी गहराई से पड़ताल कर यह समझा जा सकता है कि उनके अर्थ किस तरह बदलते रहते हैं। वे दर्शन और धर्म में 'शब्द केंद्रवाद' (Logo Centrism) का विरोध करते हैं, जिसका मतलब है कि वे यह मानने से इनकार करते हैं कि किसी शब्द या विचार का केवल एक निश्चित और अंतिम अर्थ हो सकता है।

'विखंडनवाद' का मतलब किसी चीज़ को नष्ट करना नहीं है, बल्कि यह भाषा की छिपी हुई परतों और उसके काम करने के तरीकों को उजागर करने का एक तरीका है।

इसका सीधा उत्तर तो यही है कि यह 'टेक्स्ट' (पाठ) की वह विशिष्ट पद्धति है जिसके द्वारा पाठ के निर्धारित अर्थ को 'विस्थापित' किया जा सकता है और विखंडित भी। वे 'पाठ' (Text) को अर्थयुक्त रचना के रूप में देखने के बजाय उसमें उपस्थित आंतरिक विसंगतियों के बारे में बात करते हैं। देरिदा का विखंडन से तात्पर्य, रचना को नष्ट करना कदापि नहीं है।

Derrida insists that "deconstruction has nothing to do with destruction".

उत्तर-आधुनिकता पाठ (Text) को पढ़ने की प्रक्रिया में 'विखंडन' का सहारा लेती है। उत्तर-आधुनिकता के विचारकों का मानना है कि 'पाठ' एक ओर कुछ कहता है तो दूसरी ओर कुछ छुपाता है या दबाता है। पाठ क्या कह रहा है कि अपेक्षा क्या छुपा या दबा रहा है उसकी खोज महत्वपूर्ण है।

विजय कुमार दास के मतानुसार—"According to deconstruction no work of literature whatsoever has been able to express exactly what it wanted to say and that the critics business is to deconstruct and re-create them."

- उत्तर-आधुनिकता के विचारकों का मानना है कि 'पाठ' एक ओर कुछ कहता है तो दूसरी ओर कुछ छुपाता है या दबाता है।

देरिदा 'पाठ का पुर्नपाठन' (Re-reading of text) महत्वपूर्ण मानते हैं। या कहें—पाठ का विखंडन। पाठक हर पाठ को पढ़ते समय पुनः लिखता है इसलिए इसे (Writerly Text) 'लेखकीय पाठ' कहा जाता था। अतः न तो पाठ समान होते हैं और न एक पाठ अलग-अलग पठन में समान होता है। इस प्रकार देरिदा ने आलोचना को रचना की अनुवर्ती न पाकर बराबर का काम करते पाया और साहित्य को दर्शन के समकक्ष किया।

Derrida did not propose deconstruction as a mode of literary criticism, but as a way of reading all kinds of texts, so as to reveal and subvert the tacit metaphysical pre- suppositions of Western thoughts.

देरीदा का विखंडनवाद एक ऐसी विधि है जिससे किसी पाठ (Text) के तयशुदा अर्थ को बदला या तोड़ा जा सकता है। यह विचार इस पर आधारित है कि किसी शब्द या वाक्य का केवल एक निश्चित अर्थ नहीं होता, बल्कि उसके कई अर्थ हो सकते हैं। जब कोई पाठ पहले से तय किए गए नियमों का पालन नहीं करता, तो उसका अर्थ भी निश्चित नहीं रहता। विखंडन का सिद्धांत कहता है कि किसी भी शब्द या वाक्य का अंतिम और स्थायी अर्थ तय नहीं किया जा सकता। हर अर्थ के साथ एक और नया अर्थ जुड़ता जाता है, जिससे अर्थों की एक अनंत श्रृंखला बनती रहती है। यानी, किसी भी पाठ या शब्द की व्याख्या खत्म नहीं होती, बल्कि हर नई व्याख्या से एक और नई व्याख्या निकलती रहती है।

भारत के उत्तर-आधुनिकतावादी समर्थक सुधीश पचौरी जी इस पर विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं – क्या यह आलोचना का अंत है? या आलोचनात्मक जनतंत्र का आरंभ? वे मानते हैं कि आलोचना का भविष्य उज्ज्वल तभी है जब वह स्वयं को रचना की अनुवर्ती न समझकर स्वतंत्र कर्म समझे। विखंडन यह अवसर और ताकत देता है।

- देरीदा के विखंडनवाद सिद्धांत से यही सीधा अर्थ निकलता है कि यह पाठ (Text) को पढ़ने की एक विशिष्ट पद्धति है।

आज तक हम 'रामचरितमानस' या 'कामायनी' या 'राम की शक्तिपूजा' या 'गोदान' जैसी कृतियों को बौद्धिक-सांस्कृतिक-सौंदर्यात्मक तौर पर विशिष्ट मानते रहे हैं। इनकी विचार महिमा से अभिभूत रहे हैं। लेकिन यदि हम इन कृतियों का 'डि-कंस्ट्रकट विखंडन' करें तो पाते हैं कि इनके 'पाठ' के भीतर मौजूद उपपाठों और भाषा के पीछे छिपी आभिजात्य विचारधारा संवेदना, रूप-योजना, लय-विधान स्पष्ट दिखाई देने लगती है। किसी भी 'कृति' के पाठ को इस प्रकार से पढ़ना ही विखंडनवाद है।

देरिदा के शब्दों में –"The reader or critic 'dismantles' analyses, 'turns something unified pack into detached fragments or parts and reassembles them'. … co-authors the text, constructs in a different form from what he has deconstructed."

प्रमुख समीक्षक कृष्णदत्त पालीवाल जी के मतानुसार –'पाठ' को पाठक ही 'अस्तित्व' देता है, क्योंकि हर पाठ कई तरह से पढ़ा जा सकता है—मूल अर्थ का कर्ता पाठक है जो 'पाठ' के भाषा तंत्र में प्रवेश करके उसे खंगालता है, हेरता है। इस तरह पाठकवादी आलोचना 'पाठ' की स्वतंत्रता को नहीं मानती। वह तो केवल 'पाठक' को महत्व देती है, क्योंकि पाठक ही पाठ में सोए अर्थ को जगाकर उससे हृदय संवाद करता है।

देरिदा के अनुसार– "Deconstruction frees the text from the 'fixity' of meaning (which the traditional forms of interpretation emphasized) by giving it a status of interpretation, which Derrida calls a free play of meaning."

2.2.1

पाठ अनेकार्थी होता है, एकार्थी नहीं। किसी भी पाठ की अंतिम व्याख्या संभव नहीं होती। किसी भी अवधारणा के पूर्व निर्धारित अर्थ को विस्थापित करने की प्रक्रिया में वह पहले से चले आ रहे अर्थ-क्रम या Hierarchy को बदल देती है। देरीदा ने इस चिंतन की नींव फ्रांस में रखी, लेकिन यह विचारधारा सशक्त होकर अमेरिकी विश्वविद्यालयों में फैली। यहाँ तक कि पूरे यूरोप में देरीदा का विखंडनवाद प्रभावी हो गया। फ्रांसीसी दर्शन से प्रभावित विरचनावाद को अमेरिकी विश्वविद्यालयों में जितनी प्रतिष्ठा मिली, उतनी अन्य देशों में नहीं।

- देरीदा का विखंडनवाद चिन्तन का जन्म तो फ्रांस में हुआ और धीरे-धीरे अमरीका के विश्वविद्यालयों एवं पूरे यूरोप में फैल गया।

विखंडनवाद ने पारंपरिक समीक्षा पद्धतियों और उनके सैद्धांतिक सूत्रों पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगा दिए। दरअसल, विनिर्मितिवाद या विखंडनवाद की प्रतिष्ठा का श्रेय केवल देरीदा को नहीं जाता; इसके साथ ही एक और महत्वपूर्ण नाम जुड़ा है—फ्रांसीसी चिंतक पॉल डी मान। पॉल डी मान नव्य आलोचना के घोर विरोधी थे। उन्होंने सर्वप्रथम आधुनिक साहित्यशास्त्र पर विनिर्मितिवाद को लागू किया और उसके ऐसे विश्लेषण प्रस्तुत किए कि परंपरागत साहित्यशास्त्र की आधारशिला हिल गई।

विखंडन के कुछ सूत्रों को यों पढ़ा जा सकता है -

- ▶ विखंडन करते हुए हमें देखना होगा कि पाठ जो बात कहना चाहता है, उसे दबाता कैसे है ?
- ▶ हर व्याख्या की दो व्याख्या हो सकती है। कोई भी व्याख्या अंतिम व्याख्या नहीं होती। यही अर्थ की लीला है, फ्री प्ले है।

- विखंडन विकसित यथार्थ की व्याख्या की एक रणनीति ह

विखंडन विकसित यथार्थ की व्याख्या की एक रणनीति है। हर पाठ का अर्थ और पाठक का अनुभव पृथक होता है, यही अर्थ का दोहरा चरित्र है। सारी समस्या पाठ की है। पाठ खोलने की, पाठ को पढ़ने की। उसके विलोमों की लीला का विखंडन करने की।

उत्तर-आधुनिकता में साहित्य समीक्षक का स्थान विमर्श विश्लेषक (Discourse Analyst) ने ले लिया है, जो कृति का विखंडन करते हुए पाठ के भीतर मौजूद उपपाठ (Subtext) और भाषा में छिपी संवेदना तथा विचारधारा को खोज निकालता है। लेखक, भाषा-संरचना के माध्यम से अपने वैचारिक आग्रहों को चाहे जितना छिपाने में चतुर हो, विखंडनवादी पद्धति से उन्हें उजागर किया जा सकता है। अन्य पाठों की भांति साहित्यिक कृतियाँ भी मात्र एक पाठ ही हैं। पाठ अपने अर्थ में बहुअर्थी तथा अनिश्चित होता है। साथ ही, भाषा की भी अपनी सीमाएँ होती हैं—अक्सर भाषा वह कहने में असमर्थ हो जाती है, जिसे वह व्यक्त करने की आकांक्षा रखती है। अतः किसी कृति के संपूर्ण अर्थ को प्राप्त कर लेने का दावा ही असत्य है।

2.2.2 विद्वानों के विचार

कुछ विद्वान मानते हैं कि Deconstruction के लिए 'विखंडन' शब्द पर्याप्त नहीं है। उनके अनुसार, इसे 'विनिर्मिति' कहना बेहतर होगा क्योंकि यह न केवल पुराने अर्थों को तोड़ता है, बल्कि नए अर्थों को खोजने या बनाने की प्रक्रिया भी है। विरचनवाद यह बताता है कि भाषा और ज्ञान के पीछे सत्ता और शक्ति का खेल होता है। जो अर्थ पहले दबा दिए गए थे, विरचनावाद उन्हें नए दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पद्मावत का पारंपरिक अर्थ बताया, लेकिन विजयदेव नारायण साही ने उसे नए तरीके से व्याख्यायित किया। कुल मिलाकर, विरचनवादी अध्ययन परंपरागत अर्थों को चुनौती देता है और उन्हें नए संदर्भ में देखने का प्रयास करता है।

- ज्ञान अथवा शक्ति के खेल में जो अर्थ दबा दिए गए हैं, उन्हें नए भाष्यों से विरचनावाद खोलने का प्रयत्न करता है।

विखंडन साहित्य, संस्कृति और दर्शनशास्त्र में गहराई से प्रभाव डालने वाला रहा है। इसे विभिन्न ग्रंथों और विचारों के विश्लेषण के लिए उपयोग किया जाता है। हालांकि, यह बहस और आलोचना का विषय भी रहा है। कुछ लोग मानते हैं कि यह अर्थ और सत्य को लेकर जरूरत से ज्यादा संदेह और नकारात्मकता दिखाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी के परंपरागत पांडित्य को फ्रांस के दार्शनिक, भाषाविद् और साहित्य चिंतक जैक्स देरीदा (1930-2004) ने न केवल तोड़-मरोड़कर नई दिशा प्रदान की, बल्कि ऐसी प्रश्नाकुलताओं को जन्म दिया, जिनसे सोचने-समझने की चिंतन पद्धति का वैश्विक स्तर पर विकास हुआ। फ्रांस, अमेरिका, यूरोप और एशिया में देरीदा के विनिर्मितिवाद (Theory of Deconstruction) के सिद्धांत ने बौद्धिक जगत में एक भूचाल ला दिया, जिसकी गूंज आज भी महसूस की जा सकती है। अपने इस सिद्धांत के माध्यम से देरीदा ने यूरोपीय वर्चस्ववाद की प्रचलित अवधारणाओं एवं पद्धतियों को चुनौती दी और उनकी पुनर्व्याख्या की।

किसी एक पाठ की विभिन्न व्याख्याएँ स्वीकार्य और सामान्य मानी जाएँगी। अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर सभी व्याख्याएँ समान रूप से महत्वपूर्ण होंगी। इस प्रक्रिया में पाठक केंद्र में होता है। यहाँ तक कि कुछ विचारक यह मानते हैं कि पाठ स्वयं पाठक को उत्पन्न करता है और पाठक पाठ का सृजन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य लेखक की सत्ता का विकेंद्रीकरण करना था। रचनाकार होना और इस पर दावा करना, शक्ति अर्जित करने की उसकी युक्ति के रूप में देखा जाता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

विखंडन साहित्यिक विश्लेषण और दर्शन के लिए एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण है, जिसे 1960 के दशक के उत्तरार्ध में विशेष रूप से फ्रांसीसी दार्शनिक जैक्स देरीदा द्वारा विकसित किया गया था। यह भाषा, अर्थ और सत्य की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देते हुए ग्रंथों और विचारों के भीतर मौजूद विरोधाभासों और विसंगतियों को उजागर करता है। विखंडन के अनुसार, किसी भी पाठ या विचार की कोई निश्चित, अंतिम व्याख्या नहीं होती, बल्कि उसमें कई संभावित अर्थ होते हैं, जो हमेशा परिवर्तनशील रहते हैं। जब कोई पाठ पूर्व निर्धारित नियमों को तोड़ने लगता है, तो वहीं से विखंडन की प्रक्रिया आरंभ होती है। यह अर्थ की एकरूपता को भंग करने में सक्षम होता है। देरीदा का विखंडन मूलतः एक पाठ्कीय प्रक्रिया है, क्योंकि यह पाठ के भीतर ही सक्रिय रहता है और उसे इस प्रकार प्रभावित करता है कि वह कोई स्थिर, आत्मनिर्भर, पूर्ण इकाई न रह सके। इस दृष्टिकोण का सार यह है कि लेखन में अर्थ कभी स्थिर नहीं होता, बल्कि निरंतर चंचल और परिवर्तनशील रहता है।

यह सत्य है कि विखंडन एक लेखकीय रणनीति है—एक शिल्पगत तकनीक। इस रणनीति के माध्यम से यथार्थ और सत्य को एक हद तक विखंडित किया जा सकता है। मौजूदा समय में यह एक प्रभावी और प्रासंगिक पद्धति है, लेकिन केवल रणनीति के सहारे कोई युद्ध नहीं जीता जा सकता।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. विखंडन से देरिदा का क्या तात्पर्य है।
2. क्या लिखित रचना का विखंडन करके अलग-अलग अर्थ ढूंढ निकालना उचित है। अपना मत प्रकट कीजिए।
3. देरीदा के विखंडन सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए यह बताइए कि आप किस हद तक उनसे सहमत हैं।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/GZvZWJEgMts?si=BKjdZl6wHvs1Rljz
- https://youtu.be/GZvZWJEgMts?si=BKjdZl6wHvs1Rljz
- https://youtu.be/GZvZWJEgMts?si=BKjdZl6wHvs1Rljz

इकाई 3

जां बौद्रीआ-छलना सिद्धांत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अतियथार्थवाद एवं यथार्थवाद का भेद समझता है
- उपभोगवादी समाज के छद्म रूप को जानता है
- बौद्रीआ के छलना सिद्धांत को समझता है
- उपभोक्ता समाज के फैशन के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

हम सभी अब एक उत्तर-आधुनिक जगत के हिस्से हैं। आधुनिक समाज उत्पादन पर आधारित था जब की उत्तर-आधुनिक समाज उपभोग पर आधारित है। आधुनिक समाज में वस्तुओं का विनिमय एक खास बात थी जबकि उत्तर-आधुनिक समाज में यह विनिमय प्रतीकात्मक है। आधुनिक समाज में प्रतिनिधित्व प्राथमिक स्तर पर था जहाँ यथार्थ और सत्य का प्रतिनिधित्व विचार किया करते थे। लेकिन उत्तर-आधुनिक समाज में छद्म रूप को प्रधानता मिली है। चूंकी हम सब एक उत्तर-आधुनिक जगत के हिस्से हैं संस्कृति के संदर्भ में ऐतिहासिक चेतना मशीनी औद्योगिक युग की विशेषता रही। उत्तर- आधुनिकता में अचेतन वस्तु जगत, अनिश्चित स्थिति का समानांतर है। सारी दुनिया अनिश्चित है इसलिए हमारी चेतना भी अनिश्चित है। इसलिए विचार नहीं तिकड़म हमारे व्यवहार का आधार बन चली है। आज पूँजी के साथ सहअस्तित्व का स्वीकार देखा जाता है। और है प्रतीकों के विनिमय का स्वीकार। यहाँ पहुँचकर राजनीतिक अर्थशास्त्र के मज़दूरी, मुनाफा, पूँजीपति, मज़दूर उद्योग आदि तत्व व्यर्थ हो जाते हैं और समूची प्रक्रिया प्रतीकों के विनिमय में बदल जाती है। पूंजी की यह संहिता समूचे यथार्थ को एक वेश्या बाज़ार में बदल देती है जहाँ हर चीज़ का विनिमय होता है। इससे पुरानी अवधारणाएँ बेदखल हो जाती है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अनुकरण, छलना सिध्दान्त, साइमूल्क्रा, अति चंचल यथार्थ

Discussion / चर्चा

2.3 अतियथार्थवाद एवं यथार्थवाद

- रोनॉल्ड डेविड लैंग 'पागलों का मसीहा'

द्वितीय विश्व युद्ध ने पुराने संसार को मानो नष्ट कर दिया। जिन देशों की भूमि पर यह युद्ध लड़ा गया था, वहाँ अपार जनसंहार के साथ मानसिकता की बनावट भी उन देशों से भिन्न हो गई जिन्होंने इस त्रासदी को केवल सुना और महसूस किया, परंतु प्रत्यक्ष रूप से झेला नहीं। युद्ध के बाद की दुनिया इतनी भयावह थी कि मनोरोगों की प्रचलित धारणाएँ ध्वस्त हो गईं। इसी संदर्भ में रोनॉल्ड डेविड लैंग ने पागलपन (Schizophrenia) को अपनी कविताओं में स्थान दिया और 'पागलों का मसीहा' कहलाए।

ज्ञान के क्षेत्र में ऐसे आधारभूत परिवर्तन हुए कि हम सूचना-संचार क्रांति के युग में प्रवेश कर गए और पूरा समाज धीरे-धीरे मीडिया समाज में परिवर्तित होने लगा। मीडिया में प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री में वास्तविकता कितनी है, यह आम जनता कई बार समझ नहीं पाती, क्योंकि सच तो यह है कि जितना मीडिया दिखाता है, उससे अधिक वह छिपाता भी है। ऐसे में जां बौद्रीआ का छलना सिद्धांत (Simulacra and Simulation) हमें यथार्थ और अति-यथार्थ के भेद को समझने में सहायक सिद्ध होता है।

2.3.1 उत्तर-आधुनिकतावाद

- उत्तर-आधुनिकतावाद का महानायक - बौद्रीआ

जां बौद्रीआ को उत्तर-आधुनिकतावाद का महानायक माना जाता है। उनके प्रमुख विचारों में दो ऐसे सिद्धांत शामिल हैं, जो कला में उत्तर-आधुनिकता पर चर्चा के दौरान अक्सर प्रयुक्त होते हैं—'अनुकरण' (Simulacrum) और 'अतियथार्थवादी' (Hyper-real)। अनुकरण केवल वास्तविकता की नकल भर नहीं है, बल्कि यह वास्तविकता का स्थान ले लेता है। यह एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है, जिसमें मूल और प्रतिकृति के बीच का भेद समाप्त हो जाता है। अतियथार्थवादी वह होता है जो वास्तविकता से भी अधिक वास्तविक प्रतीत होता है। यह ऐसी कृत्रिम वास्तविकता को जन्म देता है, जो वास्तविक से अधिक प्रभावशाली और प्रामाणिक लगती है। उदाहरण के लिए, उच्च फैशन (High Fashion) जो सौंदर्य से भी अधिक आकर्षक प्रतीत होता है, या राजनीतिक चुनावों से पहले मीडिया द्वारा प्रस्तुत मॉक रिज़ल्ट (Mock Result), जो वास्तविक परिणामों से अधिक प्रभावशाली और निर्णायक रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। इन सभी उदाहरणों में वास्तविकता और कल्पना के बीच की रेखा धुंधली हो जाती है, जो बौद्रीआ के उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण का एक मूलभूत पहलू है।

Jean Baudrillard

जां बौद्रीआ ने उपभोक्ता समाज को अपने चिंतन का आधार बनाया और कहा कि उपभोग अब एक भूमंडलीय प्रक्रिया है जो हमारे आवेगों, प्रतिक्रियाओं और हिंसा के रूप को, अभिव्यक्ति के तरीकों को बदल देती है। उपभोग हमें वस्तु में यानी देह में बदल देता है। समाजशास्त्री जां बौद्रीआ को उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रवाचक पुकारा जाता है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—

- उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रवाचक - जां बौद्रीआ

- The System of Objects (1968)
- The Consumer Society (1970)
- The Mirror or Production (1973)
- Symbolic Exchange and Death (1976)
- Simulations (1983)

जां बौद्रीआ ने उत्तर-आधुनिक जगत को एक अंतःस्फोट (implosion) के रूप में परिभाषित किया है, जहाँ वर्गों, समूहों तथा पुरुषों एवं महिलाओं की पारंपरिक सीमाएँ धराशायी हो रही हैं। इस उत्तर-आधुनिक दुनिया का न तो कोई निश्चित अर्थ है, न कोई लय और न ही कोई तर्क। इसमें न कोई केंद्र है और न ही कोई उम्मीद। यह नकारवाद की दुनिया है।

मीडिया और कला की दुनिया में बौद्रियार के विचार अत्यधिक प्रभावशाली रहे हैं। उनका जोर इस बात पर है कि हम सभी अब एक उत्तर-आधुनिक समाज का हिस्सा हैं। वे मानते थे कि आधुनिक समाज उपभोग पर आधारित है। आधुनिक समाज में वस्तुओं का विनिमय (exchange) मुख्य बात थी, जबकि उत्तर-आधुनिक समाज में यह विनिमय प्रतीकात्मक (symbolic) बन गया है। आधुनिक समाज में प्रतिनिधित्व (representation) प्राथमिक स्तर पर था, जहाँ यथार्थ और सत्य का प्रतिनिधित्व विचार किया करता था।

- आधुनिक समाज उपभोग पर आधारित है

जां बौद्रीआ 'छलना सिद्धांत' (Simulacra) के लिए प्रसिद्ध हैं। वे बताते हैं कि पूँजीवाद ने श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर अपने पारंपरिक नियंत्रण से आगे बढ़कर अब उन सामाजिक छवियों, प्रतीकों और संबंधों तक अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया है, जो समाज का संचालन करते थे। पूँजीवाद लगातार छलना (साइमूलाक्रा) की चिह्न-व्यवस्था (sign system) निर्मित करता है। पहले जहाँ सामाजिक नियंत्रण वस्तु-उत्पादन से होता था, अब ऐसा नहीं रहा। अब चिह्न या मॉडल उन वस्तुओं (यथार्थ) से पहले अस्तित्व में आ जाते हैं, जिन्हें बनाया जाना होता है। जब वे वस्तुएँ निर्मित हो जाती हैं, तो उन्हें उसी रूप में चाहा और खरीदा जाता है, जैसा चिह्न या मॉडल उन्हें परिभाषित करता है।

- पूँजीवाद हमेशा छलना (साइमूल्क्रा) की चिह्न व्यवस्था पैदा करता है।

यही पूँजीवाद था जिसने सच और झूठ के बीच आदर्श भेद को समाप्त कर दिया और अच्छे व बुरे के बीच संबंध को भी धुंधला कर दिया।

उत्तर-आधुनिक समीक्षा पर बौद्रीआ के 'छलना सिद्धांत' (Simulacra) का सर्वाधिक प्रभाव है। वे यथार्थ को छलना के रूप में देखते थे। विचारधारा के स्थान पर संस्कृति माध्यम-निर्भर होकर केवल माध्यम मात्र रह जाती है। यही माध्यम छलना का संसार रचता है और सूचना इस छलना का प्रमुख औज़ार बन जाती है।

यहीं से बौद्रीआ 'अति-चंचल यथार्थ' (Hyperreal) की परिकल्पना करते हैं। यह अति-चंचल यथार्थ, यथार्थवाद का विस्तार नहीं है, बल्कि यथार्थ की पुनर्निर्मिति है। हर माध्यम में यह अलग-अलग रूपों में प्रकट होता है और इतना छलनामय हो जाता है कि मूल यथार्थ लुप्त हो जाता है। वह अपना ठोसपन और देशकालपन खो देता है, जिससे प्रातिनिधिकता समाप्त हो जाती है। अति-चंचल यथार्थ सतत् दुहराव में रहता है—हर बार नए रूप में निर्मित होता है और हर बार मूल यथार्थ को निष्कासित करता रहता है।

- 'छलना' स्वयं एक उत्तर-आधुनिक स्थिति है

'छलना' (Simulacra) स्वयं एक उत्तर-आधुनिक स्थिति है। छवि और सूचना, उत्तर-आधुनिकता के वे औज़ार हैं जो यथार्थ और कल्पना के भेद को मिटा देते हैं। बौद्रीआ का मानना था कि मार्क्स का यथार्थ मर चुका है। अब यथार्थ 'रचना' का विषय नहीं, बल्कि 'यथार्थ का छद्म' ही रचना का आधार बन चुका है। दूसरे शब्दों में, 'छद्म यथार्थ' का जीवन-जगत में प्रभाव और साहित्य में उसकी प्रस्तुति ही पाठ की उत्तर-आधुनिकता है।

पूँजीवादी व्यवस्था में एक 'यथार्थ सिद्धांत' निर्मित होता है, जो यथार्थ के प्रमाणन को संभव बनाता है और विचारधारा उसे वैधता प्रदान करती है। किंतु उपभोक्ता समाज में यह यथार्थ सिद्धांत तिरोहित हो जाता है और वस्तु-जगत की छलना (Simulacra) के कारण मूल यथार्थ अदृश्य हो जाता है।

यही विचार उत्तर-आधुनिक दर्शन की धुरी है। पूँजीवाद हमेशा छलनामय चिह्न-व्यवस्था उत्पन्न करता है। पहले पूँजीवाद ने श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर नियंत्रण रखा था, लेकिन अब वह सामाजिक छवियों, प्रतीकों और संबंधों तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका है, जो समाज को संचालित करते थे।

- उपभोक्ता समाज में यथार्थ सिद्धांत तिरोहित हो जाता है। यह तिरोधान वस्तु जगत की "छलना' (साईमूलक्रा) से होता है।

इस विकसित पूँजीवाद में 'पूर्वानुमान, छलना और कार्यक्रम' के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है। पहले अनेक क्षेत्र 'स्वायत्त' बने रहते थे, किंतु अब ऐसा नहीं है। अब चिह्न और मॉडल यथार्थ से पृथक रहते हैं। यह (पूँजीवादी) जीवन पूरी तरह छलनामय हो गया है, जिसमें चिह्नों की एक स्वायत्त व्यवस्था कार्यरत है, जो स्वयं को निरंतर पुनर्निधारित करती रहती है और कभी भी किसी ठोस वास्तविकता तक नहीं पहुँचती।

उत्तर-आधुनिकता में स्वीकृत 'छलना' कहती है कि हम अर्थ के एकहरे संसार से आग 'चिह्नों' के संसार में आ गए हैं। चिह्नों को स्वीकार करना नए यथार्थ को स्वीकार करना है, नकारना नहीं। प्रमोद के नायर जी का वक्तव्य इस सिलसिले में महत्वपूर्ण है –"Simulation is the norm of post modernity, according to Baudrillard,

we live in an age saturated with images, maps, models and signs that have become ends in themselves, and for which we have never known original. Thus we only have signs without an external reality, copies without originals."

हम केवल चिह्नों का उपभोग करने वाले उपभोक्ता बनकर रह गए हैं। यथार्थ से हमारा संबंध मानो मिट गया है। इतना मिट गया है कि चिह्न और यथार्थ के बीच कोई फर्क ही हम नहीं देख पा रहे। उदाहरण के रूप में उन्होंने 'डिस्नीलैंड'(Disneyland) को लिया है। Cartoon characters हमारे मनो मण्डल में इतने हावी हो गए हैं कि हम Disney में चित्रित Mickey को ही यथार्थ मान बैठते हैं। जबकि उसका वास्तविक चूहे से बहुत फर्क है। What we see in Disney is a glossy, glamorized visual representation of something whose original we will never know.

Mickey mouse (Disneyland)

Real Mouse

- हम सभी अब एक उत्तर-आधुनिक जगत का हिस्सा हैं

मीडिया और कला की दुनिया में जां बौद्रीआ के विचार बेहद प्रभावशाली रहे हैं। उनका ज़ोर इस बात पर है कि हम सभी अब एक उत्तर-आधुनिक जगत का हिस्सा हैं। बौद्रीआ बताते हैं कि मीडिया और फिल्में हमारे समाज में सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व बन गए हैं और यह 'छलना समाज' की रचना करते हैं।

- मीडिया द्वारा प्रस्तुत विज्ञापन उसे इस छलावे में डाल देते हैं

उदाहरण के तौर पर, एक बच्चा विज्ञापनों में चित्रित रसीले आम की कल्पना करके मज़े से आम रस पीता है, जो असल में रसायनों का मिश्रण होता है। मीडिया द्वारा प्रस्तुत विज्ञापन उसे इस छलावे में डाल देते हैं। वैसे भी, शहरी वातावरण में पले-बढ़े बच्चों ने शायद ही कभी ताज़े आम का रस चखा हो। यही उपभोक्तावादी पूँजीवादी व्यवस्था की वास्तविकता है।

जनसंचार माध्यमों ने पहले यथार्थ खूब दिखाया फिर यथार्थ के अभाव को छिपाया है।

बौद्रीआ के अनुसार, वर्तमान समय में मौलिक रचना संभव ही नहीं है; केवल नकल, पेस्टीच (अनुकरण) और पैरोडी ही संभव हैं। इस व्यवस्था में कोई वास्तविक प्रतिरोध भी संभव नहीं है। जनसंचार माध्यमों ने यथार्थ को कई चरणों में विकृत किया है—पहले उन्होंने यथार्थ को दिखाया, फिर उसे छिपाया, फिर यथार्थ के अभाव को छिपाया और अंततः यथार्थ से संबंध विच्छेद कर दिया। यही 'साइमूलक्रा' (Simulacra) है—एक छलना या प्रपंच, जहाँ अर्थ का अंतिम विघटन हो जाता है।

समाजशास्त्री जां बौद्रीआ को उत्तर-आधुनिकता के प्रमुख विचारकों में गिना जाता है। वे पेरिस विश्वविद्यालय में आचार्य थे और उनकी सिद्धांतधारा ने समकालीन मीडिया, कला और समाज पर गहरा प्रभाव डाला है।

बोद्रीआ की रचनाओं में 'Simulations' उत्तर-आधुनिकतावादी सिध्दान्तों की दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण हैं। एम.ए.आर हबीब लिखते हैं—"The underlying theme running through Baudrillard's analyses of modern culture and society is that 'reality' has in the late capitalist era been replaced by codes of significations."

2.3.2

बौद्रीआ की राय में उत्तर-आधुनिक स्थिति को उत्पन्न करने वाली तीन प्रमुख परिघटनाएँ हैं—छद्म रूप, अतियथार्थ और अंतःस्फोट। सूचना और प्रौद्योगिकी के इस नए युग में मीडिया की छवियों ने वास्तविकता का स्थान ले लिया है। ये छद्म रूप दिनों-दिन इतने शक्तिशाली होते जा रहे हैं कि इन्हीं के आधार पर सामाजिक जीवन के आदर्श निर्धारित होने लगे हैं। मीडिया द्वारा प्रस्तुत यथार्थ का यह छद्म रूप दैनिक जीवन की वास्तविकता की तुलना में उपभोक्ताओं को अधिक तीव्र और प्रभावशाली अनुभव प्रदान करता है। यही कारण है कि अतियथार्थ की एक ऐसी दुनिया निर्मित हो गई है जहाँ वास्तविकता और अवास्तविकता के बीच का भेद समाप्त हो चुका है। वस्तुतः, मीडिया द्वारा प्रस्तुत यह यथार्थ वास्तविक यथार्थ से भी अधिक वास्तविक प्रतीत होने लगा है।

अतियथार्थ एक चंचल स्थिति में रहता है

अतियथार्थ वह स्थिति है जहाँ वस्तुगत यथार्थ पूरी तरह विलीन हो जाता है; उसके मूल अंतर्विरोध और मूल्य टकराव समाप्त हो जाते हैं। यह केवल यथार्थवाद का विस्तार नहीं है, बल्कि यथार्थ का पुनर्निर्माण है। यह प्रत्येक माध्यम में भिन्न रूप धारण करता है और इतना छलनामय होता है कि मूल यथार्थ अदृश्य हो जाता है। यह अपने ठोसपन, देश-काल की सीमाओं और संदर्भ को खो देता है। इसी स्थिति में प्रतिनिधित्व समाप्त हो जाता है। अतियथार्थ एक चंचल स्थिति में रहता है—वह बार-बार निर्मित होता है और प्रत्येक बार वास्तविक यथार्थ को विस्थापित कर देता है। यह संपूर्ण सांस्कृतिक संरचना को परिवर्तित कर देता है।

अति-चंचल यथार्थ में गहराई, परिप्रेक्ष्य और संदेश का अभाव होता है। इस स्थिति में ये तत्व समाप्त हो जाते हैं। यह पारंपरिक सांस्कृतिक अनुभवों को भी परिवर्तित कर देता है। पहले यह मॉडल गढ़ता है, फिर उनके बहुरूपी स्वांग को सत्य की तरह प्रस्तुत

करता है। उसके बाद, वह स्वयं स्वतंत्र होकर मूल यथार्थ से अलग हो जाता है और अंततः यह बहुरूपियापन (Simulacra) समाज में फैलने और स्वीकृत होने लगता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण फैशन है।

फैशन एक विचार के रूप में उभरता है और अनुशासन की तरह संपूर्ण समाज में व्याप्त हो जाता है। राजनीति फैशन बन जाती है, सेक्स फैशन बन जाता है और कपड़े तो स्वाभाविक रूप से फैशन का हिस्सा होते ही हैं। फैशन के प्रसार के साथ ही वस्तु-पूजा (Fetishism) का जन्म होता है, जिससे वस्तुएँ छलना और प्रपंच में परिवर्तित हो जाती हैं। बौद्रीआ के अनुसार, उपभोक्ता समाज में देह फैशन के केंद्र में आ जाती है—सेक्स और शरीर का प्रदर्शन उपभोक्तावाद की उपलब्धि बन जाता है।

- उपभोक्ता समाज में फैशन एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है

उपभोक्ता समाज में फैशन एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करता है। इसकी प्रक्रिया एक सतत चक्र की भाँति है, जो अंततः नए विचारों को नष्ट कर देती है और केवल देह को केंद्र में स्थापित कर देती है। यह प्रक्रिया तीन चरणों में विकसित होती है—पहले, फैशन शुद्ध रूप में एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत होता है, जहाँ कोई लड़की या लड़का उसका वाहक होता है। इसके बाद, धीरे-धीरे उसकी देह प्रमुख हो जाती है और अंततः केवल कपड़े मात्र रह जाते हैं। इस प्रकार, फैशन शरीर को एक आदर्श बना देता है।

बौद्रीआ इस अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि उपभोक्ता समाज में फैशन जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है। हर औरत एक मॉडल की तरह दिखाई देती है और औरत की देह सामाजिक संरचना के केंद्र में आ जाती है। प्रारंभिक पूँजीवादी युग में फैशन केवल शहरी वर्ग के एक छोटे समूह तक सीमित था, किंतु आधुनिक युग में यह जीवन शैली बन चुका है। अब फैशन हर जगह, हर क्षण उपस्थित रहता है।

- अतियथार्थ एक ऐसी दुनिया है जहाँ वास्तविकता और अवास्तविकता के बीच का भेद समाप्त हो गया है।

फैशन स्वयं एक अति-चंचल यथार्थ है। बौद्रीआ इस देहवाद को उत्तर-आधुनिक समाजों की एक केंद्रीय विशेषता मानते हैं। जैसे-जैसे देह केंद्र में आती है, वह स्वयं एक नई व्यवस्था में परिवर्तित हो जाती है—एक वस्तु की भाँति, एक चिह्न के रूप में।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

बौद्रीआ ने विस्तार से सिद्ध किया है कि यथार्थ की नई छलना ने भाषा और संबंधों को किस प्रकार उलझाकर अदृश्य कर दिया है। इससे ज्ञात होता है कि चीज़ें और दृश्य अब वैसे नहीं रहे, जैसे वे पहले थे। उनका छलना सिद्धांत हमें नींद से जागने का आह्वान करता है, क्योंकि हम चिह्नों के भ्रम में पड़कर यथार्थ से कोसों दूर होते जा रहे हैं—इतने दूर कि वास्तविक यथार्थ क्या था, यह भी भूल चुके हैं। हमारा नैतिक मूल्य, सौंदर्यशास्त्र—सब कुछ छलना मात्र है। मीडिया और कला की दुनिया में बौद्रीआ के विचार अत्यंत प्रभावशाली रहे हैं। नए पूँजीवाद

ने पुराने पूँजीवाद के उत्पादन-आधारित विचार को ढँक दिया है। बौद्रीआ के अनुसार, यही उत्तर-आधुनिक जीवन रूप है—एक ऐसा पूँजीवादी जीवन, जहाँ चिह्नों की संरचना स्वयं को पुनरुत्पादित करती रहती है, परंतु कभी भी सच्चे लक्ष्यों तक नहीं पहुँचती। उनके लेखन से स्पष्ट होता है कि पूँजीवाद के उत्कर्ष का वास्तविक चेहरा क्या है और उन्नीसवीं सदी के पूँजीवाद ने बीसवीं सदी के अंत तक सामाजिक प्रतिनिधित्व को कैसे अनुकूलित (manipulate) किया है। साइमुलेशंस में बौद्रीआ ने विस्तार से दर्शाया है कि यथार्थ की नई छलना ने भाषा और संबंधों को किस प्रकार प्रभावित किया है, जिससे वे जटिल और अदृश्य होते गए हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. अति यथार्थवाद एवं यथार्थवाद में क्या अन्दर है?
2. बौद्रीआ छलना सिद्धांत को समझाइए।
3. अनुकरण और अति यथार्थवाद पर टिप्पणी लिखिए।
4. बौद्रीआ की राय में उत्तर आधुनिक स्थिति को उत्पन्न करनेवाली परिघटनाओं पर चर्चा कीजिए।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. छलना सिद्धांत से क्या तात्पर्य है।
2. बौद्रीआ ने कैसे सिद्ध किया है कि यथार्थ की नई छलना ने भाषा और संबंधों को उलझाया है और अदृष्य किया है।
3. साइमूलक्रा से बौद्रीआ का मतलब क्या था।

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य – प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/pupLQd3SRms?si=2RPrpERvjTZaPoph
- https://youtu.be/jh2d5GpCRUc?si=MY8ufjorAkykET9b
- https://youtu.be/DPV6G7J4qho?si=kZqwxrGpwxevrvY9

SGOU

इकाई 4

जां फ्रास्वा ल्योतार-महाआख्यान का अंत

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- महावृत्तांतों के प्रति अविश्वसनीयता से परिचित होता है
- ल्योतार के विचारों से अवगत होता है
- सार्वभौमिक सिद्धांतों के नकार को समझता है
- महाख्यानों का अंत से ल्योतार के सिद्धांत को जानता है

Background / पृष्ठभूमि

जीन-फ्रांकोइस ल्योटार्ड अंग्रेजी भाषी दुनिया में मुख्य रूप से मानवीय स्थिति पर उत्तर आधुनिकता के प्रभाव के अपने विश्लेषण के लिए जाने जाते हैं। समकालीन फ्रांसीसी दर्शन में एक प्रमुख व्यक्तित्व, उनके अंतःविषय प्रवचनों में ज्ञान और संचार, मानव शरीर, आधुनिक और उत्तर आधुनिक कला, साहित्य और संगीत, फिल्म, समय और स्मृति, अंतरिक्ष, शहर और परिदृश्य, उदात्तता, तथा सौंदर्यशास्त्र और राजनीति के बीच संबंध जैसे विविध विषय शामिल हैं। 1950 और 1960 के दशकों में, जीन-फ्रांकोइस ल्योटार्ड एक सक्रिय मार्क्सवादी राजनीतिक कार्यकर्ता थे, लेकिन 1980 के दशक में उन्होंने पूरी तरह से मार्क्सवाद के सिद्धांतों से अलग होकर उत्तर-आधुनिकतावाद की ओर रुख किया। उनका यह परिवर्तन उत्तर-आधुनिक प्रवृत्ति का एक अभिन्न हिस्सा बन गया, जिसमें उन्होंने समग्रतावादी और अधिनायकवादी विचारधाराओं को अस्वीकार कर दिया। जीन-फ्रांकोइस ल्योटार्ड की वास्तव में अभिनव (या अनुभवात्मक) सोच—और निश्चित रूप से वह सोच जिसके लिए वे प्रसिद्ध हुए—दो प्रमुख पुस्तकों में विशेष रूप से अभिव्यक्त होती है: The Postmodern Condition और The Differend

Keywords / मुख्य बिन्दु

नव - पूँजीवाद, बहुरूपता, सार्वभौमिक, महावृत्तान्त, मेटानैरेटीव

Discussion / चर्चा

2.4 जां-फ्रांस्वा ल्योतार

- उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए प्रसिद्ध, प्रमुख दार्शनिकों में एक

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जां-फ्रांस्वा ल्योतार का सिद्धांत सबसे प्रभावशाली साबित हुआ। अपनी पुस्तक The Postmodern Condition में उन्होंने क्रांति और बदलाव की विचारधाराओं पर सवाल उठाए। ल्योतार का मानना था कि विकसित औद्योगिक समाजों में नव-पूँजीवाद ने सभी मूल्यों को बदल दिया है। वे दुनिया के प्रमुख दार्शनिकों में से एक थे, जो उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए प्रसिद्ध हुए। उनके विचार कई विषयों से जुड़े थे, जैसे ज्ञान, संचार, मानव शरीर, कला, साहित्य, संगीत, फिल्म, समय, स्मृति, शहर, परिदृश्य और सौंदर्यशास्त्र व राजनीति का संबंध।

ल्योतार की रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण हैं—

- Starting from Marx and Freud(1973)
- The Post Modern Condition: A report on Knowledge (1979)
- Le Defferend (1983)

- उत्तर-आधुनिकता में संभावनाओं की बहुलता सबसे महत्वपूर्ण बात है

उत्तर-आधुनिकतावाद (Post Modernism) का मुख्य सिद्धांत है 'महाआख्यानों का अंत' और 'सार्वभौमिकता का नकार'। ल्योतार मानते हैं कि उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता का अंत नहीं, बल्कि उसका विस्तार है और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। उन्होंने इसे 20वीं शताब्दी में हुए वैज्ञानिक और सैद्धांतिक परिवर्तनों के आधार पर समझाया। उनके लेखन में दर्शन, राजनीति और सौंदर्यशास्त्र जैसे विषय शामिल हैं। उन्होंने कला के क्षेत्र में आए बदलावों के आधार पर भी इस विचार को स्पष्ट किया। उत्तर-आधुनिकता में संभावनाओं की बहुलता सबसे महत्वपूर्ण बात है। कला इसका अच्छा उदाहरण है, क्योंकि इसमें अलग-अलग रूप (Polymorphy) देखने को मिलते हैं। यह विविधता संगीत, साहित्य और अन्य क्षेत्रों में भी मौजूद है। संक्षेप में, उत्तर-आधुनिकतावादी एकरूपता (Unity) को नहीं मानते। वे मानते हैं कि खेल के नियमों, कला शैलियों और जीवन के तरीकों में विविधता बनी रहनी चाहिए।

2.4.1 मेटानैरेटिव क्या हैं?

- मेटानैरेटिव को नैरेटिव या ग्रैंड नैरेटिव भी कहते है

मेटानैरेटिव को मास्टर नैरेटिव या ग्रैंड नैरेटिव भी कहा जाता है। यह एक भव्य आख्यान होता है, जो ऐतिहासिक घटनाओं और मानव समाज की व्याख्या करता है। ये महान सांस्कृतिक कहानियाँ हैं, जो स्वयं को सार्वभौमिक सत्य के रूप में प्रस्तुत करती हैं और समाज में ज्ञान और सांस्कृतिक प्रथाओं को वैध बनाने के लिए प्रयुक्त होती हैं।

मेटानैरेटिव की विशेषताएँ

मेटानैरेटिव वे भव्य कथाएँ हैं, जो वास्तविकता, इतिहास और मानवीय अनुभव को समझाने का दावा करती हैं। ये न केवल दुनिया को समझने की एक रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं, बल्कि सार्वभौमिक सत्य की अवधारणा को स्थापित करने का प्रयास करती हैं। साथ ही, ये कुछ ज्ञान-प्रकारों को वैध बनाती हैं और अन्य को हाशिए पर रखती हैं।

उत्तर-आधुनिकतावादी विचारकों ने मेटानैरेटिव्स को चुनौती दी है। उनका तर्क है कि ये दमनकारी और समग्र होते हैं, जो विविधताओं को नजरअंदाज कर देते हैं। वे स्थानीय आख्यानों (लोकल नैरेटिव्स) का समर्थन करते हैं, जो विभिन्न संस्कृतियों और समुदायों के अनुभवों को अधिक सटीक रूप से दर्शाते हैं।

सार्वभौमिक सत्य का दावा

- मेटानैरेटिव विभिन्न संस्कृतियों, समाजों और ऐतिहासिक अवधियों में अपनी वैधता पर ज़ोर देते हैं

मेटानैरेटिव विभिन्न संस्कृतियों, समाजों और ऐतिहासिक अवधियों में अपनी वैधता पर ज़ोर देते हैं और सार्वभौमिक सत्य अथवा पूर्ण ज्ञान के प्रतिनिधित्व का दावा करते हैं।

मेटानैरेटिव के उदाहरण

1. **धार्मिक महाकथाएँ**

कई धार्मिक परंपराएँ ऐसी महाकथाएँ प्रस्तुत करती हैं, जो ब्रह्मांड और मानवता की उत्पत्ति, उद्देश्य और अंतिम भाग्य की व्याख्या करती हैं।

ईसाई महाकथाः सृष्टि, पतन और मोक्ष की अवधारणा।

हिंदू महाकथाः पुनर्जन्म और मोक्ष (मुक्ति) के अंतिम लक्ष्य की अवधारणा।

2. **राजनीतिक महाकथाएँ**

राजनीतिक विचारधाराएँ भी मेटानैरेटिव के रूप में कार्य करती हैं, क्योंकि वे समाज को समझने और संगठित करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती हैं।

मार्क्सवादी महाआख्यानः वर्ग संघर्ष, पूँजीवाद का अंत और साम्यवादी स्वप्नलोक की स्थापना।

फासीवादी महाआख्यानः राष्ट्रीय पुनर्जन्म, नस्लीय शुद्धता और राज्य की सर्वोच्चता की अवधारणा।

मेटानैरेटिव्स-एक भव्य आख्यान जो ऐतिहासिक घटनाओं और मानव समाज की व्याख्या करता है।

मेटानैरेटिव जिसे अक्सर उत्तर-आधुनिकतावाद से जोड़ा जाता है, एक भव्य व्यापक कहानी या आख्यान को संदर्भित करता है जो मानव अनुभव के विभिन्न छोटे आख्यानों या पहलुओं को समझाने और अर्थ देने का प्रयास करता है। यह अनिवार्य रूप से आख्यानों के बारे में एक आख्यान है, एक ऐसी कहानी जो वास्तविकता, इतिहास या समाज को समझने के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रदान करने का प्रयास करती है।

महाआख्यान, चाहे वह राजनैतिक हो या सामाजिक, आज अपनी विश्वसनीयता खो चुका है। हिगेल, कार्ल मार्क्स और फ्रायड ने अपने-अपने महाआख्यान रचे, लेकिन अब उनकी जगह लघु आख्यानों ने ले ली है। उत्तर-आधुनिकतावाद में महाआख्यानों के लिए कोई स्थान नहीं है। एम.ए.आर. हबीब लिखते हैं—"Lyotard defines postmodern as "incredulity toward metanarratives."

- महाआख्यान (Metanarrative) का उदाहरण-मार्क्सवाद

मानव मुक्ति का सपना देखने वाला मार्क्सवाद अपने दुखद अंत को प्राप्त हुआ और फ्रॉयडवाद, जो 'ओडिपस कॉम्प्लेक्स' के माध्यम से मानव के अंतर्जगत की खोज करता था, कालांतर में विलुप्त हो गया। आधी दुनिया कभी इन विचारधाराओं के सपनों में खोई हुई थी। ल्योतार के अनुसार, विकसित औद्योगिक समाजों में नव-पूँजीवाद ने सभी मूल्यों—टेक्नोलॉजी, विज्ञान और मास मीडिया—को अपने नियंत्रण में ले लिया है। ऐसे में, इस संसार के 'सार्वभौमिक' लेखे-जोखे की बात करना अब निरर्थक हो गया है।

ल्योतार ने 'महावृत्तान्तों' के प्रति अविश्वसनीयता की प्रवृत्ति को सामने रखा। आधुनिकता के समग्रतावादी वृत्तान्त को ल्योतार ने निरंकुश माना और सन्देहवाद को बहुलतावाद में बदला। ये महावृत्तान्त किस तरह संभव हुए? यह सर्वानुमति कैसे बनी कि मनुष्य ऐसा हो? महावृत्तान्तों के प्रति अविश्वसनीयता ल्योतार की सबसे बड़ी खासियत थी।

सार्वभौमिक (Universal) रूप से इतिहास का अध्ययन भी ल्योतार को मान्य न था। उनकी मान्यता थी कि ऐसे में हाशिए में रहने वालों की आवाज़ ज़रूर दब जाती है।

अतः ल्योतार मानते है कि जब विश्व के महाआख्यानों का अन्त हो रहा है तो 'सार्वभौमिक इतिहास' को कैसे माना जा सकता है, क्योंकि सार्वभौमिक इतिहास किसी खास विचार का प्रतिनिधित्व मात्र करती है, सच्चाई से वह कोसों दूर है। उत्तर औद्योगिक समाज में चूँकि 'ज्ञान ही उत्पादक' हो गया, इसलिए ल्योतार ने महावृत्तान्त, महाविचार, महान नायक आदि को भविष्यहीन कहा। ल्योतार के मतानुसार सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें पूर्णता के परिप्रेक्ष्य से अपने भावुक संबंध को तोड़ना चाहिए। इस तरह का भ्रामक एकरूपीय परिप्रेक्ष्य (Unitary Perspective) हटाने के लिए तथ्यात्मक बहुलता को पूर्वाग्रह मुक्त होकर स्वीकार करना पड़ेगा। ल्योतार उत्तर-आधुनिकता को यों परिभाषित करते हैं—"Postmodernism was the 'cultural logic of a new phase in the development of western societies, the phase of post-industrial consumerism, informational guilt, and multinational capitalism."

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

ल्योतार्ड ने The Postmodern Condition पुस्तक में परिवर्तनों और उनके प्रभावों की चर्चा करते हुए कहा कि सबसे बड़ा परिवर्तन ज्ञान के स्वरूप में आया है। कंप्यूटर समाज में ज्ञान अब व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं, बल्कि बाज़ार का माल है—जिसकी एक कीमत है, जिसे खरीदा और बेचा जाता है। यह शक्ति अर्जन का एक हथियार बन गया है। ल्योतार्ड के अनुसार, 'आख्यान' का अर्थ है—सांस्कृतिक परंपरा का सातत्य। आख्यान सभी सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं के निकष होते हैं। इसमें मिथक, दंतकथाएँ और अन्य पारंपरिक कथाएँ सम्मिलित होती हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. महाआख्यान से क्या तात्पर्य है।
2. ल्योतार ने महाआख्यानों का अंत क्यों घोषित किया।
3. ल्योतार के विचारों से आप किस हद तक सहमत हैं।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/bWUuRX_QRkc?si=tHBxKrVsyzkiP7IM
- https://youtu.be/bWUuRX_QRkc?si=tHBxKrVsyzkiP7IM

SGOU

इकाई 5

मिशेल फूको-विमर्श सिद्धांत, नव इतिहासवाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- विमर्श की अवधारणा को समझता है
- फूको द्वारा निर्धारित विमर्श सिद्धांत से अवगत होता है
- बदलते इतिहास में लेखक की स्थिति को पहचानता है
- साहित्य और इतिहास के संबंध को समझता है

Background / पृष्ठभूमि

समाज में शक्ति का असंतुलन हमेशा से देखा गया है। सत्ताधारी समाज और हाशिए पर पड़े समाज के बीच की खाई इस शक्ति असंतुलन के कारण और गहरी हो जाती है। मिशेल फूको ने विमर्श में निहित शक्ति असंतुलन को उजागर करते हुए प्रमुख आख्यानों को चुनौती दी, ताकि हाशिए पर पड़े समूहों को आवाज़ मिल सके। फूको का तर्क है कि ज्ञान और शक्ति अलग नहीं, बल्कि परस्पर जुड़े हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि जो लोग ज्ञान को नियंत्रित करते हैं, वही शक्ति के भी केंद्र में होते हैं। उनका कार्य शोधकर्ताओं को यह विश्लेषण करने में सक्षम बनाता है कि भाषा और संवाद के स्तर पर सत्ता कैसे कार्य करती है और यह कैसे नियंत्रण और उत्पीड़न के सूक्ष्म रूपों को जन्म देती है। फूको की शक्ति संबंधी अवधारणा ने समाज में सत्ता को देखने के दृष्टिकोण को बदल दिया है, जिससे सामाजिक न्याय, राजनीति और संस्कृति पर गहन बहसें छिड़ गई हैं। उनका मानना था कि सत्ता ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न होती है, जो कभी भी तटस्थ नहीं होती। उनके अनुसार, सत्ता एक सामाजिक घटना है, जो हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में गहराई से अंतर्निहित होती है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

आनुवंशिकी, आख्यान, विमर्श, नियंत्रण, नव-इतिहासवाद, बहुलता

Discussion / चर्चा

2.5 मिशेल फूको

- समकालीन उत्तर-आधुनिक चिन्तकों में प्रमुख

मिशेल फूको समकालीन उत्तर-आधुनिक चिन्तकों में एक ऐसा नाम है जिसने ज्ञान की प्रविधियों-खासकर आधुनिकतावादी ज्ञान की प्रविधियों, सत्यार्थों तथा दावों, सबको एक साथ उलट दिया। फ्रेंच विचारक मिशेल फूको (Michel Foucault) पेरिस में 'History of systems of Thought' के प्रोफेसर थे। उनके आचार्यत्व पर दार्शनिकता की छाप थी और वे अनेक कृतियों के लेखक थे। फूको ने इतना लिखा है कि उनके विचारों को समेट पाना चुनौती है। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं –

Michel Foucault

मिशेल फूको समकालीन उत्तर-आधुनिक चिंतकों में एक महत्वपूर्ण नाम हैं, जिन्होंने ज्ञान की प्रविधियों, सत्य के स्वरूप और दावों को एक साथ चुनौती दी। वामपंथी चिंतक उन्हें नीश्तेवादी कहकर संबोधित करते हैं। फूको के 'पुरातात्त्विक' (Archaeological) अध्ययनों ने समाजों को पढ़ने की एक नई पद्धति विकसित की, जिसे 'आनुवंशिकी' (Genealogy) कहा जाता है। यह समाजशास्त्र का एक विशिष्ट क्षेत्र है, जिसने कलाओं के क्षेत्र में उत्तर-आधुनिक प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया।

- वे किसी भी सार्वभौमिक विमर्श को संदेह की दृष्टि से देखते हैं।

फूको के 'विमर्श सिद्धांत' (Theory of Discourse) ने साहित्यिक जगत में क्रांतिकारी प्रभाव डाला। उनकी विचारधारा की प्रमुख विशेषता यह है कि वे किसी भी सार्वभौमिक (Universal) विमर्श को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। वे मानव प्रकृति को किसी स्थायी व्याख्या के आधार पर निर्धारित नहीं करते, बल्कि प्रत्येक युग में उसे नए दृष्टिकोण से देखने और पुनः विश्लेषण करने में विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि वे तर्क की 'बहुलता' (Plurality) पर जोर देते हैं। इसी आधार पर प्रत्येक युग का सत्य, अगले युग में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण के लिए, भक्ति युग का सत्य, रीति युग के सत्य से भिन्न था।

फूको का विचार है कि संसार के इतिहास और ज्ञान का कोई भी विमर्श शत-प्रतिशत सत्य नहीं होता—वह मात्र सत्य के निकट या उससे दूर हो सकता है। इस कारण 'इतिहास' का कोई पूर्णतः वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं। उत्तर-संरचनावादी

(Post-Structural) चिंतन में फूको ने यह अवधारणा प्रस्तुत कर बौद्धिक हलचल मचा दी कि 'पाठात्मकता' (Totality) ही सब कुछ नहीं है। शक्ति और सत्ता के व्यापक खेल में 'पाठ' (Text) का विमर्श (Discourse) अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फूको का विमर्श सिद्धांत उत्तर-आधुनिक विमर्शों में एक अनिवार्य विचारधारा बन गया है।

मूलतः 'विमर्श' से तात्पर्य है 'विचार, की समग्रता' या 'समग्रता में विचार', दृष्टि कोण, गहन अंतदृष्टि आदि 'विमर्श' अथवा 'Discourse' की परिभाषा यों दी गई है –"Knowledge is constructed organized, shared and used through particular frame of speech writing and language or what is called discourse."

- 'विमर्श' से तात्पर्य है 'विचार, की समग्रता'

फूको का मानना है कि वास्तविक 'शक्ति' के प्रयोग को विमर्श ही संभव, बनाता है। राजनीति, कला, साहित्य में शक्ति 'विमर्श' से ही प्राप्त होती है। फूको का 'विमर्श सिध्दान्त' अनंत का विस्तार है। 'The Order of Discourse' वास्तव में मिशेल फूको द्वारा फ्रांस के 'डी फ्रांस' कॉलेज में 1970 को दिया गया उद्घाटन भाषण था।

2.5.1

मिशेल फूको ने अनेक तर्कों के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि सामाजिक संस्थान विमर्श को उत्पन्न करते हैं और उन्हें शक्ति तथा सामर्थ्य प्रदान करते हैं। कोई भी शक्ति, चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक, 'विमर्श' के माध्यम से ही सक्रिय रहती है और उसकी सक्रियता ही उसे 'स्थापित' करती है। फूको एक ऐसा मौलिक चिंतक हैं जो परंपरागत ढाँचों को चुनौती देते हुए कहते हैं कि 'पाठात्मकता' (Textuality) का सार 'पाठ' के विमर्श-सिद्धांत में निहित है।

उन्होंने पूँजीवादी समाज और संस्कृति की नैतिकता को नकारते हुए मानसिक रोगियों, कैदियों और समलैंगिकों जैसे उपेक्षित समूहों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। उनकी डॉक्टरेट थीसिस का शीर्षक Madness and Civilization: A History of Insanity in the Age of Reason था, जिसमें उन्होंने दावा किया कि 'पागलपन' वास्तव में चिकित्सा संस्थानों द्वारा निर्मित एक सामाजिक संरचना है। फूको ने सदैव इन हाशिए पर पड़े समूहों के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई और उनके प्रति समाज की अन्यायपूर्ण नीतियों का विरोध किया।

उन्होंने चिकित्सा संस्थानों को शक्ति और सामाजिक नियंत्रण के उपकरण के रूप में देखा। उनकी यह थीसिस 1961 में प्रकाशित हुई और बाद में 1964 में इसे पुस्तक के रूप में पुनः प्रकाशित किया गया। उनकी अन्य उल्लेखनीय पुस्तक हैं -

- The Birth of the Clinic:An Archaelogy of Medical Perception. (1963)
- The Archaelogy of Knowledge. (1969)
- The Discourse of Language. (1969)
- Discipline and Punish : The Birth of Prison. (1975)

दूसरे शब्दों में, फूको ने विशुद्ध वस्तुनिष्ठ 'वैज्ञानिक' सत्य की अवधारणा को खोखला सिद्ध किया। उन्होंने ज्ञान और शक्ति के बीच पूर्ण तादात्म्य देखा। उनके अनुसार, सभ्यता और संस्कृति के सभी मानदंड 'शक्ति के विमर्श' से ही उत्पन्न होते हैं। शक्ति, ज्ञान से उत्पन्न होती है—सद-असद का बोध भी 'शक्ति के विमर्श' से ही संभव होता है। अतः केवल सत्य को जानना ही पर्याप्त नहीं है; सत्य में पैठकर उसे आत्मसात करना भी आवश्यक है।

- 'विमर्श' से तात्पर्य है 'विचार, की समग्रता'

फूको के इन विचारों ने अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया। परिणामस्वरूप, साहित्य के अध्ययन की एक नवीन पद्धति विकसित हुई।

कहना न होगा कि फूको के विमर्श सिध्दान्त पर जर्मन दार्शनिक नीत्शे का गहरा प्रभाव है। यह भी कहा जाता है कि फूको वहाँ से अपने विचार को शुरु करते हैं, जहाँ से नीत्शे ने उसे छोड़ा था।

रोलां बार्थ के 'लेखक की मृत्यु' (The Death of the Author) का जवाब फूको ने 'What is an Author' लिखकर किया है।

फूको लेखक के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार लेखक एक व्यक्ति के रूप में भले ही रचना में प्रस्तुत न हो पर उसकी संपूर्णता में वह ज़रूर मौजूद है। वे यह तर्क स्थापित करते हैं कि लेखक के अस्तित्व को पूर्ण रूप से नकारा नहीं जा सकता।

'What is an Author' में फूको कहते हैं—The Author as a person may be absent from his work, but he is present in it as a certain functional principle.

- फूको लेखक के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।

'What is an Author' में फूको लेखक को ढूँढ़ते हैं। बदलते इतिहास में लेखक की स्थिति बदल गई है। पश्चिम में सत्रहवीं सदी तक Author की Authority थी। जब पुराने टैक्स्ट ने अपने सत्यापन के अलग तरीके बना लिए तो ऑथर की अथॉरटी कम हो गई। टैक्स्ट के केंद्र में ऑथर नहीं रह गया। सत्य सामान्य हो गया, अनाम हो गया, यूनिवर्सल हो गया।

फूको क्षेत्रीय एवं विशिष्ट समस्याओं पर ध्यान देने के इच्छुक थे। विश्वस्तरीय बुद्धिजीवी वर्ग (विशेष रूप से मार्क्सवादी बुद्धिजीवी) सत्य, न्याय एवं समानता जैसी व्यापक समस्याओं पर विचार करना अधिक पसंद करता है। किन्तु, समस्याएँ प्रायः वैश्विक न होकर किसी विशेष स्तर पर केंद्रित होती हैं। ऐसे संदर्भ में, फूको विशिष्ट बुद्धिजीवियों की भूमिका को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे।

वे शक्ति को केवल न्याय, संविधान, प्रभुसत्ता आदि के संदर्भ में देखने को तैयार नहीं थे और न ही वे इसे केवल राजशक्ति तक सीमित रखते थे। फूको के अनुसार, शक्ति की व्याख्या कोई भी अधिसिद्धांत (Meta Theory)—चाहे वह वामपंथी हो या दक्षिणपंथी—पूर्णतः नहीं कर सकता, विशेष रूप से मनोचिकित्सा तथा दंड देने वाली संस्थाओं में शक्ति के प्रयोग की। शक्ति के कई प्रकार के संबंध होते हैं, जिनकी समझ

SGOU

कठिन होती है, जैसे—स्त्री पर पुरुष का प्रभुत्व, बच्चों पर माता-पिता का नियंत्रण, मानसिक रोगियों पर मनोचिकित्सा का प्रभाव आदि।

मिशेल फूको के शक्ति-सिद्धांत ने समाज में सत्ता को लेकर पारंपरिक सोच को बदल दिया। इससे सामाजिक न्याय, राजनीति और संस्कृति पर नई चर्चाएँ शुरू हुईं। उनका मानना था कि सत्ता ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न होती है, जो कभी भी तटस्थ नहीं होती। सत्ता एक सामाजिक घटना है, जो रोज़मर्रा की ज़िंदगी में गहराई से समाई होती है। उनका सिद्धांत यह समझने में मदद करता है कि भाषा के माध्यम से सत्य का निर्माण कैसे किया जाता है और इस निर्माण से किसे लाभ मिलता है।

- सत्ता ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न होती है

2.5.2 उत्तर-आधुनिकतावाद का एक अंग है– नव-इतिहासवाद (New Historicism)

प्रश्न उठता है कि क्या साहित्य इतिहास-निरपेक्ष होता है या हो सकता है? साहित्य का अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लंबे समय से किया जाता रहा है और राजनीतिक, सांस्कृतिक, एवं आर्थिक इतिहास को मानव-इतिहास के साथ जोड़कर देखने की एक समृद्ध परंपरा भी रही है। सच तो यह है कि इतिहास की छाया में रहते हुए भी साहित्य अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। साहित्य और इतिहास का संबंध सीधा-सपाट न होकर जटिल, संश्लिष्ट और बहुआयामी होता है। साहित्य, इतिहास की छाया होते हुए भी उसी से उत्पन्न नहीं होता।

साहित्य और इतिहास के संबंध पर विचार व्यक्त करते हुए कृष्णदत्त पलीवाल लिखते हैं –

'साहित्य को इतिहास का अनुकरण (यथार्थ) मानने वाली 'मिमेसिस-थियरी' अब अप्रासंगिक हो चुकी है। एक समय यथार्थवादी और रूपवादी सिद्धांतों का वर्चस्व था, किंतु आज उनकी सार्थकता स्वयं प्रश्नों के घेरे में है। हीगल और मार्क्स ने साहित्य-विवेचन में इतिहास और ऐतिहासिकता को पर्याप्त महत्व दिया, जबकि रूपवादियों ने साहित्य-अध्ययन के लिए इतिहास को अस्वीकार कर दिया।'

रूपवादियों और इतिहासवादियों के बीच चली लंबी बहस के बाद, बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में साहित्य और इतिहास की जटिलता, परस्पर निर्भरता तथा संस्कृति की भूमिका पर नए सिरे से विचार करने की एक नवीन दृष्टि (हालाँकि सर्वमान्य नहीं) विकसित हुई, जिसे 'नव-इतिहासवाद' (New Historicism) कहा गया। इस अवधारणा के अनुसार, साहित्य संस्कृति से उत्पन्न होता है और संस्कृति साहित्य से।

- साहित्य संस्कृति से उत्पन्न होता है और संस्कृति साहित्य से

मिशेल फूको के विचारों पर चर्चा करते हुए सुधीश पचौरी लिखते हैं –

'फूको के चिंतन की प्रमुख विशेषता यह है कि वह एक साथ सामाजिक और ऐतिहासिक होते हुए भी इतिहासवाद के विरोध में है। वे इतिहास या समाज के सार्वभौमिक निष्कर्ष नहीं निकालते और न ही मानव प्रकृति की कोई अंतिम व्याख्या

प्रस्तुत करते हैं। वे हर विषय को नए ढंग से, पुनः देखने में विश्वास रखते हैं और तर्क की बहुलता को स्वीकार करते हैं। '

अंततः, नव-इतिहासवाद की अवधारणा को अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्ययन के रूप में स्थापित किया गया। ब्रिटेन में इसे "सांस्कृतिक अध्ययन' (Cultural Study) के रूप में विकसित किया गया, जिसमें मिशेल फूको के विचारों का गहरा प्रभाव था।

- नव इतिहासवादियों के लिए साहित्य मात्र एक सांस्कृतिक विधा है

नव इतिहासवादियों के लिए साहित्य मात्र एक सांस्कृतिक विधा है। समाज की भाँति ही नव-इतिहासवाद अर्थबहुलतावाद की ओर अग्रसर रहता है और यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि साहित्य का अलग स्वतंत्र स्वायत्त संसार होता है। सामान्य और विशिष्ट दोनों अर्थों में साहित्य सांस्कितिक प्रक्रिया की उपज है और यह उपज नई संस्कृति को जन्मती भी है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

मिशेल फूको 20वीं शताब्दी के सबसे प्रभावशाली विचारकों में से एक थे, जिन्होंने 1984 में अपनी असामयिक मृत्यु से पहले ही सेलेब्रिटी का दर्जा प्राप्त कर लिया था। फूको ने यूरोप में राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल के कई दौर देखे, जिनका उनके विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। फूको ने यह क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किया कि केवल 'पाठात्मकता' (textuality) ही सब कुछ नहीं है। उन्होंने इस पर जोर दिया कि विश्व में सत्ता और शक्ति के जो खेल चल रहे हैं, उनमें पाठ का विमर्श (Discourse of Text) अत्यंत आवश्यक है। वास्तव में, 'शक्ति' के प्रयोग को विमर्श ही संभव बनाता है। फूको के विमर्श सिद्धांत पर जर्मन दार्शनिक नीत्शे का गहरा प्रभाव देखा जाता है। यह भी कहा जाता है कि फूको वहाँ से अपने विचारों को आगे बढ़ाते हैं, जहाँ नीत्शे ने उन्हें छोड़ा था। फूको का मानना था कि शक्ति-संपन्न और प्रभावशाली व्यक्ति ही यह निर्धारित करते हैं कि क्या कहा जाना चाहिए और क्या नहीं। नव-इतिहासवाद ने साहित्य, इतिहास, वक्तव्य और लेखन को पाठ की निर्मिति माना है। इतिहास, संस्कृति और साहित्य से गहरे संबंध स्थापित करते हुए फूको ने यह भी कहा कि इतिहास स्वयं एक प्रकार का मिथक है, जिसका पूर्णतः वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव नहीं है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. फूको के विमर्श सिद्धांत से क्या तात्पर्य है।
2. क्या साहित्य इतिहास निरपेक्ष हो सकता है - अपना विचार प्रकट कीजिए।
3. फूको के शक्ति एवं ज्ञान के संबंद्ध पर विचारों ने किस हद तक हाशिएकृत समाज को मुख्यधारा में लाने में मदद की।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/YXGjEPLJ_e0?si=CRaYjtCzF1-2REgA
- https://youtu.be/Ua4wrcS9u3A?si=XVzmL7TyLkByZpat
- https://youtu.be/tTJNOEvCQFY?si=8c8iBHIsGxgdVpGT

SGOU

इकाई 6

फ्रेड्रिक जेमेसन-वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर-आधुनिक दौर में पूँजी का संस्कृति में बदलाव जानता है
- 'उपभोक्ता' समाज और उत्तर-आधुनिकता के संबंधों को पहचानता है
- वृध्द-पूँजीवाद अर्थात् नव-साम्राज्यवाद की विशेषता समझता है
- 'पूँजीवाद का संस्कृति पर प्रभाव' के बारे में जानकारी प्राप्त होता है

Background / पृष्ठभूमि

उत्तर आधुनिकता के सिद्धांतकार देर से पूँजीवाद के पुनर्गठन और वैश्वीकरण से जुड़े परिवर्तनों और उत्तर आधुनिक संस्कृति के उद्‌भव के बीच एक समानांतर संबंध का दावा करते हैं। दो प्रमुख सिद्धांतकारों, फ्रेडरिक जेम्सन और डेविड हार्वे का तर्क है कि प्रौद्योगिकी, शहरी स्थान और उपभोग के रूपों में परिवर्तन ने स्वयं और दूसरों के अनुभव के एक नए तरीके की स्थितियों का निर्माण किया है (जेम्सन 1991, हार्वे 1989)। विशेष रूप से, वे तर्क देते हैं कि नए इलेक्ट्रॉनिक और संचार प्रौद्योगिकियों के परिणामस्वरूप सामाजिक स्थान और समय का 'संपीड़न' एक नई सांस्कृतिक संवेदनशीलता में परिलक्षित होता है। इसके अलावा, जिस तरह से जीवन और विचार के पारंपरिक तरीकों के विनाश के लिए आधुनिकतावादी प्रतिबद्धता अक्सर नुकसान की एक दुखद भावना से जुड़ी हुई थी, उसी तरह उत्तर आधुनिकता के कुछ सिद्धांतकारों का तर्क है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में स्थान और समय के हमारे अनुभव में उत्परिवर्तन द्वारा एक समान प्रकार की बेघरता उत्पन्न होती है। जेम्सन उन लोगों में से हैं जो उत्तर आधुनिकता के सांस्कृतिक अनुभव के बारे में इस आधार पर नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं कि यह स्वयं और इतिहास की पर्याप्त रूप से मजबूत भावना को बनाए नहीं रखता है। उनका तर्क है कि उत्तर आधुनिक शहरी स्थान के तेजी से विकास ने 'व्यक्तिगत मानव शरीर की खुद को खोजने, अपने आस-पास के वातावरण को अवधारणात्मक रूप से व्यवस्थित करने और मानचित्रण योग्य बाहरी दुनिया में अपनी स्थिति को संज्ञानात्मक रूप से मैप करने की क्षमताओं को पीछे छोड़ दिया है'। उनके अनुसार, उत्तर आधुनिकता को जटिल और असंतत सामाजिक स्थानों के सामने अक्षमता और अतीत या भविष्य की समृद्ध समझ के अभाव में भटकाव के रूप में अनुभव किया जाता है। इसका परिणाम व्यक्तिपरकता का एक व्यापक रूप से प्रलेखित खंडित और विखंडित अनुभव है, साथ ही कलात्मक और सांस्कृतिक उत्पादन के पिछले रूपों की भावनाहीन पुनरावृत्ति या 'कोरी पैरोडी' की प्रवृत्ति है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

पूँजीवाद, उपभोक्ता, वृध्द-पूँजीवाद, नव उपनिवेशवाद

Discussion / चर्चा

2.6 फेड्रिक जेम्सन

- मार्क्सवादी सिद्धांत को उत्तर पूँजीवादी संदर्भ में लागू करते हैं

उत्तर आधुनिकतावाद, या वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क, मार्क्सवादी सांस्कृतिक और राजनीतिक सिद्धांतकार फ्रेड्रिक जेम्सन द्वारा 1991 में लिखी गई एक प्रभावशाली आलोचनात्मक सिद्धांत की कृति है। जेम्सन 'उत्तर आधुनिकता' की अपनी अवधारणा को बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में विकसित उत्तर पूँजीवादी विचारधाराओं और प्रथाओं तक सीमित रखते हैं। उनका तर्क है कि उत्तर आधुनिक युग न तो आधुनिकता से पूरी तरह अलग है और न ही उसकी सहज निरंतरता है। जेम्सन मार्क्सवादी सिद्धांत को उत्तर पूँजीवादी संदर्भ में लागू करते हैं—एक ऐसा युग जिसे आमतौर पर मार्क्सवादी शब्दावली में नहीं समझा जाता। वे बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के सांस्कृतिक परिदृश्य का विश्लेषण करते हुए दृश्य कला, वास्तुकला, 'उच्च आधुनिकतावादी' तकनीकों और नए मीडिया में उभरते रुझानों को छूते हैं। जेम्सन यह दर्शाते हैं कि ये अभिव्यक्तिपूर्ण शैलियाँ पूँजीवादी और मार्क्सवादी दोनों ही विचारधाराओं को भौतिक वस्तुओं में बदल देती हैं। इन शैलियों के भीतर, वे पैस्टीश (किसी शैली या कलाकार की नकल), प्रभाव (भावनात्मक गहराई) की कमी, क्षेत्रों और स्थानों के समतलीकरण और पुनरावृत्ति (कलाकृतियों में स्वयं कुछ कलाकृतियों के मानव पर्यवेक्षकों की भागीदारी) जैसी तकनीकों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अपने विश्लेषण में, जेम्सन यह बताते हैं कि आधुनिक कला अब किस प्रकार सामान्य जीवन के अनुभव को व्यक्त करने के लिए नई पद्धतियों का उपयोग करती है।

Fredric Jameson

उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रमुख विचारकों और सिद्धांतकारों में फ्रेड्रिक जेमिसन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे एक प्रसिद्ध मार्क्सवादी चिंतक हैं, जिन्होंने मार्क्सवाद को उत्तर-संरचनावादी अवधारणाओं के संदर्भ में परखा है। जेमिसन अमेरिका के अग्रणी मार्क्सवादी आलोचकों में से एक हैं, जो मानव प्रकृति को किसी निश्चित परिभाषा में सीमित करने के बजाय, उसे लगातार पुनर्व्याख्यायित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

- अमेरिका के अग्रणी मार्क्सवादी आलोचकों में से एक

पिछले चार दशकों से वे पश्चिमी साहित्य और संस्कृति के सिद्धांतों के प्रखर आलोचक रहे हैं। उन्होंने उत्तर-आधुनिकता की ऐतिहासिक उपस्थिति को रेखांकित करते हुए इसे बहुराष्ट्रीय पूँजी के वैश्विक प्रसार के युग की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति माना है। समकालीन सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण में उनकी विशेषज्ञता विशेष रूप से उत्तर-आधुनिकतावाद और पूँजीवाद के संबंधों के अध्ययन में स्पष्ट होती है। जेमिसन की सात्र (Jean-Paul Sartre) में गहरी रुचि रही, जिसने उन्हें मार्क्सवादी सिद्धांत के गहन अध्ययन की ओर प्रेरित किया।

जमेसन की प्रमुख रचनाएँ हैं –

- Marxism and Form (1971)
- The Prison house of the language (1972)
- The Post Modernism : The Cultural Logic of Late Capitalism (1991)
- The Seeds of Time (1994)
- The Ideology of Theory (1994)
- The Cultural Turn (1998)

कई रचनाओं के कर्ता होने के बावजूद 1991 में प्रकाशित उनकी प्रख्यात रचना 'The Post Modernism' ने इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया। 'उपभोक्ता' समाज और उत्तर-आधुनिकता के संबंधों की व्याख्या करते हुए उन्होंने 'उत्तर-आधुनिकतावाद' की उपस्थिति को 'वृध्द पूँजीवाद' से जोड़ा। यहाँ जेमिसन उत्तर-आधुनिकतावाद के समाज शास्त्रीय, अर्थ-शास्त्रीय पहलु पर चिंतन करते हैं। वे इस सांस्कृतिक परिवर्तन को पूँजीवाद के नए चरण से जोड़ते हैं। यह पूँजीवाद 'वृध्द-पूँजीवाद' अथवा 'Late Capitalism' है। यह शब्द अर्थ शास्त्री अनैस्ट मैंडेल की इसी नाम की किताब 'Late Capitalism' से लिया गया है। जेमिसन पूँजी (Capital) के विस्तार को तीन चरणों में विभक्त करते हैं।

- 'वृध्द-पूँजीवाद' अथवा 'Late Capitalism' शब्द अर्थ शास्त्री अनैस्ट मैंडेल की इसी नाम की किताब 'Late Capitalism' से लिया गया है।

1. पहला दौर 'बाज़ार पूँजीवाद' का दौर था जो औद्योगिक क्रांति का फल था – 1700-1850 के बीच यूरोप में पूँजी और उद्योग (Capital and Industry) के सहयोग से फलीभूत राष्ट्रीय बाज़ारों का निर्माण और औद्योगिक आधुनिक संस्कृति का निर्माण। वह बाज़ार पूँजीवाद अथवा 'Market Capitalism' का युग था।

2. दूसरा दौर "इज़ारेदार पूँजीवाद' का दौर था।

3. तीसरा दौर – बहुराष्ट्रीय पूँजी का दौर था।

2.6.1 पूँजीवाद

'पूँजीवाद' की शुरुआत की तारीख चाहे जो भी मानी जाए, बौद्धिक इतिहास का एक दिलचस्प पहलू यह है कि जिस व्यवस्था को यह शब्द संदर्भित करता है, वह किसी न किसी रूप में कई दशकों तक अस्तित्व में थी, इससे पहले कि इसे 'पूँजीवाद' का नाम दिया गया। यह केवल उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में था जब समाजवादी आंदोलन ने इसे समाजवाद के विरोधी के रूप में परिभाषित करने के लिए अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप यह शब्द व्यापक राजनीतिक और लोकप्रिय विमर्श का हिस्सा बन गया।

▶ विकास के प्रारंभिक चरण

- समाज शास्त्रियों ने "पूँजीवाद' शब्द को अध्ययन की वस्तु के रूप में बौद्धिक मुद्रा और वैधता दी।

पूँजीवाद, जिसे इतिहास के एक महत्वपूर्ण चरण के रूप में माना जाता है, पिछले पाँच सौ वर्षों से प्रभावी रहा है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि पूँजीवाद के अलग-अलग दौर और अवस्थाएँ रही हैं। मार्क्स के विचारों ने बाद में उन विचारकों को भी प्रभावित किया, जो मार्क्सवादी नहीं थे या उसके विरोधी थे। पहले इसे बुर्जुआ समाज कहा जाता था, लेकिन बाद में इसे पूँजीवाद का नाम दिया गया, जो धीरे-धीरे "आधुनिक समाज' का समानार्थी बन गयासमाजशास्त्रियों ने "पूँजीवाद' को एक अध्ययन के विषय के रूप में स्वीकार किया और इसे बौद्धिक रूप से मान्यता दी। उन्होंने इसके अर्थ का विस्तार किया और इसे केवल एक आर्थिक प्रणाली या श्रम संगठन तक सीमित नहीं रखा। धीरे-धीरे "पूँजीवाद' को सांस्कृतिक घटनाओं और सामाजिक मनोवृत्तियों के व्यापक दायरे में देखा जाने लगा।

2.6.2 वृद्ध पूँजीवाद की अवधारणा क्या है

फ्रेडरिक जेमेसन के अनुसार, वृद्ध पूँजीवाद की मुख्य विशेषता एक वैश्वीकृत उत्तर-औद्योगिक अर्थव्यवस्था है, जहाँ हर चीज़ उपभोग की वस्तु बन जाती है। यहाँ तक कि कानून, जीवन शैली जैसे अमूर्त तत्व भी उपभोग योग्य उत्पादों में परिवर्तित हो जाते हैं।

'पॉस्ट मॉडर्निज़म एंड कंज़्यूमर सोसाइटी' नामक लेख में जेमेसन उत्तर-आधुनिक संस्कृति की विशिष्टताओं को रेखांकित करते हैं। वे बताते हैं कि शैलियों का तीव्र परिवर्तन, निरंतर बदलता फैशन, वैज्ञानिक उन्नति, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की शक्ति, नव-उपनिवेशवाद और पर्यावरणीय मुद्दे मिलकर उत्तर-आधुनिक विभाजनों का निर्माण करते हैं और ऐतिहासिक बोध को धुंधला कर देते हैं। जेमेसन की मौलिक दृष्टि उत्तर-आधुनिक विकेंद्रित यथार्थ की चंचलता और अस्थिरता को पहचानने में है, जिसे वे उत्तर-आधुनिकता का सार मानते हैं। वे यह भी तर्क देते हैं कि हम उत्तर-आधुनिक संस्कृति का ऐसा हिस्सा बन चुके हैं कि इससे अलग होना या इसका पूर्णतः नकार

असंभव प्रतीत होता है।

साम्राज्यवादी विस्तार की ऐतिहासिक स्पष्टता थी, जिसने संपूर्ण विश्व को एक बाज़ार में परिवर्तित कर दिया। इन बाज़ारों की आपसी निर्भरता बढ़ती गई और विश्व एक 'शॉपिंग कॉम्प्लेक्स' में तब्दील हो गया। अपनी पुस्तक 'द पोस्ट मॉडर्निज़्म' में जेमेसन विस्तार से बताते हैं कि उत्तर-आधुनिकता, वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क है। 'Late Capitalism' में वे 'Late' को परिपक्वता, परिवर्तन और प्रौढ़ता के पर्याय के रूप में देखते हैं। इसका अर्थ पूँजी का सांस्कृतिक रूप में रूपांतरण है। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि अर्थव्यवस्था और संस्कृति, जो पहले अलग-अलग क्षेत्र थे, अब एक ही वास्तविकता में समाहित हो गए हैं।

- उत्तर-आधुनिकता, वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क है।

वृद्ध पूँजीवाद, जिसे नव-साम्राज्यवाद भी कहा जा सकता है, की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचनाओं को युद्ध-आधारित अर्थव्यवस्था में बदल दिया है। यह केवल वैचारिक युद्ध तक सीमित नहीं है, बल्कि भौतिक युद्ध भी इसका अनिवार्य अंग बन चुका है। युद्ध तकनीकों, उपभोक्ता तकनीकों और कृषि तकनीकों में परिवर्तन ने कृषि और पर्यावरण से जुड़े नए संकट उत्पन्न किए हैं। अस्तित्व मात्र का प्रश्न अब पूँजीवादी व्यवस्था का एक अनिवार्य प्रश्न बन चुका है।

जनसंख्या नियंत्रण भी इसी उन्नत पूँजीवाद की नीति का हिस्सा है, जो अब हमारी निजी स्वतंत्रता और गोपनीयता तक पहुँच चुका है। जेमेसन इस संदर्भ में कहते हैं कि आधुनिकता द्वारा छोड़े गए रिक्त स्थान नई सांस्कृतिक वस्तुओं से भर दिए जाएँगे और अंततः निजता (Privacy) समाप्त हो जाएगी।

कला के क्षेत्र में, जेमेसन 'पेस्टीच' (Pastiche) की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। वे इसे कला की नकल या अनुकरण की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। यह आधुनिकता की मौलिकता के विपरीत एक ऐसी स्थिति को जन्म देता है जहाँ कला केवल पूर्ववर्ती शैलियों की पुनरावृत्ति बनकर रह जाती है, जिसमें नवीनता का अभाव होता है।

इस प्रकार, जेमेसन उत्तर-आधुनिकता को वृद्ध पूँजीवाद की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति मानते हैं, जहाँ प्रत्येक तत्व बाज़ार और उपभोग का हिस्सा बन चुका है और जिसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिरता निरंतर अस्थिरता में बदलती जा रही है।

2.6.3 लेट कैपिटालिज़्म

फ्रेड्रिक जेमेसन की पुस्तक The Postmodernism: The Cultural Logic of Late Capitalism (1991) उत्तर-आधुनिकतावाद की एक महत्वपूर्ण आलोचना प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक विशेष रूप से मार्क्सवादी दृष्टिकोण से आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद की व्याख्या करती है। जेमेसन उत्तर-आधुनिकतावाद को पूँजीवादी समाज के वैश्विक वित्तीय चरण की सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में देखते हैं। वे तर्क देते

- जेमिसन 'Late Capitalism' में 'Late' को बदलने (प्रौढ़ होने) के पर्याय के रूप में देखते हैं।

हैं कि उत्तर-आधुनिकतावाद की प्रमुख विशेषताएँ हैं—ऐतिहासिकता का संकट, प्रभाव का ह्रास और पैस्टीश (Pastiche) का बढ़ता प्रचलन।

- **उत्तर-आधुनिकतावाद की विशेषताएँ**

जेमेसन विभिन्न क्षेत्रों में उत्तर-आधुनिकतावादी विशेषताओं का विश्लेषण करते हैं, जिनमें शामिल हैं:

- **सिनेमा** : उत्तर-आधुनिक फिल्मों में ऐतिहासिकता का अभाव और दृश्य प्रभावों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।
- **टेलीविज़न** : इसमें तेजी से बदलते दृश्यों और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों का प्रभाव देखा जाता है।
- **साहित्य** : परंपरागत शैली की तुलना में विखंडन और विडंबना (Irony) की प्रधानता होती है।
- **अर्थशास्त्र** : वैश्वीकरण और वित्तीय पूँजीवाद का प्रभाव बढ़ता है।
- **वास्तुकला** : आधुनिक संरचनाओं में विविध शैलियों का मिश्रण देखा जाता है।
- **दर्शन** : दार्शनिक विमर्शों में सत्य और वास्तविकता की पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती दी जाती है।

लेट कैपिटलिज़्म (Late Capitalism) का संदर्भ

लेट कैपिटलिज़्म पूँजीवाद के उस उन्नत चरण को संदर्भित करता है, जो सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच विकसित हुआ। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं:

- **कृषि का व्यावसायीकरण** : भूमि को एक आर्थिक संसाधन के रूप में देखा जाने लगा।
- **निजी स्वामित्व की स्थापना** : संपत्ति का केंद्रीकरण बढ़ा।
- **औद्योगिक उत्पादन का विस्तार** : बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रणाली विकसित हुई।

- बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रणाली विकसित हुई

उत्तर-आधुनिकतावाद और पूँजीवाद का संबंध

जेमेसन के अनुसार, उत्तर-आधुनिकतावाद एक स्वतंत्र सांस्कृतिक आंदोलन नहीं है, बल्कि उत्तर-पूँजीवादी व्यवस्था का एक अनिवार्य लक्षण है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **जनसंचार माध्यमों का प्रभुत्व : मीडिया द्वारा सूचना का तीव्र और व्यापक प्रसार।**
- **उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव** : व्यक्तियों की पहचान और सामाजिक संरचना उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों पर आधारित हो गई।

- **पारंपरिक मूल्यों और ऐतिहासिक चेतना का ह्रास :** सांस्कृतिक उत्पादों में विखंडन और सतहीपन बढ़ गया।

- उत्तर आधुनिकतावाद - वृद्ध पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क फ्रेड्रिक जेमेसन द्वारा एक मौलिक निबंध हे जो मूल रूप से 1984 में न्यू लेफ्ट रिव्यू में प्रकाशित हुआ

फ्रेड्रिक जेमेसन का यह अध्ययन उत्तर-आधुनिकतावाद को केवल एक सांस्कृतिक आंदोलन न मानकर पूँजीवाद के अंतिम चरण की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में देखता है। इस सिद्धांत की गहरी समझ मार्क्सवादी आलोचना और समकालीन सांस्कृतिक विमर्शों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

उत्तर-आधुनिकतावाद साहित्य, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डालने वाली विचारधारा है। फ्रेडरिक जेमेसन उत्तर-आधुनिकता को पूँजीवाद के नए चरण - वृद्ध पूँजीवाद (Late Capitalism) - से जोड़ते हैं। यह अवधारणा 1970 के दशक में अर्नेस्ट मैंडल की पुस्तक Late Capitalism के प्रकाशन के बाद अधिक लोकप्रिय हुई। इस अवधि को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का समय माना जाता है, जब वैश्वीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभाव बढ़ा।

वृद्ध पूँजीवाद और सांस्कृतिक परिवर्तन

जेमेसन वृद्ध पूँजीवाद को उन्नत पूँजीवाद के एक चरण के रूप में परिभाषित करते हैं। इस चरण में वैश्वीकरण तेज़ी से बढ़ता है, बहुराष्ट्रीय निगमों का प्रभुत्व होता है और संस्कृति तथा वाणिज्य के बीच की सीमाएँ धुंधली हो जाती हैं। परिणामस्वरूप, साहित्य और कला में भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

पूँजीवाद का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

वर्नर सोम्बार्ट और मैक्स वेबर जैसे बुर्जुआ समाजशास्त्रियों ने पूँजीवाद को एक अध्ययन की विषयवस्तु के रूप में स्थापित किया। विशेष रूप से, मैक्स वेबर ने पूँजीवाद के ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ को व्यापक बनाने का कार्य किया।

जेमेसन और उत्तर-आधुनिक साहित्य

- जेमेसन ने फ्रायड से प्रेरणा लेकर 'राजनीतिक अवचेतन' की अवधारणा प्रस्तुत की

फ्रेडरिक जेमेसन की पुस्तक The Political Unconsciousness (1981) के प्रकाशन के साथ नव-फ्रायडवाद, उत्तर-संरचनावाद, उत्तर-पूँजीवाद और विरचनावाद पर नए सिरे से वैचारिक चर्चाएँ शुरू हुईं। जेमेसन ने फ्रायड से प्रेरणा लेकर 'राजनीतिक अवचेतन' की अवधारणा प्रस्तुत की। उत्तर-आधुनिकतावाद ने संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद (Post-Structuralism), मार्क्सवाद, संकेत विज्ञान और अर्थ मीमांसा-दर्शन के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- **साहित्यिक अध्ययन में प्रासंगिकता**

उत्तर-आधुनिकतावाद साहित्य को केवल पाठ तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे व्यापक सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों से जोड़कर देखने का प्रयास करता है। इस दृष्टिकोण से:

- साहित्य और पूँजीवाद का संबंधः साहित्यिक कृतियाँ सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं।
- सांस्कृतिक उत्पादन और बाज़ारः उत्तर-आधुनिक युग में साहित्य, कला और मीडिया व्यावसायिक मूल्यों से प्रभावित होते हैं।
- चिन्तन की बहुआयामी दृष्टिः उत्तर-आधुनिक साहित्य में कोई एक निश्चित सत्य नहीं होता, बल्कि विभिन्न दृष्टिकोणों का सह-अस्तित्व होता है।

- उत्तर-आधुनिकतावाद और वृद्ध पूँजीवाद के बीच संबंध को समझना साहित्यिक अध्ययन के लिए अनिवार्य है

उत्तर-आधुनिकतावाद और वृद्ध पूँजीवाद के बीच संबंध को समझना साहित्यिक अध्ययन के लिए अनिवार्य है। फ्रेडरिक जेमेसन के विचार साहित्य को सामाजिक और आर्थिक संदर्भों से जोड़ते हैं, जिससे साहित्य का अध्ययन अधिक व्यापक और गहन बनता है।

2.6.4 उत्तर-आधुनिकता और जेम्सन का विश्लेषण

साहित्य और विचारधाराओं के अध्ययन में, समय को विभिन्न अवधियों में विभाजित किया जाता है—आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता जैसी श्रेणियाँ हमें ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को समझने में सहायता करती हैं। फ्रेडरिक जेम्सन, जो उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रमुख विचारकों में से एक हैं, इस विभाजन की जटिलताओं को उजागर करते हैं और समयरेखा को बहु-आयामी दृष्टिकोण से देखने की सलाह देते हैं।

- **समयरेखा और ऐतिहासिक विभाजन**

- इतिहास एक सतत प्रवाह में विकसित होता है

जेम्सन इस धारणा पर प्रश्न उठाते हैं कि आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता स्पष्ट रूप से अलग-अलग अवधियाँ हैं। उनका तर्क है कि इतिहास एक सतत प्रवाह में विकसित होता है, जहाँ कुछ प्रवृत्तियाँ हावी होती हैं, नई प्रवृत्तियों को जन्म देती हैं और धीरे-धीरे फीकी पड़ जाती हैं। इस दृष्टिकोण से, 'उत्तर-आधुनिकता' जैसी संज्ञाएँ उपयोगी हो सकती हैं, क्योंकि ये किसी विशिष्ट कालखंड की प्रमुख सांस्कृतिक विशेषताओं को स्पष्ट करती हैं।

- **संस्कृति, अर्थशास्त्र और राजनीति का परस्पर संबंध**

जेम्सन इस विचार को आगे बढ़ाते हुए बताते हैं कि संस्कृति का गहरा संबंध समाज की आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से होता है। यह मार्क्सवादी दृष्टि कोण का विस्तार है, जिसमें कहा गया था कि किसी भी समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ उसकी संस्कृति में परिलक्षित होती हैं। इस संदर्भ में, साहित्य और कला केवल सौंदर्यशास्त्र तक सीमित नहीं होते, बल्कि वे व्यापक आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं के संकेतक भी होते हैं।

- **पूँजीवाद और सांस्कृतिक उत्पादनः अर्नेस्ट मेंडल का योगदान**

जेम्सन ने वैश्विक पूँजीवाद की प्रगति और सांस्कृतिक उत्पादन के बीच संबंध को समझाने के लिए जर्मन-बेल्जियम के अर्थशास्त्री अर्नेस्ट मेंडल के विचारों को अपनाया। मेंडल ने पूँजीवादी इतिहास को तीन चरणों में विभाजित किया:

- **पहला चरण** (1800 **के दशक की शुरुआत**): भाप इंजन का निर्माण—यह अंतर-राज्य बाजार अर्थव्यवस्था के उदय से जुड़ा था।
- **दूसरा चरण** (1800 **के दशक के अंत**): विद्युत शक्ति का व्यापक उत्पादन—यह वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव से संबंधित था।
- **तीसरा चरण** (1940 **के दशक में**): डिजिटल और परमाणु प्रौद्योगिकियों का आविष्कार—यह देर से पूँजीवादी चरण का प्रतिनिधित्व करता है।
- **साहित्यिक विकास और सांस्कृतिक चरण**

- जेम्सन ने तीन प्रमुख कलात्मक आंदोलनों

मेंडल के आर्थिक चरणों के समानांतर, जेम्सन ने तीन प्रमुख कलात्मक आंदोलनों का उल्लेख किया:

- **यथार्थवाद** (Realism): यह पहले आर्थिक चरण से मेल खाता है, जहाँ साहित्य और कला वास्तविक जीवन की सटीक प्रस्तुति पर केंद्रित थे।
- **आधुनिकतावाद** (Modernism): यह दूसरे आर्थिक चरण के दौरान विकसित हुआ और इसमें जटिलता, अमूर्तता और नवाचार की प्रवृत्तियाँ प्रमुख रहीं।
- **उत्तर-आधुनिकता** (Postmodernism): यह तीसरे आर्थिक चरण से जुड़ा है, जहाँ विखंडन, विडंबना और उपभोक्तावादी संस्कृति साहित्य और कला की मुख्य विशेषताएँ बन गईं।

जेम्सन के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य और कला को केवल स्वायत्त या स्वतंत्र संरचनाएँ नहीं माना जा सकता। वे समाज, अर्थशास्त्र और राजनीति से गहरे रूप से प्रभावित होती हैं। इस दृष्टिकोण से, उत्तर-आधुनिकता केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक और आर्थिक परिघटना भी है। साहित्य के छात्रों के लिए, यह समझ आवश्यक है कि कोई भी साहित्यिक आंदोलन केवल शैलीगत परिवर्तन नहीं होता, बल्कि यह एक व्यापक ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य का हिस्सा होता है।

जेम्सन का तर्क है कि मानव इतिहास की समयरेखा को अलग-अलग अवधियों में विभाजित करना सही नहीं है।

2.6.5 फ्रेडरिक जेम्सन के अनुसार उत्तर-आधुनिकता

- व्यक्तिगत पहचान की सीमाएँ धुंधली हो गई है

उत्तर-आधुनिकता (Postmodernism) समकालीन समाज में एक प्रभावशाली सांस्कृतिक प्रवृत्ति है, जिसे फ्रेडरिक जेम्सन (Fredric Jameson) ने गहराई से विश्लेषित किया है। जेम्सन का मानना है कि उत्तर-आधुनिक युग में राज्य, सूचना-निर्माण संस्थाएँ

और यहाँ तक कि व्यक्तिगत पहचान की सीमाएँ धुंधली हो गई हैं। इस कारण से, ज्ञान और सूचना का प्रवाह अधिक तरल हो गया है, जिससे पहले असंबंधित माने जाने वाले विचारों और विषयों के बीच संवाद संभव हुआ है।

उत्तर-आधुनिकताः एक सांस्कृतिक प्रभुत्व

- उत्तर-आधुनिकता एकमात्र सामाजिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह एक 'सांस्कृतिक प्रभुत्व' है

जेम्सन यह स्वीकार करते हैं कि उत्तर-आधुनिकता एकमात्र सामाजिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह एक 'सांस्कृतिक प्रभुत्व' (Cultural Dominance) के रूप में कार्य करती है।

यह प्रभुत्व हमारे जीवित अनुभवों और बौद्धिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है।

हालाँकि, उनके समय में कला, साहित्य और सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं के कई हिस्से अभी भी पारंपरिक या आधुनिकतावादी हैं, लेकिन उत्तर-आधुनिकता की पकड़ इतनी मजबूत है कि इससे पूरी तरह बाहर रहना कठिन है।

उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव

उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव को समझने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है

- सूचना और वस्तुओं की तरलता – सूचना का आदान-प्रदान अधिक मुक्त और व्यापक हो गया है।
- सीमाओं का लोप – परंपरागत ज्ञान की श्रेणियाँ अब एक-दूसरे से अलग नहीं रहीं, बल्कि उनके बीच अंतःसंवाद हो रहा है।
- उत्तर-आधुनिकता की आलोचना – यह न केवल एक नई सांस्कृतिक प्रवृत्ति है, बल्कि आधुनिकता की सीमाओं और पूँजीवाद के प्रभाव की आलोचना भी करती है।

उत्तर-आधुनिकता के उदाहरण

जेम्सन अपनी पुस्तक के अंत में उन सांस्कृतिक उत्पादों का विश्लेषण करते हैं जो उत्तर-आधुनिक सोच को प्रतिबिंबित करते हैं। साहित्य और कला में उत्तर-आधुनिकता के तत्व निम्नलिखित रूपों में प्रकट होते हैं:

1. आत्म-संदर्भ (Self-Referentiality)
2. विखंडन (Fragmentation)
3. बहुलवादी दृष्टिकोण (Multiplicity of Perspectives)
4. हाइपर-रियलिटी (Hyperreality)

जेम्सन की दृष्टि में, उत्तर-आधुनिकता केवल एक साहित्यिक या कलात्मक प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि यह समकालीन जीवन की एक अनिवार्य वास्तविकता बन चुकी है। इसने परंपरागत संरचनाओं को तोड़कर नए संवादों के द्वार खोले हैं। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आधुनिक विश्व की बौद्धिक और सांस्कृतिक

प्रकृति को समझने में मदद करता है।

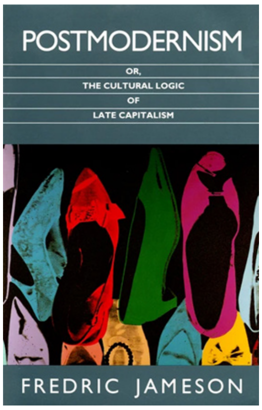

फ्रेडरिक जेम्सन और उत्तर आधुनिकता का सांस्कृतिक तर्क

1991 में प्रकाशित अपनी पुस्तक पोस्टमॉडर्निज्म, या लेट कैपिटलिज्म के सांस्कृतिक तर्क में फ्रेडरिक जेम्सन ने उत्तर आधुनिकता को लेट कैपिटलिज्म (विलंबित पूँजीवाद) से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रभुत्व के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका तात्पर्य यह नहीं है कि उत्तर आधुनिकता ही कला या संस्कृति का एकमात्र रूप है, बल्कि यह कि यह सांस्कृतिक परिदृश्य पर हावी है और प्रत्येक व्यक्ति कम से कम इसके प्रभाव को अवश्य महसूस करता है। जेम्सन इस अवधारणा का उपयोग यह स्पष्ट करने के लिए करते हैं कि समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना किस प्रकार उसकी संस्कृति में परिलक्षित होती है।

उत्तर आधुनिकता और ऐतिहासिक काल-विभाजन

जेम्सन ने उत्तर आधुनिक संस्कृति की तुलना उच्च आधुनिक संस्कृति से करने के लिए एक काल-विभाजन विधि का उपयोग किया। इस विधि से वह यह दर्शाते हैं कि संस्कृति सामाजिक-अर्थशास्त्र से कैसे जुड़ी होती है। उन्होंने निम्नलिखित कालखंडों का विश्लेषण किया:

- 19वीं शताब्दी का मध्य काल – यह औद्योगिक क्रांति के दौरान भाप इंजन के उत्पादन से जुड़ा था और इस युग की सांस्कृतिक विशेषता यथार्थवाद थी।
- 1890 के दशक का अंत से 1940 के दशक तक – यह समय बिजली और आंतरिक दहन इंजन के विकास से जुड़ा था और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों की विशेषता रखता था।
- 1940 के दशक से आगे – इस युग की विशेषता परमाणु तकनीक और वैश्विक पूँजीवाद के कारण सीमाओं की निरर्थकता थी, जो उत्तर आधुनिकता के उदय की भूमिका निभाती है।

उत्तर आधुनिकता और 'पेस्टिच'

उत्तर आधुनिकता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में जेम्सन हमें पेस्टिच (Pas-

tiche) की अवधारणा प्रदान करते हैं। पेस्टिच को वह एक 'खाली पैरोडी' (Empty Parody) के रूप में परिभाषित करते हैं, जिसमें कोई वास्तविक गहराई नहीं होती। जेम्सन के अनुसार, जब कलाकार की व्यक्तिपरकता खंडित हो जाती है (जो कि उपरोक्त ऐतिहासिक और सामाजिक बदलावों के कारण होता है), तो उसके पास अतीत की ओर संकेत करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचता। हालाँकि, क्योंकि यह संकेत सच्ची पैरोडी के रूप में नहीं होता, यह केवल अतीत के सौंदर्य रूपों की नकल का एक कोलाज मात्र बनकर रह जाता है, जिसमें कोई नया अर्थ नहीं जोड़ा जाता।

- अतीत की ओर संकेत करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचता

'ऐतिहासिकता का नुकसान' और पॉप इतिहास

जेम्सन के अनुसार, पेस्टिच अतीत के सौंदर्यशास्त्र का एक प्रकार का 'नरभक्षण' (Cannibalization) है, जो ऐतिहासिकता के नुकसान (Loss of Historicity) को जन्म देता है। उत्तर आधुनिक संस्कृति अतीत को केवल सतही रूप में प्रस्तुत करती है, जिससे वास्तविक ऐतिहासिक समझ खो जाती है। इस संदर्भ में, जेम्सन 'पॉप इतिहास' (Pop History) शब्द का उपयोग करते हैं, जिसमें अतीत को केवल लोकप्रिय संस्कृति द्वारा निर्मित चमकदार छवियों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

- उत्तर आधुनिक संस्कृति अतीत को केवल सतही रूप में प्रस्तुत करती ह

इस तर्क को प्रमाणित करने के लिए, जेम्सन हॉलीवुड की कुछ 'पुरानी यादों वाली फिल्मों' (Nostalgia Films) का विश्लेषण करते हैं। वह दर्शाते हैं कि भले ही ये फिल्में ऐतिहासिक युगों को चित्रित करने का दावा करती हैं, वास्तव में वे केवल अतीत की हमारी रूढ़िबद्ध समझ का उपयोग करती हैं। इस प्रकार, ये फिल्में केवल उपभोक्तावादी संस्कृति के अनुरूप अतीत की छवि प्रस्तुत करती हैं, जिससे दर्शकों को एक विकृत ऐतिहासिक दृष्टिकोण प्राप्त होता है।

- फिल्में केवल उपभोक्तावादी संस्कृति के अनुरूप अतीत की छवि प्रस्तुत करती हैं

फ्रेडरिक जेम्सन का उत्तर आधुनिकता संबंधी सिद्धांत यह दर्शाता है कि आधुनिक पूँजीवादी समाज में सांस्कृतिक उत्पादन किस प्रकार आर्थिक संरचनाओं से प्रभावित होता है। उनका तर्क है कि उत्तर आधुनिकता केवल एक सांस्कृतिक शैली नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करती है। पेस्टिच, ऐतिहासिकता का नुकसान और पॉप इतिहास जैसी अवधारणाएँ जेम्सन के सिद्धांत के प्रमुख पहलू हैं, जो दर्शाते हैं कि उत्तर आधुनिक संस्कृति किस प्रकार अतीत को वर्तमान की उपभोगशील आवश्यकताओं के अनुरूप ढालती है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

लेट कैपिटलिज़्म उस उन्नत पूँजीवादी विकास चरण को संदर्भित करता है, जो सोलहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के बीच उभरा। इसकी विशेषताएँ थीं: कृषि का व्यावसायीकरण, निजी स्वामित्व की स्थापना और बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन का विस्तार। फ्रेडरिक जेम्सन का तर्क है कि उत्तर-आधुनिक युग न तो पूरी तरह से आधुनिकता से भिन्न है और न ही उसकी सहज निरंतरता है। हालाँकि, उनके सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर की गई

है कि यह संस्कृति को अत्यधिक नियतात्मक दृष्टिकोण से देखता है, जहाँ इसे केवल आर्थिक संरचनाओं का प्रतिबिंब माना जाता है। इसके अतिरिक्त, यह उत्तर-आधुनिक सौंदर्यशास्त्र की आलोचनात्मक क्षमता को संभावित रूप से खारिज करता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. वृद्ध पूँजीवाद की अवधारणा क्या है
2. जेमेसन के विचारों पर प्रकाश डालिए
3. फ्रेड्रिक जेमेसन के पूँजीवाद की पुनर्व्याख्या पर प्रकाश डालिए।
4. जेमेसन के विचारों से आप किस हद तक सहमत हैं।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/xleI9EJ9RSo?si=OB3eMs0tRdOhU5iw
- https://youtu.be/O7zZPqar34w?si=Kkrb7S7R9YZ6wvZW

इकाई 7

एडवर्ड सईद-प्राच्यवाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- प्राच्यवादी अवधारणा का उद्भव एवं विकास से अवगत होता है
- पूरब की दृष्टि में प्राच्यवाद को देखता है
- प्राच्यवाद की आधारभूत अवधारणा से परिचय प्राप्त करता है
- प्राची और प्रतीची के अर्थ को समझता है

Background / पृष्ठभूमि

'प्राची' अथवा 'पूर्वी', 'प्रतीची' अथवा 'पश्चिमी'—भौगोलिक दृष्टि से यदि पूरी पृथ्वी को पूर्वी एवं पश्चिमी रूप में दो भौगोलिक भागों में बाँटकर उनका पृथक-पृथक आकलन किया जाए, तो हम पाते हैं कि उनके पार्थक्य बोध के मुख्य आधार हैं—उनकी संस्कृति, साहित्य, कलाएँ, जीवन शैली आदि। प्राची के अध्ययन को प्राच्यवाद कहा जाता है और जब इसे एक सिद्धांत या अवधारणा के रूप में अध्ययन किया जाता है, तो यह भौगोलिक सीमाओं से परे जाकर एक व्यापक आकार ले लेता है। पश्चिमी उपनिवेशवादियों ने पूर्वी संस्कृतियों को विशेष रूप से प्राची के रूप में चिह्नित किया, विशेषतः एशिया एवं अफ्रीका की संस्कृतियों को। उन्होंने जानबूझकर पूर्व को हेय अथवा निम्न दिखाते हुए स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास किया। फलस्वरूप, यूरोपीय संस्कृति एवं पश्चिम के लोगों को अधिक संपन्न एवं श्रेष्ठ माना गया, जबकि पूरब के लोगों की छवि एक अविकसित, जंगली, यायावरी, नट एवं जादू-टोने में विश्वास करने वाली निम्न श्रेणी की संस्कृति के रूप में बनाई गई। प्राच्यवाद के संबंध में एक और अवधारणा यह भी है कि जब उपनिवेशवादियों ने प्राच्यवाद के नाम पर पूरब का नकारात्मक चित्रण प्रारंभ किया, तो पूरब के लोगों ने आत्ममंथन और पुनरवलोकन शुरू किया। इसका स्पष्ट उदाहरण रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना और भारतीय शास्त्रों एवं भारत अध्ययन की शुरुआत से मिलता है। सुषुप्त भारतीय पुनःजागृत हुए और आत्म-गौरव बोध के कारण भारतीय प्राच्यवाद को पुनर्जीवित किया। यह राष्ट्रवादी सोच के उभार का परिणाम था, जिसमें राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद जैसे विद्वानों की अग्रणी भूमिका रही।

Keywords / मुख्य बिन्दु

प्राची, प्रतीची, प्राच्यवाद, उपनिवेशवाद, विस्थापित, ओरिएंटलिज़्म, आत्ममंथन, पुनरवलोकन

Discussion / चर्चा

2.7 उत्तर-औपनिवेशिक सैद्धांतिक आलोचक एडवर्ड सईद

- फलस्तीनी विचारक

उत्तर-औपनिवेशिक सैद्धांतिक आलोचक एडवर्ड सईद एक प्रख्यात फलस्तीनी विचारक थे। वे पिछले चार दशकों से पश्चिमी दुनिया में विकसित साहित्य और संस्कृतियों के सिद्धांतों के प्रखर आलोचक रहे हैं। उनका आरंभिक जीवन जेरूसलम, मिस्र और लेबनन में बीता। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, जब इज़राइल से फलस्तीनियों को जबरन खदेड़ा गया, तो उनका परिवार भी विस्थापित होकर लेबनन में बसने को विवश हुआ।

- 1967 के अरब - इज़राइल युद्ध ने उन्हें आकृष्ट किया

1951 में एडवर्ड सईद उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गए और 1963 से वहीं अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। 1967 के अरब-इज़राइल युद्ध ने उन्हें अरब जगत और फलस्तीनी संघर्ष की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया। इसके बाद, वे आजीवन फलस्तीनी मुक्ति संघर्ष से एक बुद्धिजीवी के रूप में जुड़े रहे। अपने देश और लोगों से विस्थापित होकर अमेरिका जैसी महाशक्ति के केंद्र में बसने के कारण उन्होंने देशांतरण और विस्थापन के गहरे दंश को अनुभव किया।

- सईद, मिशेल फूको के शिष्य थे

सईद, मिशेल फूको के शिष्य थे और उनके विचार विमर्श-सिद्धांत के समकक्ष माने जाते हैं। उनकी प्रमुख कृति ओरिएंटलिज़्म (1978) ने पश्चिमी जगत में प्रचलित पूर्वग्रहों और उपनिवेशवाद से प्रेरित धारणाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने साहित्य, संस्कृति और राजनीति के अंतर्संबंधों पर महत्त्वपूर्ण विमर्श प्रस्तुत किया, जिससे उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन के क्षेत्र में एक नई दिशा प्राप्त हुई। एडवर्ड सईद ने बड़ी मात्रा में रचनाएँ प्रकाशित की—

- Beginings (1975)
- Orientalism (1978)
- The Question of Palestine(1979)
- Covering Islam (1981)
- In the shadow of the West, The Arabs (1982)
- The World, the Text and the Critic (1983)
- Culture and Imperialism (1993)
- Representations of the Intellectual (1994)

- Orientalism and after word (1995)
- Out of place (1999)

Edward Said

- ओरिएंटलिज़्म नए किस्म का सांस्कृतिक रूपक है

एडवर्ड सईद का सबसे बड़ा काम ओरिएंटलिज़्म है। उनका मानना है कि पूरब की परिकल्पना एक निष्क्रीय प्रक्रिया थी जिसे बाद में पश्चिमी विमर्श ने बनाया। पूरब कहीं नहीं है। पश्चिम द्वारा निर्मित ओरिएंटलिज़्म नए किस्म का सांस्कृतिक रूपक है। यह अधीनता का रूपक है। अपनी विमर्शगत ताकत से सईद अमेरिकावाद की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति को विमर्श सिद्धांत से जोड़ते हैं।

2.7.1 ओरिएंटलिज़्म क्या है?

- ओरिएंटलिस्ट रचनाएँ एशियाई संस्कृतियों का निरूपण पश्चिमी दृष्टिकोण से करने की प्रवृत्ति रखती हैं

- मध्य पूर्व के लोगों को कमज़ोर, बर्बर और तर्कहीन के रूप में प्रस्तुत किया गया है

ओरिएंटलिज़्म (प्राच्यवाद) एशियाई देशों तथा पूर्वी समाजों को देखने और विश्लेषित करने का एक विशेष दृष्टिकोण है, जिसे मुख्यतः पश्चिमी लेखकों, कलाकारों और विचारकों ने अपनाया है। ओरिएंटलिस्ट दृष्टिकोण के अंतर्गत यह धारणा निहित रहती है कि एशियाई समाजों को अपनी प्रगति और आधुनिकीकरण के लिए पश्चिमी सहायता की आवश्यकता है। संक्षेप में, ओरिएंटलिस्ट रचनाएँ एशियाई संस्कृतियों का निरूपण पश्चिमी दृष्टिकोण से करने की प्रवृत्ति रखती हैं, जिसमें पूर्वी समाजों को हीन और पिछड़ा दिखाया जाता है। प्रसिद्ध साहित्यिक आलोचक एडवर्ड सईद ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति ओरिएंटलिज़्म (1978) में इस प्रवृत्ति का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया। सईद के अनुसार, पश्चिमी लेखकों और कलाकारों ने पूर्वी समाजों को अपने से निम्न और अविकसित रूप में चित्रित किया है। उनकी पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व, कला, नृत्य, सिनेमा, साहित्य तथा अन्य सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में पूर्वी संस्कृतियों को लगातार एक रूढ़िबद्ध, नकारात्मक और हीन दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता रहा था। सईद का तर्क है कि पश्चिमी लेखन में तथाकथित ओरिएंटल लोगों को अक्सर आलसी, संदिग्ध, भोले, रहस्यमय या मिथ्यावादी रूप में चित्रित किया जाता है। विशेषकर मध्य पूर्व के लोगों को कमज़ोर, बर्बर और तर्कहीन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि इसके विपरीत पश्चिमी समाजों को मज़बूत, प्रगतिशील और तर्कसंगत दिखाने का प्रयास किया गया है। यह पश्चिमी प्रभुत्ववादी मानसिकता को पुष्ट करने और उपनिवेशवाद को वैध ठहराने की एक रणनीति रही है।

ओरिएंटलिज़्म केवल एक साहित्यिक अवधारणा न होकर एक राजनीतिक और

वैचारिक उपकरण भी है, जिसका उपयोग पश्चिमी शक्तियों ने अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए किया। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत पूर्वी समाजों की संस्कृति, परंपराएँ और मूल्यों को प्राचीन, स्थिर और अपरिवर्तनशील माना गया, जिससे यह धारणा बनी कि उन्हें उन्नत और विकसित होने के लिए पश्चिमी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। ओरिएंटलिज़्म एक औपनिवेशिक मानसिकता का परिणाम है, जो पश्चिम और पूर्व के मध्य कृत्रिम भेद उत्पन्न करता है। एडवर्ड सईद ने अपने अध्ययन द्वारा इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट किया कि पश्चिमी लेखकों ने पूर्वी समाजों को गलत, भ्रामक और नकारात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उनका विश्लेषण आज भी साहित्य, राजनीति, इतिहास और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विमर्श बना हुआ है।

- ओरिएंटलिज़्म एशियाई देशों को देखने का तरीका है जिसे पश्चिमी लेखकों ने अपनाया है

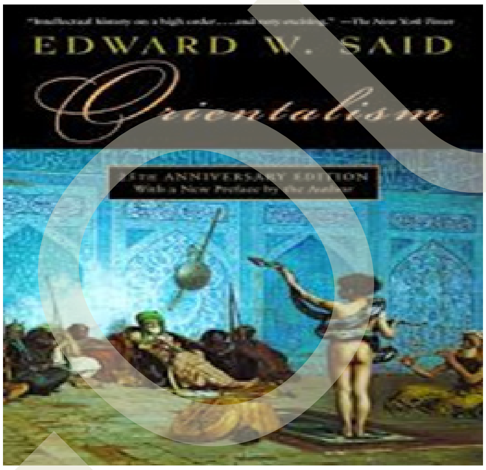

सईद के मुताबिक पश्चिम ने पूर्व को स्थिर और अविकसित बनाया है। शिक्षाविदों ने अपने चयनात्मक और पक्षपाती अवलोकनों के ज़रिए पूर्वी संस्कृति की धारणाओं को वैज्ञानिक निष्कर्षों में बदल दिया। सईद ने तर्क दिया कि यूरोपीय साहित्य ने ओरिएंटलिस्ट धारणाओं को आगे बढ़ाया और उन्हें मज़बूत किया।

- पश्चिम ने पूर्व को स्थिर और अविकसित बनाया है

फ्रांसीसी कलाकार लॉर्ड बायरन ने 1812 में ऑरिएंण्ट्ल स्टडीस पद का प्रयोग किया था। बाद में सईद ने ही एक तरीके से प्राच्यवाद को कुँजी पद के रूप में व्यवस्थित तरीके से पहली बार प्रयोग किया।

2.7.2 प्राच्यवाद की मुख्य मान्यताएँ हैं-

एशियाई देश मूलतः पश्चिमी देशों से हीन माने गए हैं।

एशियाई देशों को पश्चिमी देशों से बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता है और वे ऐसा चाहते भी हैं। शुरुआती दौर में प्राच्यवाद पश्चिमी दुनिया के लेखकों, डिज़ाइनरों और कलाकारों द्वारा पूर्वी देशों की संस्कृतियों का वर्णन और अध्ययन करने के लिए प्रयुक्त एक पद था। पश्चिमी दृष्टिकोण से 'ओरिएंट' (Orient) एशिया का एक कल्पित संस्करण है, जो साम्राज्यवादी विचारों से उत्पन्न हुआ है।

- पश्चिमी दृष्टिकोण से 'ओरिएंट' (Orient) एशिया का एक कल्पित संस्करण है

एडवर्ड सईद और प्राच्यवादप्रसिद्ध विद्वान एडवर्ड सईद के अनुसार, ओरिएंट (पूरब) यूरोप के पूर्व में स्थित देशों के समूह पर थोपा गया एक अर्ध-पौराणिक निर्माण है। उनका मत है कि प्राच्यवाद पूर्वी संस्कृतियों के संबंध में एक काल्पनिक एवं नकारात्मक विचारधारा वाला राजनीतिक ज्ञान है, जो प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक कई चरणों में विकसित हुआ है। यह भौगोलिक विभाजन न होकर एक सांस्कृतिक और राजनीतिक अवधारणा है, जो उत्तरी अफ्रीका, मध्य पूर्व, अरब और एशियाई क्षेत्रों को पिछड़ा मानने की मानसिकता पर आधारित है।

- सांस्कृतिक और राजनीतिक अवधारणा है

सईद इस बात पर विशेष ध्यान देते हैं कि यह विचारधारा मुख्य रूप से दक्षिण-पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (मध्यपूर्व) के संदर्भ में प्रयुक्त होती है। उनके अनुसार, पश्चिम द्वारा निर्मित 'ओरिएंटलिज़्म' (Orientalism) एक नए प्रकार का सांस्कृतिक रूपक है, जो पूरब को अधीनता में रखने का एक साधन है। सईद इस अवधारणा का विरोध करते हैं और इसे पश्चिमी प्रभुत्व स्थापित करने का उपकरण मानते हैं।

सईद की आलोचना और प्रतिरोध का महत्व एडवर्ड सईद स्वयं को व्यवस्था और संप्रदाय-विरोधी मानते हैं। वे स्वतंत्रता और न्याय के पक्षधर हैं, परंतु किसी भी एक विचारधारा को अंतिम सत्य नहीं मानते। यही आलोचनात्मक दृष्टिकोण उन्हें "तटस्थ' स्थान प्रदान करता है। उनका सबसे प्रसिद्ध कार्य 'ओरिएंटलिज़्म' (1978) है, जिसमें उन्होंने यह स्थापित किया कि पूरब की परिकल्पना निष्क्रिय रूप से नहीं बनी, बल्कि इसे पश्चिमी विमर्श ने गढ़ा।

- वे स्वतंत्रता और न्याय के पक्षधर

सईद का मानना था कि 'पूरब' एक वास्तविक भूगोलिक स्थान नहीं, बल्कि पश्चिम द्वारा निर्मित एक बौद्धिक संरचना है, जिसका उद्देश्य औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करना है। इसलिए पूरब के प्रति पश्चिमी दृष्टिकोण को नकारना पर्याप्त नहीं है, बल्कि पूरब से एक प्रतिरोधी विमर्श तैयार करना और उसे पश्चिमी विमर्श से टकराना अधिक महत्वपूर्ण है।

- बौद्धिक संरचना है

इसलिए, लेखक केवल लिखता नहीं है, बल्कि वह किसी न किसी विमर्श का प्रत्युत्तर देता है। यह एक नैतिक स्थिति है, जो पूरे 'ओरिएंटलिज़्म' सिद्धांत में व्याप्त है। सईद के अनुसार, पूर्व और पश्चिम के संबंध को केवल सत्ता, विचारधारा और प्रभाव के संदर्भ में समझना आवश्यक है। इससे एक नया आलोचनात्मक दृष्टिकोण उभरता है, जो औपनिवेशिक मानसिकता को चुनौती देता है और पूरब के अपने स्वतंत्र विमर्श को स्थापित करने की दिशा में कार्य करता है।

- एक नया आलोचनात्मक दृष्टि कोण उभरता ह

अपनी पुस्तक में सईद ने तथाकथित ओरिएंटल लोग के बारे में हानीकारक और कभी-कभी विरोधाभासी रूढ़िवादिता का उल्लेख किया है, जिन्हें आलसी, संदिग्ध, भोले, रहस्यमय या झूठ बोलने वाले के रूप में वर्णित किया गया है। मध्य पूर्व के लोगों को अक्सर कमज़ोर, बर्बर और तर्कहीन के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रमोद.के.नायर आरियन्टलिज़्म की व्याख्या यों करते हैं –"Orientalism is a style of thinking, a form of representation that created opinions, dear and images of the Non-European culture in radicalized ways so that (i) the East was always contrasted negatively with Europe and (ii) it justified the colonial presence in the East."

- सईद की आलोचनात्मक रणनीति उत्तर-संरचनावाद से मेल खाती है

सईद की आलोचनात्मक रणनीति उत्तर-संरचनावाद से मेल खाती है और वहाँ से आती है। सईद का मानना है कि प्रमुख वर्चस्व के विमर्शों में अत्याचारित लोगों के विमर्श नहीं होते, उन्हें बाहर कर दिया जाता है। सबाल्टर्न सैध्दान्तिकी यही मानती है। विकेन्द्रण का उत्तर-आधुनिकतावाद यहाँ से शुरु होता है।

- ओरिएंटलिज़्म ने बौद्धिक जगत में व्यापक बहस और विचार-मंथन को जन्म दिया

यह पाश्चात्य देशों की एक सोची-समझी साजिश रही है कि वे 'पूरब' अथवा 'ओरिएंट' को हमेशा जंगली, असभ्य और निम्नतर मानते रहें। एडवर्ड सईद का मानना है कि इस भेदभावपूर्ण राजनीति का उद्देश्य सार्वभौमिक सहनशीलता को बढ़ावा देना नहीं, बल्कि पूर्वी समाजों को दबाए रखना है। यह स्थिति असम्भव तो है, किंतु आकर्षक अवश्य लगती है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ओरिएंटलिज़्म ने बौद्धिक जगत में व्यापक बहस और विचार-मंथन को जन्म दिया।

- पश्चिम ने कूटनीति और धूर्तता से प्राच्य विद्याओं के ज्ञान पर एकाधिकार स्थापित कर लिया

एडवर्ड सईद के विचारों पर मिशेल फूको का गहरा प्रभाव था और वे स्वयं फूको के अनुयायी थे। सईद के अनुसार, पश्चिम ने 'ओरिएंट' को 'अन्य' (Other) मानते हुए स्वयं को उससे श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया और हर क्षेत्र में उसका दमन किया। पश्चिम ने कूटनीति और धूर्तता से प्राच्य विद्याओं के ज्ञान पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। हिन्दी के प्रमुख उत्तर-आधुनिकतावादी विचारक कृष्णदत्त पालीवाल का मानना है कि, 'दुःख की बात यह है कि एडवर्ड सईद ने अपनी पुस्तक ओरिएंटलिज़्म में भारतीय संस्कृति के संदर्भों को अपेक्षाकृत कम स्थान दिया है। उनका 'ओरिएंट' मुख्यतः फिलिस्तीनी और अरब देशों तक सीमित लगता है।'

सईद की पुस्तक ओरिएंटलिज़्म ने पश्चिमी प्राच्यविदों की मान्यताओं को कठोर चुनौती दी और यह स्थापित किया कि यूरोप की दृष्टि पूरब के प्रति पूर्वग्रह से ग्रसित और आघातकारी रही है। वास्तव में, पश्चिम लंबे समय से पूरब के ज्ञान का दोहन करता रहा है और उसे भीतर से खोखला करने का प्रयास करता रहा है।

- अतीत के ग्रंथों या पाठों का अध्ययन केवल एकांगी दृष्टि से नहीं किया जा सकता

अपनी अन्य महत्वपूर्ण कृति Culture and Imperialism में सईद ने यह प्रतिपादित किया कि अतीत के ग्रंथों या पाठों का अध्ययन केवल एकांगी दृष्टि से नहीं किया जा सकता। इन ग्रंथों के 'कुपाठ' (Non-Textual Readings) में दबे हुए अर्थों को उभारना आवश्यक है, जिससे पश्चिमी साम्राज्यवाद और नव-साम्राज्यवाद की बर्बरता को उजागर किया जा सके। उनका यह दृष्टिकोण उत्तर-आधुनिक विमर्श के अंतर्गत 'वर्चस्व' और 'प्रतिरोध' की प्रक्रिया को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाता है।

इस प्रकार, एडवर्ड सईद की आलोचना न केवल पश्चिमी बौद्धिक जगत में हलचल मचाने वाली सिद्ध हुई, बल्कि उसने उपनिवेशवाद, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और प्राच्य

अध्ययन की परंपराओं को भी एक नए दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित किया।

2.7.3 पूरब की दृष्टि में प्राच्यवाद

वीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में ही पश्चिमी प्राच्यवादी दृष्टिकोण के प्रभाव के विरुद्ध पूरब की संस्कृतियों में एक तीव्र प्रतिक्रिया उभरने लगी। यह प्रतिक्रिया दो रूपों में प्रकट हुई—

- प्रतीच्यवाद

- ▶ पश्चिमी संस्कृतियों की आलोचना – विशेष रूप से संपूर्ण यूरोप की कमियों और नकारात्मक पहलुओं की खोज प्रारंभ हुई, जिसे प्रतीच्यवाद (Occidentalism) का नाम दिया गया।
- ▶ आत्मावलोकन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान – पश्चिमी प्राच्यविदों के विचारों ने पूरब के लोगों और विद्वानों को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित किया। इसके परिणामस्वरूप, उन्होंने अपनी संस्कृतियों की वास्तविकता को समझा और उसे आत्मगौरव के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

2.7.4 प्राची का प्रतीची द्वारा निषेधात्मक चित्रण

- पश्चिमी लेखन पूर्वा देशों का नकारात्मक चित्रण किया

यह एक वास्तविकता है कि पश्चिमी प्राच्यविदों ने पूर्व की छवि को उसकी सांस्कृतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक अवधारणाओं से काटकर तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने की साजिश रची है। उन्होंने पूर्व को उसके मूल संदर्भों से अलग कर उसे गलत रूप में पेश किया है। पश्चिमी लेखन, साहित्यिक कृतियों और फिल्मों में पूर्वी देशों का चित्रण अक्सर नकारात्मक रूप में किया जाता है—सपेरों का देश, खुले में शौच करने वाला समाज, घूंघट में रहने वाली महिलाएँ और अंधविश्वासों से भरे समुदाय के रूप में। लेकिन यह चित्रण पूर्वी देशों की संपूर्ण सच्चाई का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

- पश्चिम ने हमारे ज्ञान का दोहन किया

पश्चिमी प्राच्यविद पूर्व को पिछड़े, नग्न, स्त्रैण और वीभत्स रूपों में चित्रित करते हैं। वास्तव में, प्राच्यवाद पश्चिम द्वारा पूर्व को हीन, स्थिर और विकृत संस्कृतियों के रूप में प्रस्तुत करने की नकारात्मक बौद्धिक राजनीति का परिणाम है। यह भी सत्य है कि पश्चिम ने हमारे ज्ञान का दोहन किया, हमें भीतर से खोखला किया और हमारी सांस्कृतिक समृद्धि को तबाह करने का प्रयास किया।

इसलिए, Culture and Imperialism पुस्तक में एडवर्ड सईद ने कहा कि औपनिवेशिक ग्रंथों का एकांगी अध्ययन नहीं किया जा सकता। इन ग्रंथों में जो दमित अर्थ छिपे हैं, उन्हें उभारना और जागृत करना आवश्यक है, ताकि वे पश्चिमी साम्राज्यवाद की बर्बरता की वास्तविक कहानी कह सकें।

2.7.5 प्राच्यवाद की आलोचना

- ▶ प्राच्यवाद की मानसिकता उपनिवेशवाद से पैदा हुई थी।

- प्राच्यवाद में पश्चिम, ओरिएंट के बारे में पक्षपाती और न्यूनतावादी दृष्टिकोण अपनाता है।
- प्राच्यवाद में पश्चिम ओरिएंट के लिए बोलता है।
- प्राच्यवाद में यूरोपीय साम्राज्यवाद और वर्चस्व को सही ठहराने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को और विकृत किया गया है।
- प्राच्यवाद में पूर्व की संस्कृतियों का मूल्याकन पाश्चात्य मानदंडों पर किया जाता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर-आधुनिक युग में साहित्य और संस्कृति को नए नजरिए से देखा जा रहा है। समकालीन साहित्य अब एकरूप नहीं रहा, बल्कि अलग-अलग संस्कृतियों और देशों के अनुसार विचारों में भिन्नता आ गई है। विकसित देशों के विचारकों की बातों को अब तीसरी दुनिया के लेखक आँख मूँदकर नहीं मानते। विचारधाराओं की पुनर्व्याख्या हो रही है और विविधता को महत्व दिया जा रहा है। कई विद्वानों का मानना है कि एडवर्ड सईद के जीवन के अनुभवों ने उन्हें ओरिएंटलिज़्म लिखने में एक अनोखा दृष्टिकोण दिया। खुद सईद ने भी 2003 की प्रस्तावना में स्वीकार किया कि उनका अध्ययन उनके उपनिवेशी अनुभवों से प्रभावित था। उनके काम ने उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन में अहम योगदान दिया, जिससे शिक्षा जगत में बदलाव आया और पाठ्यक्रम में हाशिए पर पड़ी संस्कृतियों को जगह मिली।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. ओरिएंटलिज़्म से क्या तात्पर्य है।
2. प्राच्यवाद अथवा ओरिएंटलिज़्म की मुख्य मान्यताएँ क्या-क्या हैं?
3. एडवर्ड सईद के विचारों ने उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन की नींव डाली, क्या आप इससे सहमत हैं?
4. एडवर्ड सईद के प्राच्यवाद ने किस प्रकार पूर्वी राज्यों में पोस्ट कोलोनियल स्टडीस की नींव डाली?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/dc-5o1CJigk?si=Tq0HjksYxe-Ykj_E
- https://youtu.be/LYJ6cL1M_U0?si=J87h_lsCLtlyUcdz
- https://youtu.be/XtGxw-Nv7o8?si=cOD9eGsAIP_I1tMd
- https://youtu.be/F5rIdc-rhhk?si=MaVy6cRg-xeK3mRJ

इकाई 8

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक-कैन दि सबाल्टर्न स्पीक

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर औपनिवेशिक युग के संदर्भ में सबाल्टर्न पद को समझता है
- गायत्री स्पीवॉक का महत्वपूर्ण लेख कैन द सबाल्टर्न स्पीक के सही अर्थ को जानता है
- हाशिए पर पड़े समूहों पर उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के प्रभाव से अवगत होता है
- उत्तर औपनिवेशिक समाजों पर पश्चिमी संस्कृति का आधिपत्य का प्रभाव समझता है

Background / पृष्ठभूमि

उपनिवेश और उपनिवेशित के बीच सदैव एक जटिल राजनीतिक संबंध रहा है। उपनिवेशक (coloniser) अक्सर उपनिवेश (colony) की भाषा और संस्कृति का नियंत्रण अपने हाथ में लेने का प्रयास करता है। उसने अपनी रचनाओं में उपनिवेश की सभ्यता और संस्कृति को जिस रूप में चित्रित किया, वह कई मायनों में काल्पनिक और पक्षपाती सिद्ध हुआ। इस कारण उपनिवेश के बारे में एक विकृत धारणा धीरे-धीरे विकसित होने लगी।

गायत्री स्पिवाक ने इस पश्चिम-केंद्रित दृष्टिकोण को चुनौती दी। उन्होंने अपनी 'सबाल्टर्न' अवधारणा के माध्यम से हाशिए पर पड़े लोगों की आवाज़ों को मुख्यधारा के विमर्श में शामिल करने की कठिनाई को उजागर किया। उनका कार्य पश्चिमी दृष्टिकोणों को चुनौती देकर पूर्वी समाजों के विविध अनुभवों को विमर्श में स्थान देने की वकालत करना था। विशेष रूप से, उन्होंने हाशिए पर पड़े समूहों और महिलाओं की आवाज़ों पर ध्यान केंद्रित किया, जिन्हें औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में अक्सर दबा दिया जाता है या मुख्यधारा के विमर्श से बाहर रखा जाता है।

स्पिवाक का कार्य लिंग, वर्ग, जाति और नस्ल के अंतर्संबंधों की पड़ताल करना है और यह दिखाना है कि उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भों में ये कारक किस प्रकार उत्पीड़न को बढ़ावा देते हैं। उनकी रचनाओं के अनुवाद और आलोचनात्मक विश्लेषण ने उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में लिंग और सामाजिक न्याय के व्यापक मुद्दों पर ध्यान आकर्षित किया। उनकी प्रमुख अवधारणाएँ, जैसे 'रणनीतिक अनिवार्यता' और 'सबाल्टर्न अध्ययन,' आधुनिक समाज में बौद्धिक विमर्श के आधारभूत विषय बन चुकी हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

पितृसत्तात्मक समाज, सबाल्टर्न, उत्तर-औपनिवेशिक, अधीनता, हाशिएकृत, उपनिवेशवाद

Discussion / चर्चा

2.8 उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन और सबाल्टर्न विमर्श

उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन के अंतर्गत 1980 के दशक में सबाल्टर्न स्टडीज़ एक महत्वपूर्ण बौद्धिक आंदोलन के रूप में उभरा। 'सबाल्टर्न' शब्द दक्षिण एशियाई समाज में अधीनता की सामान्य विशेषता को इंगित करता है, चाहे वह वर्ग, जाति, आयु, लिंग, पद या किसी अन्य माध्यम से प्रकट हो। यह अध्ययन औपनिवेशिक शासक वर्गों और हाशिए पर पड़े दमित समूहों के आपसी संबंधों की गहन पड़ताल करता है।

सबाल्टर्न अध्ययन समूह का उद्देश्य उन समुदायों के इतिहास को उजागर करना था, जो औपनिवेशिक अभिलेखों में उपेक्षित रहे या पूरी तरह से अलिखित रह गए। इसका मुख्य फोकस पूँजीवाद, उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद के अंतर्संबंधों को समझते हुए निम्न वर्ग के संघर्षों को पुनः स्थापित करना और उनके अनुभवों को विमर्श में स्थान देना था।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सबाल्टर्न शब्द ब्रिटिश औपनिवेशिक सेना में अधीनस्थ सैनिकों के लिए प्रयुक्त शब्द से नहीं लिया गया है, बल्कि यह इतालवी मार्क्सवादी विचारक एंटोनियो ग्राम्शी से प्रेरित है, जिन्होंने अपनी जेल नोटबुक्स (Prison Notebooks) में इस शब्द का प्रयोग किया था। ग्राम्शी ने इसे उन सामाजिक समूहों के संदर्भ में प्रयुक्त किया जो प्रभुत्वशाली वर्गों के अधीन थे और जिनकी आवाज़ मुख्यधारा में दबा दी जाती थी।

2.8.1 गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाकः एक महत्वपूर्ण उत्तर-औपनिवेशिक विचारक

2.8.1.1 जीवन परिचय और बौद्धिक यात्रा

गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक का जन्म कोलकत्ता में हुआ था। उन्होंने भारत और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की। वर्तमान में वे कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं और उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन, नारीवादी विमर्श और मार्क्सवादी आलोचना के लिए विख्यात हैं।

स्पिवाक ने 1976 में जाक देरीदा की प्रसिद्ध कृति De la grammatologie का Of Grammatology शीर्षक से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। इस अनुवाद के साथ ही वे विखंडनवाद (Deconstruction) की प्रमुख सिद्धांतकार बन गईं और वैश्विक अकादमिक

जगत में उनका नाम स्थापित हो गया।

2.8.1.2 उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श में योगदानः

स्पिवाक एक ऐसी बौद्धिक हस्ती हैं, जो उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में व्याप्त शोषण और उत्पीड़न को न केवल एक नैतिक समस्या के रूप में देखती हैं, बल्कि इसे बौद्धिक और पद्धतिगत चुनौती के रूप में भी प्रस्तुत करती हैं। वे विशेषाधिकार प्राप्त बुद्धिजीवियों द्वारा अधीनस्थ वर्गों के अनुभवों को समझने या उनके प्रतिनिधित्व का दावा करने की प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करती हैं।

- हाशिए के समुदायों की आवाज़ें अक्सर दबा दी जाती हैं

उनका मानना है कि उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में औपनिवेशिक सत्ता और प्रभुत्व की संरचनाएँ इतनी गहरी हैं कि हाशिए के समुदायों की आवाज़ें अक्सर दबा दी जाती हैं या फिर उनके अनुभवों को प्रभुत्वशाली समूहों के नजरिए से प्रस्तुत किया जाता है।

स्पिवाक के अनुसार, विखंडनवाद केवल एक साहित्यिक पद्धति नहीं है, बल्कि यह औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक संबंधों की पुनर्रचना का एक क्रांतिकारी दर्शन है। उन्होंने मार्क्स, फ्रायड, लाकां, देरीदा और फूको के सिद्धांतों के पुनर्पाठ के साथ-साथ साहित्यिक कृतियों के विश्लेषण के माध्यम से नारीवादी और उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टि कोण को समृद्ध किया है।

सबाल्टर्न अध्ययन और 'क्या सबाल्टर्न बोल सकता है?'

स्पिवाक का सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली निबंध 'क्या सबाल्टर्न बोल सकता है?' (Can the Subaltern Speak?) 1988 में प्रकाशित हुआ। इस लेख ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि दिलाई।

इस निबंध में स्पिवाक तर्क देती हैं कि सबाल्टर्न समूहों की आवाज़ें न केवल औपनिवेशिक सत्ता द्वारा दबाई गईं, बल्कि उत्तर-औपनिवेशिक बुद्धिजीवी भी उनकी वास्तविक आवाज़ों को समझने या प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं। उन्होंने यह दिखाया कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ इस बात की कोई गारंटी नहीं देतीं कि सबाल्टर्न समुदायों के हितों को पहचान मिलेगी या उनकी आवाज़ सुनी जाएगी।

- 1988 में प्रकाशित लेख Can the subaltern speak? ने गायत्री स्पीवॉक को काफी प्रसिद्धी दिलाई।

शुरुआत में यह निबंध एक व्याख्यान के रूप में प्रस्तुत किया गया था, लेकिन बाद में इसने लिंग और यौन अंतर के विमर्श को विकसित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्पिवाक विशेष रूप से महिलाओं के अनुभवों को केंद्र में रखते हुए तर्क करती हैं कि पितृसत्ता और औपनिवेशिक सत्ता के दोहरे उत्पीड़न के कारण दलित एवं दमित महिलाओं की आवाज़ और भी अधिक अदृश्य हो जाती है।

Gayatri Chakravorty Spivak

प्रमोद के नायर लिखते हैं-

'Spivak's influential notion of the subaltern notes the power of both patriarchy and colonialism where the native woman because of her location within these two structures, cannot enunciate and instead is always spoken for by intellectuals - a process Spivak is critical of because, as she argues, it is better to let the woman remain on the margins of the discourse (thus disturbing it) rather than speaking on her behalf and thus consigning her deeper into the silence "

- गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक एक प्रमुख आलोचनात्मक सिद्धांतकार हैं

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक एक प्रमुख आलोचनात्मक सिद्धांतकार हैं, जो उत्तर-उपनिवेशवाद (Postcolonialism) के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए जानी जाती हैं। उनका सिद्धांत उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के प्रभावों की गहन पड़ताल करता है, विशेष रूप से उन सामाजिक समूहों पर जो ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहे हैं।

- स्वतंत्रता के पश्चात भी हाशिएकरण जारी रहा

स्पीवाक की सबाल्टर्न अवधारणा उन वर्गों को संदर्भित करती है जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से उत्पीड़ित और बहिष्कृत रहे हैं, जैसे—महिलाएँ, श्रमिक वर्ग, दलित एवं आदिवासी समुदाय। वे इस तथ्य को रेखांकित करती हैं कि किसान, अछूत और श्रमिक वर्ग लंबे समय तक इतिहास-लेखन की मुख्यधारा से बाहर रहे हैं। यद्यपि भारत ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली, किंतु स्वतंत्रता के पश्चात भी इन वर्गों का हाशिएकरण जारी रहा।

- सबाल्टर्न वर्गों की आवाज़ को मान्यता नहीं दी गई

स्पीवाक यह तर्क प्रस्तुत करती हैं कि स्वतंत्रता के बाद भी हाशिए पर पड़े श्रमिक वर्ग की ऐतिहासिकता को सत्ता और प्रभुत्वशाली सामाजिक वर्गों के हित में नियंत्रित किया गया। उनके अनुसार, सबाल्टर्न वर्गों की आवाज़ को प्रमुख ऐतिहासिक दस्तावेजों और स्रोतों में मान्यता नहीं दी गई। ऐसा कोई सशक्त ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध नहीं है जो इन वर्गों के अनुभवों, जीवन और प्रथाओं को उनके अपने शब्दों में और उनके दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता हो।

स्पीवाक इस ऐतिहासिक मौन को राजनीतिक एजेंडा के रूप में देखती हैं। उनके अनुसार, यदि अधीनस्थ वर्गों की राजनीतिक आवाज़ को पुनः प्राप्त किया जाए, तो

इतिहास को नए सिरे से लिखा जा सकता है। वे सबाल्टर्न की एक उत्तर-मार्क्सवादी परिभाषा प्रस्तुत करती हैं, जो अधिक लचीली है और केवल आर्थिक पहलुओं तक सीमित न होकर, सांस्कृतिक और वैचारिक परिप्रेक्ष्य को भी सम्मिलित करती है।

- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी किसानों एवं मज़दूरों को इतिहास के बाहर रखने को गायत्री एक साजिश मानती हैं।

स्पीवाक का यह सिद्धांत उत्तर-उपनिवेशवादी अध्ययन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह न केवल औपनिवेशिक दमन की पड़ताल करता है, बल्कि स्वतंत्रता के बाद भी जारी सामाजिक असमानताओं की पहचान करता है। उनके विचारों ने समकालीन आलोचना और सांस्कृतिक अध्ययन में एक नया आयाम जोड़ा है।

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक का तर्क है कि पश्चिमी संस्कृति का आधिपत्य केवल औपनिवेशिक शासन तक सीमित नहीं था, बल्कि साम्राज्यों के पतन के बाद भी उत्तर-औपनिवेशिक समाजों को प्रभावित करता रहा। उनका उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांत इस विचार पर केंद्रित है कि औपनिवेशिक शोषण केवल राजनीतिक और आर्थिक नहीं था, बल्कि बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी जारी रहा।

- पश्चिमी बौद्धिक विमर्श सबाल्टर्न को गलत ढंग से प्रस्तुत करता है

स्पीवाक की सबाल्टर्न (Subaltern) की अवधारणा उनके सिद्धांत का केंद्रीय तत्व है। उनका मानना है कि सबाल्टर्न, अर्थात् हाशिए पर पड़े समूहों को, पश्चिमी बौद्धिक विमर्श द्वारा न केवल मौन कर दिया जाता है, बल्कि उन्हें गलत ढंग से प्रस्तुत भी किया जाता है। उनके अनुसार, पश्चिमी विद्वानों का यह दावा कि वे अन्य संस्कृतियों के लोगों की आवाज़ बन सकते हैं, कई समस्याओं को जन्म देता है। उनका प्रश्न यह है कि यदि कोई विद्वान किसी सबाल्टर्न के स्थान पर बोलता भी है, तो क्या वह उसकी वास्तविकता का सही चित्रण कर सकता है?

यदि शब्दकोश के आधार पर देखें, तो सबाल्टर्न शब्द ब्रिटिश सेना में जूनियर रैंकिंग अधिकारी के लिए प्रयुक्त होता था। किंतु स्पीवाक ने इस शब्द को अपने उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श में एक व्यापक बौद्धिक संदर्भ प्रदान किया। उनके सबाल्टर्न की अवधारणा का बौद्धिक स्रोत इतालवी मार्क्सवादी विचारक एंटोनियो ग्राम्शी की प्रिज़न नोटबुक्स से आता है। ग्राम्शी ने सबाल्टर्न शब्द का उपयोग उन असंगठित समूहों और ग्रामीण किसानों के लिए किया था, जिनमें किसी संगठित सामाजिक या राजनीतिक चेतना का अभाव था। इस कारण वे प्रभुत्वशाली वर्गों के शोषण के प्रति प्रतिरोध विकसित करने में असमर्थ थे।

- सबाल्टर्न समुदायों को स्वयं अपनी आवाज़ विकसित करने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

स्पीवाक का सिद्धांत इस विचारधारा को चुनौती देता है कि पश्चिमी विद्वान हाशिए के लोगों की सच्ची आवाज़ बन सकते हैं। उनका ऐतिहासिक व सैद्धांतिक विश्लेषण यह दर्शाता है कि औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भों में सबाल्टर्न समुदायों को स्वयं अपनी आवाज़ विकसित करने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यही कारण है कि उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध Can the Subaltern Speak? में यह प्रश्न उठाया कि क्या सबाल्टर्न स्वयं अपनी आवाज़ में बोल सकता है, या उसकी आवाज़ हमेशा किसी अन्य प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा नियंत्रित की जाएगी?

इस प्रकार, स्पीवाक का सबाल्टर्न अध्ययन केवल एक सैद्धांतिक विमर्श नहीं है, बल्कि यह इतिहास, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान के संदर्भों को पुनर्व्याख्यायित करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास भी है।

गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक दलित (सबाल्टर्न) चिंतन के मूलतत्ववादी (Essentialist) अर्थ को सीधे स्वीकार करने के प्रति सचेत करती हैं। उनका मानना है कि दमित (सबाल्टर्न) की पहचान या स्वभाव स्वाभाविक (Naturally Given) नहीं होता, बल्कि समाज और इतिहास के जरिए निर्मित किया जाता है। इसे सही ढंग से समझने के लिए किसी भी पाठ (Text) का विश्लेषण और विखंडन करना जरूरी है।

- शोषित और अदृश्यप्राय समूहों के दमन का अंत चाहती हैं

स्पीवाक सबसे शोषित और अदृश्यप्राय समूहों के दमन का अंत चाहती हैं। उनके अनुसार, यदि कोई व्यक्ति बोल ही नहीं सकता, तो उसे बोलने योग्य बनाना ही उसके दमन को खत्म करने का एकमात्र तरीका है। लेकिन यह काम पारंपरिक क्रांतिकारी तरीकों से संभव नहीं है। वे मानती हैं कि जो बुद्धिजीवी दमित वर्गों की ओर से बोलने का दावा करते हैं या उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर देने का दिखावा करते हैं, वे भी वास्तव में उनकी आवाज़ को दबाने का ही काम करते हैं।

- स्पीवाक सर्वाधिक शोषित और अदृश्यप्राय समूहों का अन्त चाहती है। उनका मानना है कि जो बोल नहीं सकता, उसका बोलना संभव करना, उसके दमित होने का अंत है।

अन्य उत्तर-संरचनावादी (Post-Structuralist) विचारकों की तरह, स्पीवाक भी उपनिवेशवाद (Colonialism) को सिर्फ एक ऐतिहासिक-राजनीतिक घटना नहीं मानतीं। उनके लिए 'विखंडन' (Deconstruction) एक ऐसा क्रांतिकारी दर्शन है, जो पाठ और पुनर्पाठ (Re-reading) के जरिए औपनिवेशिक मानसिकता को चुनौती देता है।

स्पीवाक का मानना है कि नस्ल, वर्ग, लिंग, शिक्षा, राष्ट्रीयता आदि के आधार पर जिन्हें विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, वे अपनी सुविधाजनक स्थिति के कारण दूसरों की समस्याओं या अलग तरह के ज्ञान को समझने में असफल रहते हैं। यह उनकी एक बड़ी कमी है। अमेरिकी अकादमी में स्पीवाक इस विचार की प्रमुख समर्थक रही हैं कि विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को अपनी सुविधाओं को भूलने या अनदेखा करने की कोशिश करनी चाहिए। साथ ही, उन्हें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि उनकी विशेष स्थिति ने उन्हें कई महत्वपूर्ण ज्ञान से वंचित कर दिया है।

2.8.2 स्पीवाक और स्त्रीवाद

- मार्क्स और फ्रॉयड के विचारों को स्त्रीवादी दृष्टि से दोबारा पढ़ने हैं।

गायत्री स्पीवाक मार्क्स और फ्रॉयड के विचारों को स्त्रीवादी दृष्टि से दोबारा पढ़ने का सुझाव देती हैं। वे यह दिखाती हैं कि विकसित देशों के नारीवाद में तीसरी दुनिया की स्त्रियों के श्रम और उनके शोषण की समस्या को अक्सर नज़रअंदाज़ किया जाता है। उनके अनुसार, तीसरी दुनिया की स्त्री दोहरे शोषण का शिकार होती है—एक ओर पितृसत्ता और दूसरी ओर उपनिवेशवाद। जब पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों की आवाज़ उठाने का दावा करता है, तो वह वास्तव में स्त्रियों के अपने विचार नहीं होते, बल्कि

उन पर थोपी गई धारणाएँ होती हैं। इस दृष्टि से, स्पीवाक मानती हैं कि स्त्री 'दुहरे उपनिवेशीकरण' का शिकार है।

- स्त्रीवाद की पारंपरिक धारणाओं को तोड़ती हैं

औपनिवेशिक काल में अंग्रेज़ों ने भारतीय महिलाओं को लेकर अपने विचार बनाए और प्रचारित किए, जो अक्सर भारतीय महिलाओं की वास्तविक स्थिति को नहीं दर्शाते थे। इस तरह, स्पीवाक अपने स्त्रीवादी अध्ययन में स्त्रीवाद की पारंपरिक धारणाओं को तोड़ते हुए एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

- स्पीवाक की मुख्य चिंता 'प्रतिनिधित्व की राजनीति' से जुड़ी है

स्पीवाक की मुख्य चिंता 'प्रतिनिधित्व की राजनीति' से जुड़ी है। वे पूछती हैं—कौन किसके लिए बोलता है? हाशिए के समुदायों की आवाज़ बनने का दावा करने वाले लोग (जैसे लेखक, पत्रकार, शिक्षाविद) क्या सच में उनकी समस्याओं को पूरी तरह समझ सकते हैं? स्पीवाक यह नहीं कहतीं कि विशेषाधिकार प्राप्त लोग कभी भी दमितों की आवाज़ से नहीं जुड़ सकते, बल्कि वे चेतावनी देती हैं कि जब ये लोग यह दावा करें कि वे पूरी तरह से दमितों की पीड़ा को जानते हैं, तो इस दावे पर सवाल उठाया जाना चाहिए।

इस प्रकार, स्पीवाक नारीवाद और प्रतिनिधित्व के मुद्दों पर एक गहरा पुनर्विचार प्रस्तुत करती हैं, जिससे नारीवादी विमर्श को एक नई दिशा मिलती है।

स्पीवाक अपने स्त्रीवादी अध्ययन में स्त्रीवाद की पारंपरिक धारणाओं को तोड़ते हुए एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

गायत्री स्पीवाक का मुख्य विचार यह है कि पूँजीवादी और पितृसत्तात्मक समाज में हाशिए पर मौजूद और दमित वर्ग का सही प्रतिनिधित्व नहीं होता। अपने लेख 'क्या सबाल्टर्न बोल सकता है?' में वे तर्क देती हैं कि निम्न वर्ग इसलिए अपनी आवाज़ नहीं उठा सकता क्योंकि उसकी भाषा राजनीतिक रूप से प्रभावी नहीं होती। सबाल्टर्न दृष्टिकोण उन लोगों पर केंद्रित है जो समाज में उपेक्षित हैं और इसे अभिजात्य वर्ग के नज़रिए से तुलना की जाती है। स्पीवाक की सबाल्टर्न अवधारणा उन समूहों को संदर्भित करती है जो समाज के हाशिए पर हैं, जैसे महिलाएँ, श्रमिक वर्ग, दलित और आदिवासी। वे मानती हैं कि किसान, अछूत और मज़दूर वर्ग को इतिहास में स्थान नहीं दिया गया। उनका कहना है कि नस्ल, वर्ग, लिंग, शिक्षा, राष्ट्रीयता जैसे कारकों के कारण विशेषाधिकार प्राप्त लोग दूसरों के ज्ञान और अनुभव को समझने में असफल रहते हैं और यही उनकी सबसे बड़ी कमी है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. 'क्या सबाल्टर्न बोल सकता है' लेख का मूल संदेश क्या है।
2. सबाल्टर्न पद से क्या तात्पर्य है।
3. गायत्री स्पीवाक के कारण हाशिएकृत समूह को नई आवाज़ मिली - क्या आप इससे सहमत हैं।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

Web Reference / वेब रेफेरन्स

- https://youtu.be/M7GlWRDx94s?si=ayZyDsyCoep8NcSN
- https://youtu.be/M7GlWRDx94s?si=ayZyDsyCoep8NcSN
- https://youtu.be/M7GlWRDx94s?si=ayZyDsyCoep8NcSN

03

BLOCK

भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद

Block Content

Unit 1 हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़

Unit 2 भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद

Unit 3 उत्तर-आधुनिकतावाद पर आक्षेप

Unit 4 अध्ययन के नवीन विषय-पोस्ट कॉलोनियल स्टडीस, कॉमिक्स स्टडीस, कल्चर स्टडीस, फिल्म स्टडीस, जेंडर स्टडीस, गेय स्टडीस, लेस्बियन स्टडीस

इकाई 1

हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकता के आगमन से अवगत होता है
- हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावाद के आगमन के बारे में परिचित होता है
- उत्तर-औद्योगिक समाज और उत्तर आधुनिक युग का संबंध जानता है
- उत्तर-आधुनिकता और भूमंडलीय अवस्था के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

ऐसा कहा जा रहा है कि आधुनिक युग, जिसमें तर्क, विवेक, मूल्य, सिद्धांत, आदर्श और स्वप्न हुआ करते थे, अब समाप्त हो चुका है। इसकी जगह अब उत्तर-आधुनिक युग ने ले ली है, जहाँ सत्य, न्याय, समता, स्वतंत्रता और समाजवाद जैसे विचार अब अपना अर्थ खो चुके हैं। वैश्विक पूँजीवाद ही आज का परम सत्य बन चुका है। इतिहास, दर्शन और विज्ञान, जो कभी यथार्थ को समझने के साधन थे, अब मिथक कहे जा रहे हैं। जब भारत में विद्वानों के बीच यह धारणा फैली कि आधुनिक युग समाप्त हो चुका है, तो इसे स्वीकारना कठिन था। आखिर, युग बदल जाए और लोगों को पता तक न चले—यह कैसे संभव है? संदेह इसलिए भी गहरा था क्योंकि ये विचार पश्चिम, विशेष रूप से अमेरिका से आ रहे थे। हालाँकि, हाल के वर्षों में कुछ परिवर्तन इतने तीव्र और व्यापक हुए हैं कि सचमुच युग बदलता हुआ प्रतीत होता है। राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर इतने गहरे बदलाव आए हैं कि यह स्वीकार करना कठिन नहीं रहा कि कुछ नया घटित हो रहा है। शोषण, दमन, उत्पीड़न, युद्ध और गुलामी के रूप अवश्य बदले हैं—वे पहले से अधिक सूक्ष्म, सघन, क्रूर और भयावह हो गए हैं। लेकिन जब तक ये पूरी तरह समाप्त नहीं होते, तब तक यह कैसे माना जाए कि युग सचमुच बदल चुका है? उत्तर-आधुनिकतावाद की चर्चा कोई नई बात नहीं है। यह विचारधारा पिछले साठ वर्षों से विकसित हो रही थी, परंतु युगांतरीय परिवर्तन बीते बीस वर्षों में ही क्यों दिखाई देने लगे? यूरोप में 1950-60 के दशक में ही कुछ विशिष्ट उपन्यासों, चित्रों और स्थापत्यकला के लिए 'उत्तर-आधुनिक' विशेषण का प्रयोग होने लगा था। उत्तर-औद्योगिक समाज की अवधारणा भी पहले से ही चर्चा में थी। उदाहरण के लिए, डैनियल बेल की पुस्तक The Coming of Post-Industrial Society 1974 में प्रकाशित हुई थी। लेकिन उस समय न केवल भारत में, बल्कि पश्चिमी देशों में भी यह विश्वास करना कठिन था कि आधुनिकता समाप्त हो चुकी है और हम एक नए युग में प्रवेश कर चुके हैं। आज भी अधिकांश अर्थशास्त्री और

समाजशास्त्री मानते हैं कि उत्तर-आधुनिकता, यदि कुछ है भी, तो वह आधुनिकता का ही विस्तार है—पूँजीवाद का अगला और शायद अंतिम चरण

Keywords / मुख्य बिन्दु

संचार प्रौद्योगिकी, अस्तित्ववाद, अपसंस्कृति, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, पूँजीवाद

Discussion / चर्चा

3.1 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी: उत्तर-आधुनिकतावाद का मूल

- कंप्यूटर और इंटरनेट सेवाएँ व्यापक रूप से उपलब्ध हो रही हैं

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी उत्तर-आधुनिकतावाद का मूल आधार है और भारत में इसका विकास तीव्र गति से हो रहा है। कंप्यूटर आज एक अत्यंत लोकप्रिय उपकरण बन चुका है, तथा इंटरनेट सेवाएँ व्यापक रूप से उपलब्ध हो रही हैं। यद्यपि सूचना प्रौद्योगिकी का प्रसार असमान रूप से हुआ है और शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बीच इसका प्रभाव भिन्न है, फिर भी यह स्पष्ट संकेत देता है कि भारत उत्तर-आधुनिक समाज की ओर अग्रसर है।

- उत्तर-आधुनिकता का दूसरा प्रमुख संकेत उपभोक्तावाद की तीव्र वृद्धि

भारत में उत्तर-आधुनिकता का दूसरा प्रमुख संकेत उपभोक्तावाद की तीव्र वृद्धि है। भारतीय समाज तेज़ी से एक उपभोक्ता समाज में परिवर्तित हो रहा है, जिससे लोगों की जीवनशैली एवं अवकाश के समय की गतिविधियों में व्यापक बदलाव परिलक्षित हो रहा है। यह परिवर्तन केवल महानगरों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि छोटे शहरों और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

- 1990 के बाद, सरकार 'एलपीजी' सुधार को प्रोत्साहित किया

उत्तर-आधुनिकता का एक अन्य महत्वपूर्ण संकेत भारतीय समाज में लोगों की बढ़ती आकांक्षाएँ हैं। 1990 के बाद, जब सरकार ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी सुधार) को प्रोत्साहित किया, तब लोगों में आर्थिक विकास को लेकर नई उम्मीदें जागृत हुईं। भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने से एक नया सामाजिक-आर्थिक वर्ग उभरा, जिसने वैश्विक बाज़ार से जुड़ने की संभावनाओं को तलाशा। यह प्रवृत्ति भारत के उत्तर-आधुनिक समाज की ओर संक्रमण को स्पष्ट रूप से इंगित करती है।

उत्तर-आधुनिकता और भारत की चुनौतियाँ

भारत का उत्तर-आधुनिक समाज में परिवर्तन कई जटिल चुनौतियों को जन्म दे रहा है। भारतीय नागरिक स्वयं को दो विरोधाभासी परिस्थितियों के मध्य पाते हैं—एक ओर वे अपनी स्थानीय एवं राष्ट्रीय पहचान से जुड़े रहना चाहते हैं, तो दूसरी ओर वे वैश्विक आर्थिक अवसरों और भौतिक लाभ की ओर भी आकर्षित हो रहे हैं।

यह द्वंद्व आधुनिक वैश्विकरण की उस प्रक्रिया का परिणाम है, जिसने व्यक्ति को अभूतपूर्व भौतिक समृद्धि के अवसर उपलब्ध कराए हैं, किंतु साथ ही उसे सांस्कृतिक अस्मिता और पहचान के संकट में भी डाल दिया है। एक ओर वैश्विक तकनीकी प्रगति व्यक्ति को उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर ले जा रही है, तो दूसरी ओर स्थानीय एवं राष्ट्रवादी विचारधाराएँ वैश्वीकरण की शक्तियों के विरुद्ध प्रतिरोध उत्पन्न कर रही हैं। परिणामस्वरूप, भारतीय समाज उत्तर-आधुनिकता द्वारा उत्पन्न इन द्वंद्वात्मक शक्तियों के जटिल जाल में उलझा हुआ है।

- व्यक्ति को अभूतपूर्व भौतिक समृद्धि के अवसर उपलब्ध कराए

भारत का उत्तर-आधुनिकतावादी बदलाव बहुआयामी है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, उपभोक्तावाद और बढ़ती आर्थिक आकांक्षाएँ इस प्रक्रिया को गति प्रदान कर रही हैं। किंतु यह परिवर्तन केवल आर्थिक या तकनीकी स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचनाओं पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ रहा है। भारतीय समाज को इन बदलावों के साथ संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है, ताकि वह अपनी सांस्कृतिक जड़ों को बनाए रखते हुए वैश्विक अवसरों का भी लाभ उठा सके।

- भारत में उत्तर-आधुनिकता का संकेत यह है कि देश तेज़ी से उपभोक्ता समाज बनता जा रहा है।

हिन्दी में उत्तर-आधुनिकतावाद की चर्चा कभी मुख्यधारा में स्थान पाती है तो कभी हाशिए पर चली जाती है। किन्तु यह तथ्य स्पष्ट है कि हिन्दी आलोचकों और चिन्तकों के मध्य अभी तक उत्तर-आधुनिकतावाद का एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित दार्शनिक आधार पूर्णतः विकसित नहीं हो पाया है। यह कोई नवीन परिघटना नहीं है। हिन्दी आलोचना में प्रायः किसी भी नवीन सैद्धान्तिक प्रवृत्ति को तभी अपनाया गया है जब उसकी चर्चा पश्चिम में लगभग समाप्ति की ओर होती है।

- हिन्दी आलोचकों और चिन्तकों के बीच सुव्यवस्थित, सुसंगठित दार्शनिक आधार नहीं

उत्तर-आधुनिकता को लेकर हिन्दी आलोचना जगत में अनेक संशय व्याप्त हैं, जो कुछ अंशों में उसी प्रकार के हैं, जैसे कभी आधुनिकता को लेकर थे। यह संशय केवल सैद्धान्तिक धरातल तक सीमित नहीं हैं, बल्कि आलोचनात्मक पद्धतियों एवं विचारधारात्मक दृष्टिकोणों को भी प्रभावित करते हैं। ऐसे में, यह आवश्यक है कि उत्तर-आधुनिकता को केवल पश्चिमी बौद्धिक प्रवृत्ति के रूप में न देख कर, भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसके प्रभावों, उपयोगिता एवं सीमाओं का भी गंभीर अनुशीलन किया जाए।

- उत्तर-आधुनिकता को लेकर हिन्दी आलोचना जगत में अनेक संशय व्याप्त

उत्तर-आधुनिकतावाद के आगमन की तुलना अस्तित्ववाद के आगमन से की जा सकती है। सातवें दशक में जिस प्रकार अनेक लोग स्वयं को नवीन और दूसरों से अलग दिखाने के लिए अस्तित्ववादी शब्दावली में लिखने और बोलने लगे थे, ठीक उसी प्रकार आज बहुत से लोग उत्तर-आधुनिक शब्दावली में लिखने और बोलने लगे हैं।

जिस प्रकार अस्तित्ववाद के संदर्भ में सार्त्त, कामू, काफ्का आदि विचारकों के नाम प्रमुख रूप से लिए जाते थे, उसी तरह उत्तर-आधुनिकतावाद के संदर्भ में देरीदा, फूको, ल्योतार आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। अस्तित्ववाद के समय अंग्रेज़ी भाषा में संबंधित पुस्तकों की बाढ़ आ गई थी, उसी तरह आज उत्तर-आधुनिकतावाद पर अंग्रेज़ी में विपुल मात्रा में साहित्य उपलब्ध है।

- उत्तर-आधुनिकतावाद के संदर्भ में देरीदा, फूको, ल्योतार आदि के नाम प्रमुख

एक रोचक समानता यह भी है कि दोनों ही दर्शन का जन्म यूरोप में हुआ, लेकिन अस्तित्ववाद जिस प्रकार अमेरिका के माध्यम से भारत पहुँचा था, उसी तरह उत्तर-आधुनिकतावाद भी अमेरिका के प्रभाव से यहाँ लोकप्रिय हुआ।

उत्तर-आधुनिकतावाद और पूँजीवाद

उत्तर-आधुनिकतावाद का उदय सूचना और संचार तकनीकों के अभूतपूर्व विकास, उत्पादन में कंप्यूटर और रोबोटिक तकनीकों के बढ़ते प्रयोग, तथा बहुराष्ट्रीय निगमों के वैश्विक विस्तार के साथ हुआ है। बाज़ारवाद के प्रसार के साथ नए-नए बाज़ार खोलने और उन्हें नियंत्रित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

आज के पूँजीवादी तंत्र में:

- उत्तर-आधुनिकतावाद का जन्म यूरोप में हुआ है।

- ▶ शेयर बाज़ार और सत्तेबाज़ी – वास्तविक उत्पादन के स्थान पर लोगों को सत्तेबाज़ी में उलझाया जा रहा है।
- ▶ आर्थिक शोषण – कमजोर देशों को कर्ज़ के जाल में फँसाकर उनके संसाधनों का शोषण किया जा रहा है।

उत्तर-आधुनिकता और वैश्वीकरण पर बहुत चर्चा होती है। विचारक कहते हैं कि आज का पूँजीवाद वैश्विक हो गया है, लेकिन वास्तविकता यह है कि बड़े पूँजीवादी देश अपने राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका भारत जैसे देशों को 'Think Globally, Act Locally' (वैश्विक स्तर पर सोचो, स्थानीय स्तर पर कार्य करो) का पाठ पढ़ाता है, जबकि स्वयं 'Think Locally, Act Globally' (स्थानीय स्तर पर सोचो, वैश्विक स्तर पर कार्य करो) की नीति अपनाता है। अपनी शक्ति के बल पर वह विश्वभर को स्पष्ट संदेश देता है कि जहाँ भी उसके हितों को खतरा होगा, वह हस्तक्षेप करेगा।

आधुनिक युग उत्पादन से अधिक उपभोग और उपभोक्तावाद का युग बन गया है। हालाँकि, बहस उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री पर केंद्रित होती है, लेकिन यह प्रश्न प्रायः अनुत्तरित रहता है कि इन वस्तुओं का उत्पादन कौन करता है और वे किस परिस्थितियों में कार्य कर रहे हैं?

- उत्तर- आधुनिकतावाद भाषा, साहित्य, कला आदि से संबंधित कोई फैशन या आन्दोलन नहीं, बल्कि एक प्रकार की राजनीति है।

स्पष्ट है कि उत्तर-आधुनिकतावाद केवल भाषा, साहित्य या कला से संबंधित कोई फैशन या आंदोलन नहीं है, बल्कि यह एक राजनीतिक विचारधारा है। इसे केवल रचना और आलोचना की नई पद्धति के रूप में देखना एक बड़ी भूल होगी। वास्तव में, यह समकालीन पूँजीवाद की विचारधारा है और इसे इसी रूप में समझना आवश्यक है।

विचित्र बात है कि जिस चीज़ को परिभाषित करना असंभव है, उस पर धड़ाधड़ पुस्तकें लिखी जा रही हैं। कोई पूछे कि उत्तर-आधुनिकतावाद क्या है, तो इसका कोई ठीक-ठाक या समझ में आने वाला जवाब उत्तर-आधुनिकतावादियों से मिलना मुश्किल है। हिन्दी में इसके प्रमुख प्रचारक सुधीश पचौरी जी ने अपनी पुस्तक

उत्तर-आधुनिकतावाद और उत्तर-संरचनावाद 1994 में इसका परिचय इस प्रकार किया है - उत्तर-आधुनिकतावाद, आधुनिकता का विस्तार भी है और अंतिम बिंदु भी है। ....आधुनिकता के दौर से काफी अलग वह एक उत्तर साम्राज्यवादी स्थिति है। ...... वह पश्चिम की आधुनिकता के जरायु हो उठने की पीड़ा है और अपना बोझ न संभाल पाने की विवशता है। .....वह एक भूमंडलीय अवस्था है जिसमें हम सब शामिल हैं।

उत्तर-आधुनिकतावादः एक बौद्धिक आंदोलन

- उत्तर-आधुनिकतावाद की उत्पत्ति मुख्यतः एक उदार सामाजिक आंदोलन के रूप में

उत्तर-आधुनिकतावाद एक बौद्धिक आंदोलन के रूप में आधुनिकतावाद के विभिन्न सिद्धांतों को चुनौती देता है। इसकी जड़ें ज्ञानोदय (Enlightenment) काल की उन अवधारणाओं में निहित हैं, जो वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद, मानव प्रगति की अनिवार्यता और भौतिक एवं सामाजिक वास्तविकताओं के किसी न किसी निश्चित सत्य को मानवीय तर्क द्वारा समझने तथा नियंत्रित करने की क्षमता पर बल देती हैं। उत्तर-आधुनिकतावाद की उत्पत्ति मुख्यतः एक उदार सामाजिक आंदोलन के रूप में हुई, जिसका प्रभाव सौंदर्यशास्त्र, वास्तुकला और दर्शनशास्त्र पर पड़ा। विशेष रूप से, यह चित्रकला में अमूर्तता (Abstract Art) और वास्तुकला में अंतर्राष्ट्रीय शैली (International Style) के प्रति एक प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ। उत्तर-आधुनिक प्रवृत्ति ने पारंपरिक संरचनाओं और सार्वभौमिक सत्यों पर प्रश्न उठाए और बहुलवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया।

- नीत्शे ने ज्ञान की पारंपरिक नींव को चुनौती दी।

यदि हम उत्तर-आधुनिक चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की ओर देखें, तो इसकी जड़ें उन्नीसवीं सदी में फ्रेडरिक नीत्शे के विचारों में खोजी जा सकती हैं। नीत्शे ने सत्य, भाषा और समाज को लेकर जो दावे किए, उन्होंने ज्ञान की पारंपरिक नींव को चुनौती दी। उनके विचारों ने उत्तर-आधुनिकतावाद और आधुनिकता के उत्तरकालीन आलोचनात्मक विमर्श के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस संदर्भ में उत्तर-आधुनिकतावाद महज एक सौंदर्यशास्त्रीय या दार्शनिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि ज्ञान की संरचना, सामाजिक यथार्थ और सत्ता संबंधों की पुनर्व्याख्या का एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर-आधुनिकतावाद एक ऐसा विचार है जो 1980 के दशक में प्रसिद्ध हुआ। यह केवल कला, वास्तुकला और साहित्य की नई शैली नहीं है, बल्कि पूँजीवाद (बाजार व्यवस्था) से जुड़ा एक विचार है। इसका विकास तब हुआ जब लोगों को पारंपरिक राजनीति और समाज से निराशा होने लगी। पहले, मार्क्सवाद (जो वर्ग संघर्ष और आर्थिक असमानता पर ध्यान देता था) लोकप्रिय था, लेकिन बाद में कुछ बुद्धिजीवियों ने 'मुक्ति' और 'प्रगति' के नए अर्थों पर विचार करना शुरू कर दिया। इसी कारण उत्तर-आधुनिकतावाद का जन्म हुआ और यह समाज में एक नया सोचने का तरीका बन गया।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी में उत्तर-आधुनिकता की चर्चा कब से होने लगी।
2. एक बौद्धिक आंदोलन के रूप में उत्तर-आधुनिकतावाद की चर्चा हिन्दी साहित्य में कब से होने लगी।
3. वैश्वीकरण के दौर में उत्तर-आधुनिकतावाद की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. उत्तर-आधुनिकतावाद और भारतीय संस्कृति के बीच के अंतर्संबंधों का विश्लेषण कीजिए।
5. उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रमुख सिद्धांतों और उनके आलोचनात्मक पहलुओं पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
6. उत्तर-आधुनिकतावाद के संदर्भ में 'स्थानीय' और 'वैश्विक' के बीच के तनाव का विश्लेषण कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन - हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष - सं रवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य – प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

इकाई 2

भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्य जगत में उत्तर-आधुनिकता के आविर्भाव को समझता है
- भारत में उत्तर-आधुनिकता का आगमन जानता है
- उत्तर-आधुनिकता का भारतीय समाज पर प्रभाव के बारे में समझता है

Background / पृष्ठभूमि

उत्तर-आधुनिकतावाद (Postmodernism) एक बौद्धिक आंदोलन है, जो परंपरागत मान्यताओं, संरचनाओं और धारणाओं को चुनौती देता है। यह आंदोलन मुख्य रूप से पश्चिम में विकसित हुआ, लेकिन भारत में भी इसके प्रभाव देखे गए हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में, उत्तर-आधुनिकता का आगमन साहित्य, समाज, मीडिया और बाज़ार व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आया। हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिकता का उदय 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। यह यथार्थवाद और आधुनिकतावाद के विरोध में एक नई दृष्टि प्रस्तुत करता है। इस आंदोलन में बहुलता, अस्मितावाद, हाशिए के विमर्श, लोकसंस्कृति, स्त्रीवाद और दलित साहित्य को अधिक महत्व दिया गया। रचनाकारों ने पारंपरिक नैतिकताओं और शास्त्रीय ढांचों को तोड़ते हुए साहित्य में नए प्रयोग किए। भारतीय समाज में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव विविध रूपों में देखा जाता है। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीक-क्रांति और पहचान की राजनीति ने सामाजिक संरचना में बदलाव लाए हैं। उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव से समाज में परंपरागत मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन हुआ और हाशिए के समुदायों को अपनी आवाज़ बुलंद करने का अवसर मिला। भारत में उत्तर-आधुनिकता मुख्य रूप से मीडिया संचालित और बाज़ार निर्देशित है। सोशल मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्मों ने विचारधाराओं के प्रसार और बहस को नया रूप दिया है। साथ ही, उपभोक्तावाद और विज्ञापन उद्योग ने सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक व्यवहार को प्रभावित किया है। उत्तर-आधुनिकता के इस दौर में साहित्य, कला और संस्कृति भी बाज़ार की ताकतों से अछूती नहीं रही।

Keywords / मुख्य बिन्दु

उत्तर-आधुनिकता, अस्मितावाद, हाशिए के विमर्श, दलित साहित्य, स्त्रीवाद, उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण, मीडिया और बाज़ारवाद, सांस्कृतिक बदलाव

Discussion / चर्चा

3.2.1 भारतीय संदर्भ में उत्तर-आधुनिकतावाद

उत्तर-आधुनिकतावाद को लेकर विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। कुछ लोग मानते हैं कि हम उत्तर-आधुनिक युग में प्रवेश कर चुके हैं, जबकि कुछ का मानना है कि यह शुरू ही कब हुआ, इसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। लेकिन इतना तय है कि यह एक ऐसा विचारधारा है जिसने कला, साहित्य, संस्कृति, समाज और मीडिया जैसे क्षेत्रों को प्रभावित किया है। अगर हम इसके मूल तत्वों को समझें, तो यह विचार 1960 के दशक में उभरने वाले स्वतंत्रता और मुक्ति आंदोलनों से निकला, जिन्होंने व्यक्ति, व्यवस्था और सभी प्रकार की विचारधाराओं पर सवाल खड़े कर दिए। 1980 के दशक तक आते-आते इसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि यह राजनीति, समाजशास्त्र और सांस्कृतिक विमर्श का केंद्र बन गया। उत्तर-आधुनिकता ने पूरे विश्व को प्रभावित किया है और भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। जैसे आधुनिकता भारत में आई, वैसे ही उत्तर-आधुनिकता भी यहाँ पहुंची। लेकिन आधुनिकता का लाभ केवल शक्तिशाली वर्ग को हुआ, जबकि पारंपरिक सामाजिक और जातिगत ढांचे में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। इसके परिणामस्वरूप भारत में केंद्रीकरण और अधिक मजबूत हुआ।

- उत्तर-आधुनिकता ने पूरे विश्व को प्रभावित किया

आज भारत कई राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना कर रहा है। भारत जैसे देश में, जहाँ एक बड़ा वर्ग अब भी पिछड़ी परिस्थितियों में जी रहा है, दूसरा वर्ग मध्ययुगीन सोच से बाहर नहीं निकल पाया है और तीसरा वर्ग आधुनिक बनने के संघर्ष में लगा है, वहाँ उत्तर-आधुनिकता केवल एक छोटे से समूह के लिए बौद्धिक चर्चा का विषय बनकर रह सकती है। यह आम जनता के जीवन पर कोई गहरा प्रभाव नहीं डाल पाएँगी।

- उत्तर आधुनिकता का प्रभाव क्षेत्र कला, साहित्य, संस्कृति, समाज तथा मीडिया

3.2.1.1 क्या हमें उत्तरआधुनिकतावाद की आवश्यकता है?

साहित्यिक जगत के विद्वानों को इस बात से परेशानी होती है कि ऐसा सवाल कभी नहीं उठाया जाता। भारतीय विद्वान या आलोचक द्वारा इस तरह से सीधे तौर पर पूछे जाने के बारे में नहीं देखा। हालाँकि भारत में उत्तर आधुनिकता के मूल्यों पर बहस बढ़ रही है, लेकिन यह बहस भी यूरोप में इसी तरह की बहसों की पुनरावृत्ति और प्रतिध्वनि मात्र है। शायद, ऐसा सवाल पूछने में हमारी असमर्थता हमारी स्थिति का सबसे स्पष्ट और खुलासा करने वाला बयान है। उत्तर आधुनिकता के लिए हमारी अपनी अन्यता को इतनी आसानी से क्यों मिटा दिया जाता है? जब हम खुद इस नए विमर्श के अभ्यासी बन जाते हैं, तो हमारे नाम, पहचान, राष्ट्रीयता और स्थान इतनी कुशलता से क्यों छिपाए जाते हैं?

- भारत में उत्तर आधुनिकता के मूल्यों पर बहस

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपनिवेशित लोगों के रूप में हमें जो दोषपूर्ण प्रशिक्षण मिला है, वह आंशिक रूप से हमारी आंखों पर पट्टी बांधने के लिए जिम्मेदार है। जो

कुछ भी हम पढ़ते हैं, उससे खुद को अलग रखने, अपनी पहचान को अदृश्य बनाने, अपने अध्ययन की वस्तु पर पूरी तरह से ध्यान देने के लिए प्रशिक्षित किया गया है - इस हद तक कि हम, अंत में, उसमें डूब जाते हैं और उसमें समा जाते हैं। यह पूछने में हमारी चुप्पी कि हमें उत्तर आधुनिकता की आवश्यकता है या नहीं, यह बताती है कि हमने पहले ही यह तय कर लिया है कि हमारे पास इसके बारे में कोई विकल्प नहीं है। अब जबकि यह पश्चिम में प्रमुख मेटा-कथा है, हमें इसके उतार-चढ़ाव का कर्तव्यपूर्वक पालन करना होगा। ऐसा नहीं है कि हमें लगता है कि हमारे पास कोई विकल्प नहीं है, बल्कि यह कि, हमारी मानसिकता में गहराई से, हम मानते हैं कि हम किसी विकल्प के लायक नहीं हैं। हमारा कम आत्मसम्मान हमारी गुलामी की स्थिति के जाल से बाहर निकलने में हमारी असमर्थता का प्रमाण और कारण दोनों है।

- भारतीय परिप्रेक्ष्य से उत्तर आधुनिकता की आलोचना करने की आवश्यकता है

वक्त की मांग है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य से उत्तर आधुनिकता की आलोचना करने की तत्काल आवश्यकता है। उत्तर आधुनिकता को पश्चिम में जिस तरह से देखा जाता है, उस तरह से नहीं बल्कि तीसरी दुनिया में जिस तरह से हम देखते हैं, उस तरह से देखना आवश्यक है। इसके मूल्य की बिना उत्तर आधुनिकतावाद की प्रासंगिकता का सवाल दुनिया के लिए और खास तौर पर इसके गरीब लोगों के लिए नकारा नहीं जा सकता। भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकता मीडिया संचालित एवं बाज़ार निर्देशित तथ्यों की प्रतिक्रिया के रूप में सामने आया है—यह साठ के दशक की आधुनिकता के प्रति एक प्रतिक्रिया है जो एक विशेष जीवन शैली एवं जीवन दृष्टिकोण से जुड़ी हुई थी। जो पश्चिमी विश्व में आम है और धीरे-धीरे पूर्वी एशिया और लातिनी अमेरिका के धनी समाज में आम होती जा रही है।

- मीडिया संचालित एवं बाज़ार निर्देशित तथ्यों की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में

आज इककीसवीं शताब्दी में 'उत्तर-आधुनिकतावाद' की चर्चा सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य के क्रेंद्र में मौजूद है। आज यह साहित्य, कला, संस्कृति, राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र के विमर्श का केन्द्रीय मुद्दा बन गया है और बनता जा रहा है। कहना न होगा कि उत्तर-आधुनिकतावाद मिशेल फूको, ज्वां फ्रास्वा ल्योतार, जॉक देरीदा, रोलां बार्थ, पाल डि मान, एवं एड्वर्ड सईद के विचारों के साथ फ्रांस से अमरीका और अमरीका के विश्व विद्यालयों में चर्चित प्रतिष्ठित हो गया। अमरीकी विद्वानों की व्याख्याओं – भाष्यों, टीका – टिप्पणियों, विमर्शों के साथ यह चिन्तन भारत में आया। हिन्दी के विद्वानों ने 1980 ई के आसपास इसकी चर्चा शुरु की जबकि बंगाल में यह चर्चा सन् 1960 के आसपास जोर पकड़ती मिलती है। आज यह साहित्य, कला, संस्कृति, राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र के विमर्श का केन्द्रीय मुद्दा बन गया है और बनता जा रहा है। हर क्षेत्र में उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रभाव इस ढंग से बढ़ा कि फिल्म, फैशन, विचार, विज्ञापन, संस्कृति, कला, दर्शन, मीडिया सब उत्तर-आधुनिकतावाद के क्षेत्र बन गए।

- हिन्दी के विद्वानों ने 1980 ई के आसपास इसकी चर्चा शुरु की

प्रमुख उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तक सुधीश पचौरी है जिन्होंने सबसे पहले हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों की सूचना दी। उनके ही शब्दों में – 'हिन्दी में

उत्तर-आधुनिकता एक निर्णायक पदावली बन चली है। विरोधी लोग अब उसकी निन्दा नहीं करते। अब लोग उसकी वर्णमाला में शामिल होने को व्याकुल दिखते हैं। कई उसके सामने नतमस्तक है। साहित्य को इस प्रकार उत्तर-आधुनिक विशेषण देने पर कई महानुभाव परेशान भी हैं। कुछ लोग तो लाठी मारने के लिए दौड़ पड़ते हैं कि आखिर हमारे अंध राष्ट्रवाद के दरारों को ही क्यों दिखाया जा रहा है। जो भी हो एक बात तो मानना ही पड़ेगा – भावक्षेत्र से संप्रेक्षण तक, रचना प्रक्रिया से लेकर अर्थ प्रक्रिया तक एक विराट बेदखली हो रही है। इस बेदखली को समझना समय की माँग है

- प्रमुख उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तक सुधीश पचौरी।

उर्दु और पंजाबी भाषा में जहाँ उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद को लेकर एक व्यापक उत्सुकता और स्वीकार का भाव दिखाई दिया, हिन्दी में उसके मुकाबले उपलब्ध प्रतिक्रिया उतनी अच्छी नहीं थी। हिन्दी के कुछ विद्वान उत्तर-आधुनिकतावाद शब्द पर आपत्ति उठाते हैं। तर्क यह देते हैं कि 'पोस्ट मॉडर्निज़्म' का अनुवाद 'आधुनिकोत्तर' होना चाहिए। जैसे छायावाद के बाद छायावादोत्तर युग आया वैसे ही आधुनिकतावाद के बाद 'आधुनिकोत्तर' आना चाहिए उत्तर-आधुनिकतावाद नहीं।

- 'पोस्ट मॉडर्निज़्म' का अनुवाद 'आधुनिकोत्तर'

भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद की चर्चा करते हुए प्रमुख चिन्तक एवं लेखक कृष्णदत्त पालीवाल का कहना है—'भारत में तो देख-समझा जाए तो आधुनिकतावाद भी ठीक से नहीं आ पाया और न 'नई समीक्षा' पर ही गहराई से कार्य किया गया। इसी बीच पश्चिम से विशेषकर अमेरिका से उत्तर-आधुनिकतावाद का 'टारनैडो' बवंडर आ गया। इतना तेज़ बवंडर आया कि पुराने चिन्तन की थुनकियों पर खड़े छप्पर और कमज़ोर नींव के सभी महल भरभरा कर गिर पड़े। अमेरिकी पूँजीवाद का पानी-पीकर गाली देने वाले अमेरिकीवाद- डॉलरवाद का कीर्तन करने लगे।'

- भारत में आधुनिकतावाद भी ठीक से नहीं आ पाया - कृष्णदत्त पालीवाल

भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की आँधी के साथ ही भारतीय समाज कम्प्यूटरीकरण, संचार क्रांति और नव उपनिवेशवाद की गिरफत में आ गया है। कुछ आन्तरिक अनिवार्यता और कुछ फैशन के स्तर पर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में उत्तर आधुनिक स्थितियों का चित्रण (भाव एवं शिल्प पक्ष) में होने लगा है। फलस्वरूप आज साहित्य के अस्तित्व का खतरा है, उसके कथ्य और शिल्प के नष्ट होने का खतरा है, साहित्य के वस्तु बनकर बिकने का खतरा है। अपमिश्रित भाषा और संस्कृति उसे भ्रष्ट कर सकती है। मूल्यहीनता उसे निरर्थक बना सकती है। संचार माध्यमों, दृश्य-श्रव्य माध्यमों के सम्मुख प्रिण्ट मीडिया का अस्तित्व कब तक बना रह सकेगा, यह भी खतरा है। अरसे से हिन्दी में उत्तर-आधुनिकतावाद की अनुगूँज़ें सुनाई पड़ती रही हैं। लेकिन अपने आस-पास की उत्तर-आधुनिक स्थितियों के प्रति हिन्दी में अधिक से अधिक एक सतही हिकारत और फैशनेबुल उत्सुकता है।

- हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में उत्तर आधुनिक स्थितियों का चित्रण

आज भारत जिन राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का सामना कर रहा है, उनके सन्दर्भ में उत्तर-आधुनिकतावाद की क्या भूमिका होगी, वह किन के काम का होगा और किन के लिए बेकार, वह किन की ताकत बनेगा और किन्हें कमज़ोर बनाएगा- यह सवाल अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारत पहले यूरोप के आधुनिकतावाद का

अनेक रूपों में शिकार रहा है। लगता है अब वह उत्तर-आधुनिकतावाद का शिकार होगा। पहले भारत में उपनिवेशवाद के साथ आधुनिकतावाद आया था। क्या अब भूमण्डलीकरण के दौर में नवउपनिवेशवाद के साथ उत्तर-आधुनिकतावाद आएँगा? क्या भारत जैसे देश पश्चिम का उपनिवेश बनते रहने के लिए अभिशप्त हैं?

- पहले भारत में उपनिवेशवाद के साथ आधुनिकतावाद आया

उत्तर-आधुनिकता इस तरह भारत के लिए एक मिले-जुले विचार और धारणाओं के प्रतिफल स्वरूप सादृश्य है। पश्चिम में इसका उद्‌भव और प्रभुत्व स्थापत्य ही इसके असावधानीपूर्ण संग्रहण किए जाने की ओर इंगित करते हैं जो हमारे लिए अत्यन्त हानिकारक है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसके मुख्य मुद्दे एवं अवधारणाओं की सार्थकता या तो संदिग्ध है अथवा पक्षपातपूर्ण है। फिर भी जहाँ तक इसमें पढ़ने की नई तकनीक अथवा आलोचना व उध्दार सम्बन्धी नए उपकरणों के निहित होने की बात है, वह भारत के लिए उपयोगी सिध्द हो सकती है। सच तो यह है कि उत्तर-आधुनिकता की सबसे बड़ी देन पश्चिम के प्रभुत्ववादी विचारधारा का ध्वस्त होना है।

- भारत के लिए एक मिले-जुले विचार और धारणाओं के प्रतिफल स्वरूप सादृश्य

कई भारतीय विद्वान इस बात से खुश हैं कि उत्तर-आधुनिकतावाद के आगमन से हमारी सोच एवं चिंतन में काफी सकारात्मक बदलाव आया। जैसे कि पर्यावरण आंदोलन उत्तर-आधुनिकता की देन है, आधुनिकता की नहीं, आधुनिकता के तहत तो हम जंगल काट रहे थे और हम समझते थे कि विज्ञान के ज़रिए हम जो चाहें कर सकते हैं। लेकिन उत्तर-आधुनिकता ने विज्ञान की सीमाएँ दिखाई। यह भी दिखाया कि जिसे आप सार्वभौमिक वैज्ञानिक सूत्र या दृष्टि कहते हैं, वह दरअसल कुछ सामाजिक, राजनीतिक मान्यताओं और कुछ रूपकों का नतीजा है। उसी प्रकार उत्तर-आधुनिकता ने सार्वभौमिक की जगह स्थानीयता का जो महत्व रेखांकित किया है, वह एक नई चीज़ है। इसी के परिणामस्वरूप आज हम अपनी अस्मिता, अपने इतिहास की एवं अपने विशिष्ट जीवनानुभवों की बात कर रहें हैं।

- सार्वभौमिक की जगह स्थानीयता का महत्व रेखांकित किया

देवेन्द्र इस्सर उत्तर-आधुनिकतावाद द्वारा निर्मित नए सौन्दर्यशास्त्र की सराहना करते हैं। उनका मानना है कि उत्तर-आधुनिक युग में तकनीकी, वैचारिक तथा सांस्कृतिक सोच ने जिस नई संवेदना की परिवेश की उसने नए सौंदर्यशास्त्र की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं। वह उच्च और निम्न कला के वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करता और न हीं कला को क्लासिकि या आधुनिक कला में विभाजित करता है। बल्कि ऐसे कला रूपों का आविष्कार करता है जिनमें मीडिया के बिम्बों तथा प्रतिमानों का समावेश है। उत्तर आधुनिकतावाद कलाकार और दर्शक के बीच बैरियर को उठा देता है। तदुपरान्त लिखने - पढ़ने और देखने सुनने के सलीके बदल गए।

- उत्तर-आधुनिकतावाद के आगमन से हमारी सोच एवं चिंतन में सकारात्मक बदलाव

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर-आधुनिकता इस तरह भारत के लिए एक मिले-जुले विचार और धारणाओं के प्रतिफल स्वरूप सादृश्य है। पश्चिम में इसका उद्भव और प्रभुत्व स्थापत्य ही इसके असावधानी पूर्ण संग्रहन किए जाने की ओर इंगित करते हैं जो हमारे लिए अत्यंत हानिकारक हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसके मुख्य मुद्दे एवं अभिधारणाओं की सार्थकता या तो संदिग्ध है अथवा पक्षपात पूर्ण है। फिर भी जहाँ तक इसमें पढ़ने की नई तकनीक अथवा आलोचना व उद्धार संबंधी नए उपकरणों के निहित होने की बात है, वह भारत के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सच तो यह है कि उत्तर-आधुनिकता की सबसे बड़ी देन पश्चिम के प्रभुत्ववादी विचारधारा का ध्वस्त होना है। उत्तर-आधुनिकतावाद की जो भी संरचना हो परंतु हमारे संदर्भ में यह मूलतः एक ताकत का प्रश्न है। कौन, किसको, कितना नियंत्रित करता है और किस पर सारा दारोमदार है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकतावाद पर विद्वानों की क्या राय है।
2. उत्तर-आधुनिकता भारत के लिए एक मिले-जुले विचार और धारणाओं के प्रतिफल स्वरूप सादृश्य है। अपना विचार प्रकट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन-हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़-सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य –प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

इकाई 3

उत्तर-आधुनिकतावाद पर आक्षेप

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भारतीय विद्वानों द्वारा उत्तर-आधुनिकता पर लगाए गए आक्षेपों से अवगत होता है
- पश्चिम में पैदा हुई उत्तर-आधुनिकता का भारत में आगमन समझता है
- भारतीय परिस्थितियों में उत्तर आधुनिकता का आगमन और उन पर लगाए गए आक्षेपों से अवगत होता है
- विभिन्न विद्वानों का उत्तर आधुनिकता पर प्रकट किए गए विचारों से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

वास्तविकता तो यह है कि समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और विज्ञान के दर्शन इत्यादि क्षेत्रों को देखें तो बीसवीं सदी के मध्य से ही उत्तर-आधुनिकता की चर्चा हमारे देश में जगह-जगह पत्र-पत्रिकाओं में मिलती है लेकिन ज्यादात्तर अंग्रेज़ी में। हिन्दी में इसकी आहट सन 1980 के आस-पास दिखाई देती है। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है। हिन्दी आलोचना में अक्सर चीज़ें तभी ली गई हैं, जब उनकी चर्चा पश्चिम में समाप्त हो गई है। पश्चिम से कोई नया विचार आते ही हमारी पहली प्रतिक्रिया बौखलाहट की होती है अथवा तिरस्कार या अस्वीकार की होती है। धीरे-धीरे जब यह अर्थतंत्र, राजनीति और दूसरे ज्ञान-विज्ञान की धाराओं में बहता हुआ सभी जगह व्याप्त हो जाता है तब हिन्दी वाले उस ओर ध्यान देते हैं। कुछ भारतीय विद्वानों का मानना है कि उत्तर-आधुनिकतावाद की पूरी चर्चा फैशनेबुल है। असल में पश्चिम में जब कोई आन्दोलन शुरू होकर समाप्ति की ओर अग्रसर होता है तो उसकी सुगबुगाहट हमारे यहाँ भी शुरू होती है। हमारे यहाँ भी कुछ लेखक उसी की नकल पर कुछ लिखते-पढ़ते हैं। संभव है पश्चिम में उसकी ज़रूरत हो, लेकिन हमारे यहाँ परिस्थितियाँ दूसरी हैं। कई विद्वानों को यह पूरा मूवमेंट ही नकली और सतही लगता है। वैसे वास्तविकता तो यह है कि कोई भी दर्शन या विचार विशेष परिस्थिति का देन होता है। भौतिकवादी विचारधारा चूँकि पश्चिम में पैदा हुई है, इसलिए उसके लिए उपयुक्त ज़मीन हमारे देश में नहीं हो सकती ऐसा कुछ भारतीय विद्वानों का मानना है। कुछ भारतीय विद्वानों का यह भी मानना है कि सच पूछा जाए तो हमें तो कोई और दर्शन चाहिए - आधुनिकता या उत्तरआधुनिकता हमारे लिए प्रासंगिक नहीं है। कुल मिलाकर आधुनिकता के जो मूल दार्शनिक आधार स्तम्भ थे उन पर उत्तर-आधुनिकता ने बड़े गहरे प्रश्नचिह्न लगाए हैं। उत्तर-आधुनिकता ने एक नया ही परिदृश्य प्रस्तुत किया है। यह परिदृश्य नई टेक्नॉलॉजी, नई तरह की सामाजिक, राजनीतिक प्रविधियों और संस्थानों के समानांतर चल रहा है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भौतिकवादी विचारधारा, टेक्स्ट, अस्वीकार, विखंडन, अविवेक, अन्त की घोषणा

Discussion / चर्चा

यहाँ उत्तर-आधुनिकतावादियों द्वारा की गई कुछ प्रमुख घोषणाओं पर चर्चा की गई है, जैसे ईश्वर, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और लेखक की मृत्यु की घोषणा। ये विचार भारतीय संदर्भ में अधिक स्वीकार्य नहीं हुए और कई भारतीय विद्वानों का मानना है कि उत्तर-आधुनिकता हमारे यहाँ स्वाभाविक रूप से नहीं आई, बल्कि इसे लाया गया है।

- भारत में सगुण और निर्गुण, षटदर्शन जैसी कई विचारधाराएँ

अशोक वाजपेयी के अनुसार, उत्तर-आधुनिकता भारतीयता के पुनर्वास का माध्यम है। यह समय, दृष्टिकोण और शैलियों की विविधता को स्वीकार करता है, जो भारतीय परंपरा का एक अभिन्न हिस्सा है। वे कहते हैं कि भारत में सगुण और निर्गुण, षटदर्शन जैसी कई विचारधाराएँ मौजूद हैं और यह दर्शाता है कि संसार को देखने के अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। आधुनिकता ने विचारों को एक सीमित दायरे में बांध दिया था, लेकिन उत्तर-आधुनिकता इससे मुक्ति का मार्ग प्रदान करती है।

- नीत्शे ने कहा था - 'ईश्वर मर गया है'

ईश्वर के अंत की घोषणा को वे केवल एक नाटकीय कथन मानते हैं, न कि कोई अंतिम सत्य। नीत्शे ने भले ही कहा था कि 'ईश्वर मर गया है', लेकिन इसके बावजूद पश्चिमी साहित्य में भी ईश्वर को मृत नहीं माना गया। गंगा प्रसाद विमल भी मानते हैं कि ऐसी घोषणाएँ भावुकता से प्रेरित होती हैं और वास्तविकता में मनुष्य के विकास को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ अपनी स्वाभाविक दिशा में आगे बढ़ती हैं।

- भारतीय परिदृश्य में लेखक के साथ स्वामी, शक्ति और प्रभुत्व का भाव जुड़ा रहता है

उत्तर-आधुनिकता ने लेखक और रचना के संबंध को नए सिरे से परिभाषित किया। इसमें लेखक को केंद्रीय भूमिका से हटाकर पाठक को महत्व दिया गया, जो किसी भी पाठ की व्याख्या स्वतंत्र रूप से कर सकता है। लेकिन भारतीय संदर्भ में लेखक को हमेशा शक्ति और प्रभुत्व से जोड़ा जाता रहा है, इसलिए इस विचार को आसानी से स्वीकार नहीं किया गया।

- लेखक के अंत की घोषणा को लेकर अलग-अलग विचार

लेखक के अंत की घोषणा को लेकर विचार अलग-अलग हैं। एक दृष्टि से देखें तो यह सही लगता है, क्योंकि हम लेखक को नहीं, बल्कि उसकी रचना को पढ़ते हैं। कई बार लेखक के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं होता, विशेष रूप से प्राचीन लेखकों के मामले में। हम केवल उनकी बची हुई कृतियों को पढ़कर उनके अर्थ निकालते हैं और व्याख्या करते हैं। हालांकि, पंकज विष्ट इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि लेखक की रचना का मूल अर्थ पाठक तक पहुँचता है। यदि ऐसा न होता तो नैतिकता पर लिखी पुस्तक का अनैतिक अर्थ लगाया जाता, जो वास्तविकता में नहीं होता।

- कई भारतीय विद्वान 'लेखक के अन्त' की घोषणा का कोई अर्थ नहीं मानते।

हिन्दी के प्रमुख आलोचक मैनेजर पाण्डेय उत्तर-आधुनिकतावाद के अंतवाद पर सवाल उठाते हैं। वे मानते हैं कि इस तरह के विचार मानव इतिहास, सत्य, ज्ञान और विवेक के अंत की घोषणा करते हैं। इससे मानव समाज में निराशा बढ़ती है और वर्तमान संकट और गहरा होता है।

3.3 उत्तर आधुनिकता परंपरा का व्यवसाय करना चाहती है

यहाँ कई विद्वानों ने उत्तर-आधुनिकता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनका मानना है कि यह कोई बौद्धिक आंदोलन न होकर एक प्रकार की राजनीति है, जो परंपराओं को तोड़ने और पूँजीवादी विचारधारा को बढ़ावा देने का कार्य करती है।

- ▶ रमेश उपाध्याय के अनुसार, उत्तर-आधुनिकता केवल भाषा, साहित्य और कला से जुड़ा फैशन नहीं है, बल्कि यह पूँजीवाद की विचारधारा है, जिसे समझना आवश्यक है।
- ▶ कमल कुमार इसे गहरे अवसाद, निराशा और भविष्यहीनता से जोड़ते हैं। वे मानते हैं कि उपभोक्तावादी पूँजीवाद ने संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल दिया है और अर्थ तथा संस्कृति का क्षेत्र एक हो गया है।
- ▶ डॉ. हरदयाल के अनुसार, उत्तर-आधुनिकता अस्वीकार, विखंडन और अविवेक पर आधारित है। यह मानव सभ्यता द्वारा निर्मित मूल्यों, विचारों और परंपराओं को तोड़कर अस्वीकार कर देने की प्रवृत्ति है।
- ▶ पंकज विष्ट इसे एक फैशनेबुल विचार मानते हैं। उनका कहना है कि जब पश्चिम में कोई आंदोलन समाप्त होने को आता है, तब उसकी चर्चा यहाँ शुरू हो जाती है, जबकि हमारे समाज की परिस्थितियाँ भिन्न हैं।
- ▶ प्रो. शैलेश जैदी इसे भारतीयता के लिए खतरा मानते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर, धर्म, दर्शन, कला और साहित्य भारतीय पहचान के मूल आधार हैं, जो उत्तर-आधुनिकता के प्रभाव में कमजोर हो गए हैं।

- परंपराओं को तोड़ने और पूँजीवादी विचारधारा को बढ़ावा देनेवाला एक प्रकार की राजनीति

इस प्रकार, अधिकांश विद्वान उत्तर-आधुनिकता को एक नकारात्मक प्रवृत्ति के रूप में देखते हैं, जो परंपरागत मूल्यों को तोड़कर समाज में अस्थिरता और भ्रम पैदा कर रही है।

3.3.2 उत्तर आधुनिकता:प्रेतों की वापसी

- विश्व पूँजीवाद अपने संकटों को नई तकनीकों से हल कर लेता

उत्तर-आधुनिकतावाद के विचारक उन सभी ज्ञान-विज्ञानों को खारिज करते हैं, जिन्हें मानव सभ्यता ने खासतौर पर ज्ञानोदय काल (Enlightenment Age) से लेकर अब तक अर्जित किया है। वे यह दावा करते हैं कि ये विचारधाराएँ आज के समय में प्रासंगिक नहीं रह गई हैं। जब विश्व पूँजीवाद अपने संकटों को नई तकनीकों, बाज़ार विस्तार या कमज़ोर देशों पर बोझ डालकर हल कर लेता है, तब मध्य वर्ग और

बुद्धिजीवी वर्ग वर्ग-संघर्ष से खुद को अलग कर लेते हैं। वे यह मानने लगते हैं कि सभी विचारधाराएँ निरर्थक हैं। उनका तर्क होता है कि चाहे कान्ट, हेगेल या मार्क्स-एंगेल्स की विचारधारा हो, अंततः वे तानाशाही की ओर ले जाती हैं और मनुष्य की स्वतंत्रता को बाधित करती हैं। यही कारण है कि कई लोग विचारधाराओं को बेकार मानने लगते हैं।

- सर्वनिषेधवाद (नकारात्मकता) की विचारधारा

इस तरह, उत्तर-आधुनिकतावाद मुख्य रूप से सर्वनिषेधवाद (नकारात्मकता) की विचारधारा है। इसका असली उद्देश्य मार्क्सवाद-लेनिनवाद को खारिज करना है, जो विश्व पूँजीवाद की सबसे बड़ी विरोधी विचारधारा रही है। उत्तर-आधुनिकतावादी यह दावा करते हैं कि अब वर्ग संघर्ष की कोई प्रासंगिकता नहीं बची है, समाज उपभोक्तावादी बन गया है और संस्कृति भी मास कल्चर में बदल गई है। हालांकि, विश्व स्तर पर इस विचारधारा की कमजोरियों को समझ लिया गया है। कई विद्वानों ने इसे पुराने सर्वनिषेधवाद (नकारात्मकता) का ही नया रूप माना है - एक तरह से, यह बीती हुई भ्रांतियों की वापसी भर है।

3.3.4 उत्तर-आधुनिकतावाद और भारत

- पश्चिम में Discourse और Text शब्दों का खूब इस्तेमाल

भारत में भी उत्तर-आधुनिकतावादी विचारक पश्चिम की तरह ही ज्ञान, विज्ञान और यथार्थवाद को चुनौती देते हैं। वे आज़ादी के मूल्यों पर सवाल उठाते हैं और भाषा में ताज़गी लाने के लिए धार्मिक शब्दावली का उपयोग करते हैं। पश्चिम में Discourse और Text शब्दों का खूब इस्तेमाल होता है, जबकि भारत में विमर्श और पाठ शब्द अपनाए गए हैं।

भारतीय दर्शन के विपरीत, उत्तर-आधुनिकतावाद सार्वभौमिक नैतिकता और सत्य की अवधारणा को खारिज करता है। भारतीय परंपरा आत्म-साक्षात्कार और उच्चतर ज्ञान पर बल देती है, जबकि उत्तर-आधुनिकता पारंपरिक आध्यात्मिक मान्यताओं पर संदेह करती है। भारतीय दर्शन परम सत्य की खोज को केंद्रीय मानता है, जबकि उत्तर-आधुनिकतावादी किसी भी अंतिम सत्य को स्वीकार नहीं करते।

उत्तर-आधुनिकता का भारतीयकरण

प्रो. शैलेश जैदी उत्तर-आधुनिकता के भारतीयकरण के पक्ष में हैं। वे मानते हैं कि इसकी व्यावसायिक चेतना को हटाकर इसे भारतीय संदर्भ में ढाला जा सकता है।

- विविधता को प्रोत्साहित करने का सुझाव

उत्तर-आधुनिकता केवल नकारात्मक विचार नहीं है, बल्कि यह विविधता को प्रोत्साहित करने का भी सुझाव देती है। भारतीय विचारक इसे पूरी तरह अस्वीकार नहीं करते, बल्कि कुछ लोग इसके कुछ पहलुओं को अपनाते हैं। विकेंद्रीकरण इसकी एक सकारात्मक विशेषता है, जिससे हाशिए पर मौजूद समूहों को मुख्यधारा में आने का अवसर मिलता है।

डॉ. हरदयाल के अनुसार, उत्तर-आधुनिकता हर तरह की सत्ता और प्रभुत्व का विरोध करती है। यह जातीय और लोक पहचान को उभारती है, लेकिन भारत में जातिगत

चेतना उत्तर-आधुनिकता की देन नहीं, बल्कि राजनीति और स्वार्थपरक नीतियों का परिणाम है। गिरधर राठी उत्तर-आधुनिकता द्वारा स्थानीयता को दिए गए महत्व पर ज़ोर देते हैं। उनका मानना है कि यह नई स्थानीयता, आधुनिकता से पहले की स्थानीयता से अलग है। इसमें व्यक्ति को अधिक आज़ादी, गहरी पहचान और स्वतंत्रता का अनुभव मिलता है, जो वैश्विक दृष्टिकोण से भी जुड़ा हुआ है।

- यह नई स्थानीयता, आधुनिकता से पहले की स्थानीयता से अलग

भारतीय शिक्षा और उत्तर-आधुनिकता

भारतीय शिक्षा में सबाल्टर्न अध्ययन (जैसे दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श) उत्तर-आधुनिकता से प्रभावित रहा है। इन विचारों ने मुख्यधारा के आख्यानों को चुनौती दी है और नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं।

उत्तर-आधुनिकता ने दुनिया के बौद्धिक और सामाजिक परिदृश्य को नया रूप दिया है। यह नई तकनीक, सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्तियों और संस्थानों के साथ समानांतर रूप से विकसित हो रही है। भारतीय संदर्भ में, इसे पूरी तरह नकारने या अपनाने के बजाय, इसकी उपयोगी विशेषताओं को अपनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

- वास्तव में उत्तर आधुनिकतावाद सिर्फ नकारात्मक विमर्श नहीं है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर-आधुनिकता को लेकर हमारे मन में कई संदेह हैं, जैसे पहले आधुनिकता को लेकर थे। लेकिन अगर हम इसके उन पहलुओं पर ध्यान दें जो स्वतंत्रता, समानता, अस्मिता और स्वायत्तता से जुड़े हैं, तो पाएँगे कि इसमें विकेन्द्रीकरण जैसे सकारात्मक तत्व भी शामिल हैं। कुछ भारतीय विद्वानों का मानना है कि भारत में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव बाहरी कारणों से है, क्योंकि यह पश्चिम में पहले से स्थापित हो चुका है। उनका कहना है कि भारतीय समाज न तो अब तक आधुनिकता को पूरी तरह स्वीकार कर पाया है और न ही इस दिशा में समुचित ज्ञान रखता है, तो फिर इसे त्यागने की बात कैसे कर सकता है? इसलिए, उत्तर-आधुनिकता हमारे लिए पूरी तरह से बाहरी प्रभाव का परिणाम है। चाहें या न चाहें, पश्चिम के प्रभाव में आकर हमें इसे अपनाना पड़ा।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी साहित्य के विद्वानों द्वारा उत्तर-आधुनिकता पर लगाए गए आक्षेपों के आधार पर उत्तर-आधुनिकतावाद पर अपना विचार प्रकट कीजिए।
2. आपको क्या लगता है-उत्तर आधुनिकतावाद का आगमन भारत के लिए लाभदायक रहा या नहीं।

3. उत्तर-आधुनिकता और भारतीय दर्शन के बीच मूलभूत अंतरों की तुलना करें।
4. सार्वभौमिक नैतिकता और सत्य की अवधारणा के संदर्भ में इन दोनों दृष्टिकोणों का विश्लेषण करें।
5. क्या उत्तर-आधुनिकता भारतीय समाज के लिए एक सकारात्मक या नकारात्मक शक्ति है, अपने विचारों को तर्क सहित प्रस्तुत करें।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर - संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन - हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य - प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

इकाई 4

अध्ययन के नवीन विषय

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर-आधुनिकतावाद के युग की विशेषताओं से अवगत होता है
- अध्ययन के क्षेत्र में आने वाले नए-नए बदलावों से परिचित होता है
- साहित्य की व्यापक सांस्कृतिक धरातल के बारे में समझता है
- पोस्ट कॉलोनियल स्टडीस और फिल्म स्टडीस की जानकारी प्राप्त करता है
- जेंडर स्टडीस, लेस्बियन स्टडीस, कॉमिक्स स्टडीस आदि से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

साहित्य अध्ययन के पारंपरिक ढाँचे उत्तर-आधुनिक युग में एकदम से हिलने लगे। 'निम्न कला' समझे जाने वाले कई विषय अध्ययन की क्षेत्र में आने लगे। Cultural Studies, Gender Studies, Lesbian Studies, Gay Studies, Post-Colonial Studies, Film Studies, Comics Studies, Women Studies आदि उल्लेखनीय हैं। यहाँ तक की पॉप म्युसिक, पॉप कल्चर (Pop Culture), विज्ञापन (Advertising), धारावाहिक (Serial) आदि भी अध्ययन के विषय बन चुके हैं जो अब तक हाशिए पर रखे गए थे। मीडिया विमर्श आज साहित्य अध्ययन में एहम स्थान रखता है क्योंकि उपभोक्ता संस्कृति इतनी बढ़ गई है कि भाषा और संस्कृति आपस में मिल-घुल गए हैं। देर सवेर हिन्दी में भी शुध्द साहित्यिक अध्ययन-अध्यापन की जगह साहित्य को व्यापक सांस्कृतिक अध्ययनों की कोटियों के तहत देखा-परखा जाने लगेगा। पॉपूलर कल्चर के अध्ययन शुरू होने लगे हैं जो समय की माँग है। उत्तर-आधुनिक युग के कुछ नवीन विषयों पर यहाँ विचार करना ज़रूरी है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

साम्राज्यवाद, पॉपूलर कल्चर, उपभोक्ता संस्कृति, डिजिटल क्रांति, जेंडर, उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन

Discussion / चर्चा

3.4.1 पोस्ट कोलोनियल स्टडीज़ (Post Colonial Studies)

पंद्रहवीं शताब्दी के बाद अन्वेषण और खोज यात्राओं के चलते यूरोप की कुछ शक्तियों (इंग्लैंड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और नीदरलैंड) ने कई क्षेत्रों पर उपनिवेश स्थापित किए। इस प्रक्रिया में यूरोपीय आधुनिकता की अवधारणा मजबूत हुई, लेकिन अन्य समाजों को जबरन बदलने के प्रयास भी हुए, जो कई बार अधूरे और पीड़ादायक रहे। बीसवीं सदी के अंत तक अधिकतर उपनिवेश स्वतंत्र राष्ट्र बन गए, लेकिन औपनिवेशिक शासन के प्रभाव अब भी महसूस किए जाते हैं। औपनिवेशिक शासन ने न केवल उपनिवेशित समाजों बल्कि स्वयं यूरोप पर भी गहरा प्रभाव डाला। इससे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए। उपनिवेशवाद के विरोधाभासी प्रभावों ने साहित्य, नाटक, फिल्म आदि में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रस्तुतियों को जन्म दिया। उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन उपनिवेशवाद के प्रभावों के विश्लेषण पर केंद्रित है। यह बताता है कि यूरोपीय राष्ट्रों ने तीसरी दुनिया की संस्कृतियों पर किस प्रकार नियंत्रण किया और उन समाजों ने इसका कैसे विरोध किया। इस अध्ययन में नस्लीयकरण, प्राच्यवाद, उपनिवेशवाद और लिंग, संपर्क क्षेत्र, पर्यावरणीय प्रभाव, गुलाम समाज, सीमावर्ती क्षेत्र, प्रवासन, सांस्कृतिक आधुनिकता, ज्ञान के औपनिवेशिक रूप और प्रतिरोध जैसी अवधारणाओं को शामिल किया जाता है। यह क्षेत्र विशेष रूप से उपनिवेशों के इतिहास, उपनिवेशित समाजों की प्रतिक्रियाओं और आधुनिक दुनिया के निर्माण में उनकी भूमिका की जांच करता है। उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन वैश्विक स्तर पर उपनिवेशवाद के स्थायी प्रभावों को समझने और विश्लेषण करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

- उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन उपनिवेशवाद के प्रभावों के विश्लेषण पर केंद्रित

3.4.1.1 उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन की प्रमुख अवधारणाएँ -

- यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रभाव के बारे में जागरूकता।
- जातीय, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वायत्तता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष
- सांस्कृतिक विविधता और संकरता के बारे में अधिक जागरूकता।

उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन विभिन्न विषयों के विद्वानों द्वारा वैश्विक परिप्रेक्ष्य से यूरोपीय उपनिवेशवाद की विरासत को समझने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रिटेन, यूरोप जैसे राष्ट्रों ने अफ्रीका, एशिया एवं लेटिन अमेरिका जैसे तीसरी दुनिया के राष्ट्रों को उपनिवेश बनाकर अपने अधीन रखा। उपनिवेश अथवा उपनिवेश Colony बने राष्ट्रों पर इसका असर उनकी संस्कृति पर भी पड़ा। उन राष्ट्रों के इतिहास एवं साहित्य पर भी इस गुलामी का असर पड़ा जिसका अध्ययन पोस्ट कोलोनियल स्टडीज़

में होता है। प्रमोद.के.नायर लिखते हैं –

- यूरोपीय उपनिवेशवाद की विरासत को समझने का प्रयास

'Post colonial Theory is a method of interpreting, reading and critiquing the cultural practices of colonialism where it proposes that the exercise of colonial power is also the exercise of raciality determined powers of representation.'

पश्चिमी साम्राज्यवाद की प्रतिक्रिया के कारण पूर्वी देशों में स्थानकवाद की योजना बनी है। जाति के निर्माण में पश्चिमी दृष्टि की योजना साफ झलकती है। उत्तर औपनिवेशिक सिध्दान्त के स्थापकों में एडवर्ड सईद सबसे प्रमुख है। 1978 में उनकी रचना Orientalism (पौर्वात्यवाद) के प्रकाशन ने उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन की शुरूआत की।

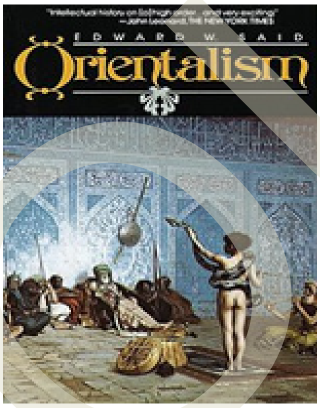

- उत्तर औपनिवेशिक सिध्दान्त के स्थापकों में एक है एडवर्ड सईद

Orientalism में सईद पश्चिम की आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि पश्चिम हमेशा पूर्व (Orient) को अपने से निम्न स्तर का एवं असभ्य, जंगली एवं अज्ञान मानते हैं। पूर्वी राज्यों के इतिहास की रचना पश्चिम के लोगों ने की है जिस पर पुनर्व्याख्या करना ज़रूरी है। पूर्व के ज्ञान को नज़र अन्दाज़ किया गया है और उसके साहित्य की विशेषताओं पर अध्ययन करना समय की माँग है अतः उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन ने उत्तर-आधुनिक युग में ज़ोर पकड़ा। एडवर्ड सईद के अलावा उत्तर औपनिवेशिक सिध्दान्त को जोर देने वाले अन्य विद्वान थे गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक एवं होमी.के.बाबा। इनकी रचनाओं से प्रभावित होकर ही भारत जैसे राज्यों में दलित साहित्य एवं आदिवासी साहित्य इतनी फल फूल सर्की।

एक सिद्धांत के रूप में उत्तर-औपनिवेशिकतावाद तीन व्यापक चरणों से गुज़रा है - और आगे भी ज़ारी है।

1. उपनिवेशित राज्य में रहने के कारण उत्पन्न सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक हीनता के बारे में जागरूकता
2. जातीय, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वायत्तता के लिए संघर्ष
3. सांस्कृतिक अतिव्यापन और संकरता (उपनिवेशवादोत्तर) के बारे में बढ़ती जागरूकता।

- उत्तर-औपनिवेशिकता का पता लगाने के लिए एक सख्त ऐतिहासिक सीमांकन नहीं

उत्तर-औपनिवेशिकता को उपनिवेशवाद की निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है। वस्तुतः उत्तर-औपनिवेशिक शब्द का उपयोग उपनिवेशवाद के दौरान और उसके बाद की अवधि को सीमांकित करने के लिए किया जाता है हालांकि उत्तर-औपनिवेशिकता का पता लगाने के लिए एक सख्त ऐतिहासिक सीमांकन संभव नहीं है।

3.4.1.2 उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन के प्रमुख मुद्दे

- ▶ उत्तर-औपनिवेशिक इतिहास, अर्थव्यवस्था, विज्ञान और संस्कृति पर उपनिवेशवाद का प्रभाव।
- ▶ उपनिवेशित समाजों की सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ

- साहित्य में तीसरी दुनिया के साहित्य को उत्तर-औपनिवेशिक के रूप में

साहित्य में तीसरी दुनिया के साहित्य को उत्तर-औपनिवेशिक के रूप में पहचाना जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कई तीसरी दुनिया के देश यूरोपीय शक्तियों के पूर्व उपनिवेश रहे हैं। जब इन पूर्व उपनिवेशों ने राष्ट्र का दर्जा प्राप्त कर लिया, तो उन्हें उत्तर-औपनिवेशिक कहा जाता है, भले ही उनमें उपनिवेशवादी के अवशेष हों। पूर्व में उपनिवेशित राष्ट्रों के साहित्य और संस्कृति के अध्ययन के पूरे क्षेत्र को उत्तर-औपनिवेशिकतावादी अध्ययन के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

3.4.1.3 कॉमिक्स स्टडीज़ (Comics Studies)

- कॉमिक कलाकारों का दावा-'सचित्र साहित्य का यह रूप गंभीर ध्यान देने योग्य'

कॉमिक्स निसंदेह कला का वह रूप है, जो शब्दों और चित्रों को एक साथ जोड़ता है और इस तरह उस पृष्ठ को जीवंत कर देता है जिस पर वे छपे हैं। कॉमिक कला और कहानी कहने का एक अनूठा मिश्रण है, जहाँ कला कहानी को ऐसे तरीके से बोलने में मदद करती है जो अकेले शब्दों से नहीं हो सकता। अख़बारों के पिछले पन्नों से जन्मी कॉमिक्स को आज हम जिस रूप में जानते हैं, उसे 'वास्तविक' लेखों के पूरक के रूप में एक नवीनता के रूप में डिज़ाइन किया गया था। तब से, 'कॉमिक बुक' और 'ग्राफ़िक उपन्यास' ने आकार लिया है और कई कॉमिक कलाकारों का दावा है कि सचित्र साहित्य का यह रूप गंभीर ध्यान देने योग्य है। कॉमिक पुस्तकों में कलाकृति पारंपरिक कार्टून शैली की कला से लेकर अधिक यथार्थवादी और विस्तृत कला तक भिन्न होती है। प्रत्येक कलाकार की अपनी शैली होती है और कलाकृति का उपयोग पात्रों की भावनाओं को व्यक्त करने या पूरी कहानी का स्वर निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है। कलाकृति के अलावा, कॉमिक पुस्तकों में अक्सर दिलचस्प कहानियाँ होती हैं। कहानी गंभीर से लेकर हास्यपूर्ण तक हो सकती है और उसमें विज्ञान कथा, फेंटसी, डरावनी और कई अन्य तत्व शामिल हो सकते हैं। कॉमिक्स पुस्तकों की लोकप्रियता का एक कारण यह कला रूप ही है।

3.4.1.3.1 पलायनवाद

कॉमिक्स पाठकों को रोज़मर्रा की ज़िंदगी की भागदौड़ से दूर ले जाती हैं। इन कहानियों में ऐसे नायक होते हैं जो बुरी ताकतों से लड़ते हैं, जिससे पाठकों को रोमांच

- पाठकों को वास्तविकता से परे एक नई दुनिया की सैर कराती हैं

और कल्पनाशील दुनिया का अनुभव मिलता है। ये अलौकिक शक्तियों और अद्‌भुत जीवों से भरी होती हैं, जो पाठकों को वास्तविकता से परे एक नई दुनिया की सैर कराती हैं। यही पलायनवाद कॉमिक्स को इतना लोकप्रिय बनाता है और पाठकों को आत्मविश्वास और प्रेरणा प्रदान करता है। इसके अलावा, ये बचपन की यादों को भी ताज़ा करने का एक शानदार माध्यम हैं।

- कॉमिक्स किताबें फिल्मों, टेलीविज़न और मीडिया को प्रेरित

कॉमिक्स बनाने वालों ने पॉप संस्कृति को आकार देने में अहम भूमिका निभाई है। हालांकि इन्हें पहले सिर्फ बच्चों के मनोरंजन का साधन माना जाता था, लेकिन अब इन्हें कला और कहानी कहने के एक व्यापक रूप में स्वीकार किया जाता है। कॉमिक्स किताबें फिल्मों, टेलीविज़न और मीडिया को प्रेरित करती हैं, जिससे इनके पात्र पहले से अधिक लोकप्रिय हो गए हैं। इस बढ़ते प्रभाव ने कॉमिक्स के इर्द-गिर्द एक नई अपसंस्कृति को जन्म दिया है।

- कॉमिक्स के इतिहास, सिद्धांत, सौंदर्यशास्त्र, समाजशास्त्र और विपणन से जुड़ा है।

कॉमिक्स अध्ययन अब एक गंभीर अकादमिक क्षेत्र बन चुका है, जिसमें कॉमिक पुस्तकें, स्ट्रिप्स, ग्राफिक उपन्यास, एनीमेशन, डिजिटल मीडिया और फिल्म शामिल हैं। यह अध्ययन कॉमिक्स के इतिहास, सिद्धांत, सौंदर्यशास्त्र, समाजशास्त्र और विपणन से जुड़ा होता है। अब इसे इतिहास, साहित्य, मीडिया, कला, समाजशास्त्र और अन्य विषयों के साथ जोड़ा जा रहा है। पहले इन्हें कम प्रासंगिक समझा जाता था, लेकिन अब विद्वान इन्हें जटिल और अध्ययन योग्य ग्रंथों के रूप में देख रहे हैं।

- 1950 कॉमिक्स के अध्ययन का 'स्वर्ण युग' माना जाता है।

1990 के दशक से कॉमिक्स अध्ययन एक सक्रिय शोध क्षेत्र बन गया है, जिसमें कई पुस्तकें, पत्रिकाएँ और सम्मेलन शामिल हैं। इस क्षेत्र में 1954 में फ्रेड्रिक वर्थाम्स की 'Seduction of The Innocent' एक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है, जिसने कॉमिक्स के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण को जन्म दिया। पहले कॉमिक्स को 'निम्न कला' माना जाता था, लेकिन इस रचना के बाद कॉमिक्स लेखन और अध्ययन को गहराई से देखने की प्रवृत्ति बढ़ी। इसके बाद 'Comics Code' नामक संहिता बनाई गई, जिससे कॉमिक्स के लिए एक मानक स्थापित हुआ। 1950 के दशक में कॉमिक्स अध्ययन इतना महत्वपूर्ण हो गया कि अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इसके लिए छात्रवृत्तियाँ भी दी जाने लगीं।

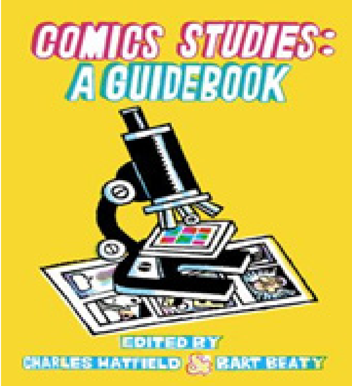

Comics Studies: A Guidebook कॉमिक्स स्टडीज़: ए गाइडबुक इस बहुमुखी क्षेत्र का एक समृद्ध लेकिन संक्षिप्त परिचय प्रदान करता है, जिसे कई विषयों के प्रमुख विशेषज्ञों द्वारा लिखा गया है। यह कॉमिक्स अध्ययन के लिए विविध प्रवेश द्वार खोलता है, जिसमें इतिहास, रूप, दर्शक, शैली और सांस्कृतिक, औद्योगिक और आर्थिक संदर्भ शामिल हैं। अनुभवी और नए कॉमिक्स विद्वानों के लिए एक अमूल्य वन-स्टॉप संसाधन, यह गाइडबुक समकालीन कॉमिक्स छात्रवृत्ति में अत्याधुनिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है।

- कॉमिक्स स्टडीज़: ए गाइडबुक - कॉमिक्स अध्ययन के लिए विविध प्रवेश द्वार खोलता है।

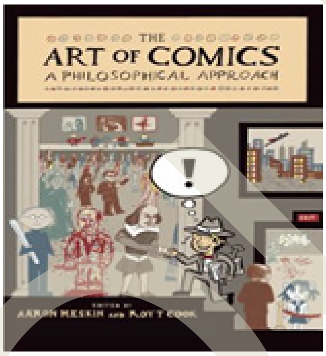

3.4.1.3.2 कॉमिक्स की कला: एक दार्शनिक परिचय

यह पुस्तक कॉमिक्स से जुड़े दार्शनिक प्रश्नों पर केंद्रित अंग्रेजी निबंधों का पहला संग्रह है। इसमें दस गहन निबंध शामिल हैं, जिनमें प्रसिद्ध कॉमिक्स लेखक वारेन एलिस की प्रस्तावना भी है। पुस्तक में कॉमिक्स की परिभाषा, उनकी शैलियों, अन्य कलाओं (जैसे फिल्म और साहित्य) से संबंध, शब्दों और चित्रों के संयोजन, लेखकत्व, भाषा और तत्वमीमांसा जैसे विषयों पर चर्चा की गई है।

- दस गहन निबंध शामिल

सह-संपादकों ने इसमें कॉमिक्स का संक्षिप्त इतिहास और उनके दर्शन पर मौजूदा शोध का अवलोकन भी प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक न केवल कॉमिक्स पर दार्शनिक अध्ययन को आगे बढ़ाती है, बल्कि कला दर्शन में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

- नॉस्टाल्जिया और कॉमिक्स

कॉमिक्स दशकों से पाठकों के दिलों में खास जगह बनाए हुए हैं। कई लोग बचपन में पढ़ी गई कॉमिक्स और उनके पात्रों को आज भी याद करते हैं। कॉमिक्स का हर नया पन्ना उनके लिए पुरानी यादों को ताजा करने और नए रोमांच में डूबने का जरिया बन जाता है।

3.4.1.4 कल्चर स्टडीज़ (Culture Studies)

सांस्कृतिक अध्ययन अथवा (Culture Studies) अध्ययन का एक अपेक्षाकृत नया अंतःविषय क्षेत्र Interdisciplinary area है जो युद्ध के बाद के वर्षों में यू के United Kingdom में अस्तित्व में आया। इस अध्ययन को अंतः विषय माना जाता है क्योंकि यह शिक्षा के कई क्षेत्रों से लिया जाता है। यह क्षेत्र समाजशास्त्र, नृविज्ञान, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन, साहित्य, संचार और बहुत कुछ के मिश्रण से बना है।

- साँस्कृतिक अध्ययन एक अकादमिक क्षेत्र

साँस्कृतिक अध्ययन एक अकादमिक क्षेत्र है जो इस बात की जाँच करता है कि समय के साथ संस्कृतियाँ कैसे बदलती हैं। संस्कृति में शक्ति की भूमिका क्या होती है और लोग अपने दैनिक जीवन के निर्माण में किस प्रकार भाग लेते हैं इसकी जाँच भी करता है।

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सांस्कृतिक अध्ययन में इतने सारे अलग-अलग विषय शामिल हैं, क्योंकि संस्कृति शायद सबसे बड़े विषयों में से एक है। इसलिए, इससे पहले कि हम सांस्कृतिक अध्ययन, इतिहास और सिद्धांतों में आगे बढ़ें, आइए पहले देखें कि संस्कृति से हमारा क्या मतलब है। जब आप संस्कृति के बारे में सोचते हैं तो सबसे पहले आपके दिमाग में भोजन, संगीत, धर्म, कपड़े, खेल, भाषा और सामाजिक नियम आते हैं। वास्तव में संस्कृति में ये सभी चीज़ें और भी बहुत कुछ शामिल है। संस्कृति वह सब कुछ है जो एक व्यक्ति, लोगों के समूह, लोगों के एक राष्ट्र या यहाँ तक कि पूरी मानवता के लिए 'जीवन जीने का तरीका' बनाती है। सांस्कृतिक अध्ययन में संस्कृति के बारे में बात करते समय याद रखने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृति एक प्रक्रिया है, जिसका अर्थ है कि यह कभी एक स्थान पर नहीं रहती है- यह हमेशा बदलती और विकसित होती रहती है।

- संस्कृति एक प्रक्रिया है-हमेशा बदलती और विकसित होती रहती है।

3.4.1.5 सांस्कृतिक अध्ययन का इतिहास

एक अनुशासन के रूप में सांस्कृतिक अध्ययन 1960 के दशक में कई विद्वानों की मदद से उभरा। स्टुअर्ट हॉल (Stuart Hall), रिचर्ड हॉगर्ट (Richard Hoggart) और रेमंड विल्यम्स (Raymond Williams)आदि को इस क्षेत्र का मुख्य संस्थापक माना जाता है। तीनों ही व्यक्ति अंग्रेज़ी साहित्य में प्रशिक्षित थे। तीनों को लगा कि सांस्कृतिक अध्ययन को अकादमिक लेबल देना ज़रूरी है। उनको लगा कि समाज के निचले तबके के लोगों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की सांस्कृतिक प्रथाओं और रीति रिवाज़ों का अध्ययन ज़रूरी था। जिनका अक्सर शक्तिशाली सामाजिक वर्गों या राजनीतिक अभिजात वर्ग का कोई नाता नहीं था। इन विद्वानों ने तर्क दिया कि संस्कृति एक बहुत अधिक सूक्ष्म और जटिल अवधारणा थी और इसके विकास को पूरी तरह समझने के लिए समाज के भीतर कई तत्वों का विश्लेषण करने की आवश्यकता थी। सांस्कृतिक अध्ययन शब्द रिचर्ड हॉगर्ट द्वारा 1964 में गढ़ा गया था। उनका लक्ष्य यह समझाना था कि संस्कृति कैसे विकसित होती है और कैसे सुधार किए जा सकते हैं। एक अकादमिक अध्ययन के क्षेत्र में सांस्कृतिक अध्ययन की शुरुआत में एक महत्वपूर्ण क्षण तब आया जब रिचर्ड हॉगर्ट ने 1964 में ब्रिटेन में बर्मिंघम विश्वविद्यालय (University of Birmingham) नामक समकालीन सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र (Centre for Contemporary Cultural Studies) की स्थापना की।

- 1964 में ब्रिटेन में - (बर्मिंघम विश्वविद्यालय) समकालीन सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र

बर्मिंघम केंद्र सांस्कृतिक अध्ययन, अनुसंधान और आधुनिक संस्कृति की आलोचना के लिए समर्पित था। यह केन्द्र अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक अध्ययन के बर्मिंघम स्कूल के रूप में जाना जाता है। यह सांस्कृतिक अध्ययन का दुनिया का प्रथम संस्थागत क्षेत्र बना। इसने सांस्कृतिक अध्ययन के शैक्षणिक क्षेत्र की शुरुआत को चिह्नित किया।

Centre for Contemporary Cultural Studies इसलिए अभूतपूर्व था क्योंकि इसने इस विचार को चुनौती दी कि केवल अभिजात वर्ग की उच्च संस्कृति ही विश्लेषण के लायक है। बर्मिंघम समूह के शोधकर्ताओं और सिद्धांतकारों ने अपने समय की सामाजिक आलोचनाएँ विकसित की जो एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन में विकसित हुई। वे समाज और उसके विभिन्न समूहों पर मीडिया के प्रभावों के साथ-साथ राजनीतिक और आर्थिक कारकों एवं सांस्कृतिक रूपों पर उनके प्रभावों का अध्ययन करने वाले पहले लोगों में से थे। उन्होंने अध्ययन किया कि सांस्कृतिक संदेशों को कैसे प्राप्त किया जाता है और इसके संदर्भ में लिंग, जाति, विचारधारा, वर्गऔर बहुत कुछ की भी जाँच की गई। उन विद्वानों ने तर्क दिया कि निम्न लोकप्रिय संस्कृति और जनसंचार माध्यम - जैसे विज्ञापन और टी वी शॉ भी शोध और अन्वेषण के लिए अर्थपूर्ण हैं।

- विज्ञापन और टी वी शॉ शोध और अन्वेषण के लिए अर्थपूर्ण

3.4.1.6 सांस्कृतिक अध्ययन सिद्धांत

सांस्कृतिक अध्ययनों में, पाठ सिर्फ लिखित सामग्री से कहीं ज्यादा होते हैं। सांस्कृतिक पाठ कुछ भी हो सकते हैं जो अर्थ व्यक्त करने के लिए बनाऐ गए हों, जैसे भाषण, विज्ञापन, रेडियो शॉ, तस्वीरें, भोजन और फैशन विकल्प। सांस्कृतिक अध्ययन इस बात की जाँच करता है कि वर्ग, जातीयता, लिंग, नस्ल, विचारधारा, राष्ट्रीयता आदी के पालन के साथ सामाजिक संरचनाओं में अर्थ कैसे बनाया जाता है। उत्तर-आधुनिक युग में साहित्य अध्ययन के पारम्परिक ढाँचे बदल गए हैं। साहित्य के साथ संस्कृति का अध्ययन प्रचार में आ गया है। ब्रिटेन और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में 1960 के आस-पास Cultural Studies नामक विभाग शुरु हुआ। भारत में कुछ साल बाद ही सही जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली का भाषा केन्द्र का नामकरण 'Centre for Language and Culture' कर दिया गया। भाषा का अध्ययन संस्कृति का ही अध्ययन है और दोनों एक दूसरे में आते-जाते हैं। भाषाओं के साथ संस्कृति का अध्ययन जोड़ा है तो ज़रूर कुछ कारण होगा। साहित्य के साथ जनसंचार (Mass Communication) और पॉपुलर कल्चर (Popular Culture) के अध्ययन की बातें अब होने लगी हैं।

- उत्तर-आधुनिक युग में साहित्य अध्ययन के पारम्परिक ढाँचे बदल गए

कल्चर स्टडीज़ के बारे में एम.ए.आर हबीब का कहना हैं - पारम्परिक साहित्यिक अध्ययन में काव्य, उपन्यास, नाटक जैसे अनेक परिचित विधाओं का ही अध्ययन किया जाता था। वहाँ फिल्म, विज्ञापन आदि को 'निम्न कला' (Low Art) अथवा निचले दर्जे का माना जाता था। लेकिन उत्तर-आधुनिक युग में इन सब को साहित्य के साथ शामिल किया जाता है और 'कल्चुरल स्टडीज़'(Cultural Studies) नामकरण दिया गया है।

- काव्य, उपन्यास, नाटक जैसे अनेक परिचित विधाओं का अध्ययन किया जाता

साहित्य के साथ संस्कृति का अध्ययन एक शुभ सूचना है। क्योंकि अब तक 'उच्च कला' High Art और 'निम्न कला' Low Art दो वर्गों में कला को बाँटा गया था। उच्च संस्कृति बनाम निम्न संस्कृति का क्या अर्थ है उच्च और निम्न संस्कृति के बीच का अंतर हाल ही तक शिक्षा जगत में एक प्रमुख विचार रहा है। उच्च संस्कृति को कला, साहित्य और संगीत से मिलकर देखा जाता था, जिसे सबसे अधिक शिक्षित विचारकों

> ● कल्चर स्टडीज़ में उच्च कला और निम्न कला दोनों को शामिल किया

और रचनात्मक लोगों का (और अक्सर उच्च वर्ग) प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता था। दूसरी ओर निम्न संस्कृति को बाकी सभी का प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता थाः कम शिक्षित और श्रमिक वर्ग। फलस्वरूप केवल उच्च कला (जैसे काव्य, नाटक, उपन्यास आदि) को ही श्रेष्ठ समझा जाता था और उनका अध्ययन होता था जबकि 'निम्न कला' Low Art (Film, TV Serial) आदि पर गहन अध्ययन नहीं होता था। लेकिन कल्चर स्टडीज़ में उच्च कला और निम्न कला दोनों को शामिल किया गया है। उच्च संस्कृति बनाम निम्न संस्कृति का क्या अर्थ है उच्च और निम्न संस्कृति के बीच का अंतर हाल ही तक शिक्षा जगत में एक प्रमुख विचार रहा है। 'निम्न कला'(Low Art) को हाशिए पर धकेला गया था लेकिन आज 'निम्न कला' के उपभोक्ताओं की संख्या इतनी बढ़ गई है कि उसे नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। जनसंचार माध्यमों के संस्कृति पर असर को लेकर तमाम अध्ययन होने लगे 'उपभोक्ता संस्कृति' की व्याख्या होने लगी। 'सांस्कृतिक राजनीति' का अध्ययन होने लगा।

> ● मुख्य रूप से साहित्य का विश्लेषण करने का तरीका

साहित्य में सांस्कृतिक अध्ययन का महत्व इस बात में है कि वह जाँच करता है कि साहित्य किस प्रकार संस्कृति को प्रतिबिंबित करता है, प्रभावित करता है। यह मुख्य रूप से साहित्य का विश्लेषण करने का तरीका है जिसके तहत उसके सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ पर विचार करके इस बात की जाँच करता है कि साहित्य किस प्रकार संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है एवं प्रभावित होता है। साहित्य में सांस्कृतिक अध्ययन का उपयोग कैसे किया जाता है-विद्वान इस बात की जाँच करते हैं कि साहित्य किस प्रकार जाति, लिंग, वर्ग जैसे मुद्दों से जुड़ता है। और यह समझने के लिए करते हैं कि साहित्य किस प्रकार सांस्कृतिक विमर्श में भाग लेता है तथा उसे आकार देता है।

> ● सांस्कृतिक अध्ययन अकादमिक अध्ययन का एक क्षेत्र

सांस्कृतिक अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह लोगों को यह समझने में मदद करता है कि उनके और अन्य समूहों के बारे में कुछ दृष्टिकोण और विश्वास कहाँ, क्यों और कैसे निर्मित हुए हैं। यह ज्ञान सामाजिक संबंधों और सत्ता संरचनाओं को बेहत्तर बनाने में मदद कर सकता है। दूसरे शब्दों में सांस्कृतिक अध्ययन का क्षेत्र यह समझने का प्रयास करता है कि संस्कृति कैसे और क्यों संगठित और निर्मित होती है और समय के साथ ये तत्व कैसे बदलते हैं। यह क्षेत्र महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक संरचनाओं, व्यवहारों और दृष्टिकोणों में अंतर्दृष्टि डालने में मदद करता है और आलोचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करता है। यह समझना कि संस्कृति कैसे विकसित होती है और बनाई जाती है संभावित रूप से अधिक लोगों के लिए भविष्य को बेहतर बनाने में मदद कर सकती है। मूलतः सांस्कृतिक अध्ययन अकादमिक अध्ययन का एक क्षेत्र है जो निम्नलिखित पर विचार करता है -

- संस्कृति का सृजन, रख रखाव और पुनरुत्पादन कैसे किया जाता है।
- संस्कृति, शक्ति और सामाजिक पहचान (जैसे जातीयता, नस्ल, लिंग, कामुकता, वर्ग आदि के बीच संबंध।

3.4.1.7 फिल्म स्टडीज़ (Film Studies)

फिल्म या सिनेमा जनसंचार का एक सशक्त और प्रभावकारी माध्यम है। दृश्य-श्रव्य होने के कारण यह दर्शक पर और जल्दी असर डालता है। सत्यजित रे के शब्दों में - फिल्म चित्र है, फिल्म शब्द है, फिल्म आंदोलन है, फिल्म नाटक है, फिल्म संगीत है, फिल्म एक कहानी है, फिल्म हज़ारों अभिव्यक्तिपूर्ण श्रव्य एवं दृश्य आख्यान है। फिल्म स्टडीज़ अथवा फिल्म अध्ययन एक अकादमिक अनुशासन के रूप में 20वीं सदी में उभरा, मॉशन पिक्चर्स के आविष्कार के दशकों बाद। फिल्म निर्माण के तकनीकी पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, फिल्म अध्ययन फिल्म सिद्धांत पर केंद्रित है जो फिल्म को एक कला के रूप में आलोचनात्मक रूप से देखता है।

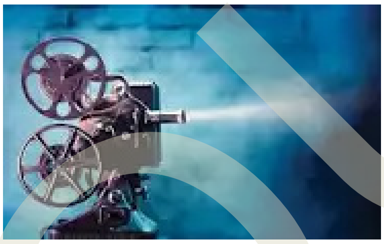

फिल्म अध्ययन एक अंतःविषय (Interdisciplinary) क्षेत्र है जो एक कला रूप और सांस्कृतिक कलाकृति के रूप में फिल्म के महत्वपूर्ण विश्लेषण, इतिहास और सिद्धांत पर ध्यान केंद्रित करता है। फिल्म अध्ययन के तहत छात्र कथा संरचना, दृश्य सौंदर्यशास्त्र और सिनेमा के सामाजिक प्रभावों से अवगत होते हैं। साथ ही संस्कृति को आकार देने में फिल्मों की भूमिका को पूरी तरह समझ पाते हैं। 1919 में स्थापित, मॉस्को फिल्म स्कूल फिल्म पर ध्यान केंद्रित करने वाला दुनिया का पहला स्कूल था। फिल्म को 'निम्न कला' के अन्तर्गत न रखकर साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र में लाया गया है। फिल्म को एक कला रूप माना गया है। 1970 तक आते-आते Film Studies को Cultural and Literary Theory के अंतर्गत पढ़ाया जाने लगा। फिल्मों के अध्ययन हेतु फिल्म सिध्दांत की स्थापना हुई जो सांस्कृतिक आलोचना शास्त्र के अन्तर्गत ठहरता है। बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध डिजिटल क्रांति का युग था जिसके तहत फिल्म निर्माण एवं फिल्म अध्ययन ने एक नवीन मोड़ लिया।

- संस्कृति को आकार देने में फिल्मों की भूमिका को पूरी तरह समझते हैं

फिल्म का इतिहास 1860 से शुरु होता है जब फिल्म निर्माण के विविध सामग्रियों का निर्माण हुआ था खासकर चलने वाले बिम्बों का। फिल्म सिध्दान्त के प्रवर्तक रिक्कोटो कानुडो थे। उनकी रचना The Birth of the Seventh Art (1911) इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। फिल्म को काव्य एवं शिल्प के समकक्ष रखने का श्रेय लिन्डसे को जाता है। मन्स्टरबर्ग ने फिल्म को कथापात्र एवं निर्माता के मानसिक एवं वैज्ञानिक हलचलों का माध्यम माना। उन्होंने फिल्म के सौन्दर्य शास्त्र एवं उसके द्वारा दर्शक पर हो रहे मनोवैज्ञानिक बदलाव पर प्रकाश डाला। 1970 तक आते-आते Film Studies, Cultural and Literary Theory के अन्तर्गत पढ़ाया जाने लगा। फिल्म स्टडीज़ में फिल्म की भाषा चर्चा का विषय बना। फिल्मों में प्रयुक्त बिम्बों एवं कोडों (Codes) का

- फिल्म सिध्दान्त के प्रवर्तक रिक्कोटो कानुडो

अध्ययन होने लगा। धीरे-धीरे फिल्मों में नारी की छवि पर गहन अध्ययन Feminists Critics ने शुरु किया। इस प्रकार फिल्म केवल मनोरंजन का माध्यम मात्र न रहकर संस्कृति एवं अध्ययन का वस्तु बना।

Ricciotto Canudo

फिल्म अध्ययन एक अकादमिक अनुशासन है जो सिनेमा को एक कला रूप और एक माध्यम के रूप में विभिन्न दृष्टिकोणों से परखता है। फिल्म अध्ययन का काम फिल्म निर्माण में दक्षता बढाना नहीं है बल्कि सिनेमा के कथात्मक, कलात्मक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक निहितार्थो की खोज से है। फिल्म अध्ययन छात्रों को सिनेमा की आवश्यक शब्दावली से परिचित कराने के बाद, एक विशिष्ट सांस्कृतिक उत्पाद के रूप में फिल्म की अंतःविषयता स्थापित करने के लिए साहित्य, रंगमंच, संगीत, फोटोग्राफी जैसे अन्य शैलियों के साथ सिनेमा के संबंधों पर विस्तार से चर्चा करती है।

- 1920 के दशक में गति चित्रों की औपचारिक विशेषताओं पर सवाल उठाकर शुरू हुआ।

फिल्म सिद्धांत को सामान्य फिल्म आलोचना या फिल्म इतिहास के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, हालांकी ये तीन विषय आपस में जुड़े हुए हैं। फिल्म सिद्धांत 1920 के दशक में गति चित्रों की औपचारिक विशेषताओं पर सवाल उठाकर शुरू हुआ। वह समाज के साथ फिल्म के संबंधों को समझने के लिए वैचारिक रूप-रेखा प्रदान करता है। 1960 और 1970 के दशक में फिल्म सिद्धांत ने मनोविश्लेषण, भाषा विज्ञान, साहित्यिक सिद्धांत जैसे स्थापित विषयों से अवधारणाओं को आयात करते हुए शिक्षा

जगत में अपना स्थान बना लिया था। 1990 के दशक के दौरान छवि प्रौद्योगिकियों में डिजिटल क्रांति ने फिल्म सिद्धांत को विभिन्न तरीकों से प्रभावित किया।

3.4.1.8 जेंडर स्टडीज़ (Gender Studies)

- उत्तर-आधुनिक सिध्दान्त जेंडर को एक अस्थायी कर्म मानते हैं

उत्तर-आधुनिक युग में लिंग के आधार पर स्त्री, पुरुष वर्गीकरण मान्य न था। बदले में जेंडर (Gender) की अवधारणा सामने आयी। 'लिंग' को जैविक अथवा Biological आधार माना जाता है जबकि 'जेंडर' सामाजिक आधार पर निश्चित किया जाता है। उत्तर-आधुनिक सिध्दान्त जेंडर को एक अस्थायी कर्म मानते हैं। उसे स्थायी नहीं माना जा सकता क्योंकि वह निरन्तर बदलता रहता है। जेंडर को एक अध्ययन के रूप में उत्तर-आधुनिक युग के विद्वानों ने शुरु किया।

- जेंडर स्टडीज़ का अर्थ इस बात के आलोचनात्मक विश्लेषण में निहित है

जेंडर स्टडीज़ का दायरा बहुत बड़ा है, जो इस बात की व्यापक खोज करता है कि लिंग किस तरह से जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है, जिसमें काम, परिवार, शिक्षा, राजनीति और स्वास्थ्य शामिल है। जेंडर संबंधी अध्ययनों का महत्व लिंग असमानता के तंत्र पर आधारित है और इस बात पर केंद्रित है कि किस प्रकार लिंग मानदंड व्यक्तिगत व्यवहार और सामाजिक अपेक्षाओं को प्रभावित करते हैं। जेंडर स्टडीज़ मीडिया और कला में लिंग प्रतिनिधित्व, हिंसा और संघर्ष के लिंग आधारित आयाम और वैश्विक विकास में लिंग की भूमिका की आलोचनात्मक जांच करता है। यह ज्ञान नीति - निर्माण, शिक्षा और सक्रियता को सूचित करने के लिए आवश्यक है और इसे अक्सर अकादमिक पत्रिकाओं और रिपोर्टों जैसे व्यापक संसाधनों में समाहित किया जाता है। जेंडर स्टडीज़ का अर्थ इस बात के आलोचनात्मक विश्लेषण में निहित है कि लिंग किस तरह से व्यक्तिगत पहचान को आकार देता है, सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित करता है और सांस्कृतिक मानदंडों को ढालता है।

- मानव व्यवहार और सामाजिक विकास की व्यापक समझ केलिए जेंडर स्टडीज़

जेंडर स्टडीज़ की जड़ें 1960 और 1970 के दशक के महिला मुक्ति आंदोलन में निहित है, जिसने पारंपरिक लिंग भूमिकाओं को चुनौती दी और महिलाओं के अधिकारों की वकालत की। इस अवधि के दौरान, विद्वानों ने सवाल उठाना शुरू कर दिया कि लिंग एक जैविक तथ्य से अधिक एक सामाजिक निर्माण है। उन्होंने तर्क दिया कि लिंग सांस्कृतिक रूप से निर्मित और सामाजीकरण प्रक्रिया के माध्यम से मजबूत किए गए अर्थों और प्रथाओं का एक जटिल जाल है। आज जेंडर स्टडीज़ समाजशास्त्र, नृविज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास, साहित्य और अन्य विषयों से आकर्षित होता है, जो मानव व्यवहार और सामाजिक विकास की व्यापक समझ में जेंडर स्टडीज़ की आवश्यकता को उजागर करता है।

- जेंडर स्टडीज़ एक अंतःविषय(Interdisciplinary) क्षेत्र है

जेंडर स्टडीज़ एक अंतःविषय (Interdisciplinary) क्षेत्र है जो जाति, जातीयता, कामुकता वर्ग और राष्ट्रीयता जैसे अन्य पहचान चिह्नों के साथ लिंग के जटिल अंतसंबद्ध की जाँच करता है। यह लोगों के अनुभवों, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों पर लिंग के प्रभाव की खोज करता है। यह क्षेत्र वर्षों से

विकसित हुआ है और आज इसमें कई तरह के विषय शामिल हैं, जिसमें पुरुषों की भूमिकाओं और पहचानों का अध्ययन, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अनुभव और सामाजिक निर्माण के रूप में लिंग की व्यापक अवधारणा शामिल है।

यह अध्ययन विशेष रूप से इन मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है।

- ▶ वैश्विक विकास में लिंग की भूमिका।
- ▶ हिंसा और संघर्ष के लिंग आधारित आयाम।

- जेंडर स्टडीज़ की उत्पत्ति महिला अध्ययन के क्षेत्र से

संक्षेप में कहें तो लिंग असमानता की गतिशीलता को समझने और लिंग समानता को बढ़ावा देने के लिए रणनीति विकसित करने के लिए जेंडर स्टडीज़ एक आवश्यक क्षेत्र है। जेंडर स्टडीज़ की उत्पत्ति महिला अध्ययन के क्षेत्र से हुई। अब यह समलैंगिक अध्ययन और पुरुष अध्ययन के साथ ओवरलैप हो गया है। जेंडर स्टडीज़ के अन्तर्गत समलैंगिकों का अध्ययन आता है जिसमें Gay Studies और Lesbian Studies आते हैं। इसमें समलैंगिकों के द्वारा लिखित रचनाओं पर अध्ययन होता है।

3.4.1.9 गेय स्टडीज़ (Gay Studies)

- समाज की मुख्य धारा में केवल स्त्री एवं पुरुष को ही स्थान

1970 के आस-पास गेय स्टडीज़ एहम् मुद्दा बनने लगा। गेय स्टडीज़ से पहले 'Gay Rights Movement' की शुरुआत 1969 में हो चुकी थी। न्यू योर्क में 'Stone Wall' नामक जगह में पुलिस ने गेय समारोह पर लाठी चार्ज बरसाया और उस हादसे के बाद समलैंगिक संगठित होने लगे। साहित्यिक रचनाओं में या तो उनका जिक्र नहीं किया जाता था या फिर उनकी भावनाओं को छिपाया जाता था। क्योंकि समाज की मुख्य धारा में केवल स्त्री एवं पुरुष को ही स्थान था। Gay Studies में उन पुरुष समलैंगिकों के जीवन अनुभव सामने आने लगे जिसके बारे में अब तक किसी को ज्ञान ही न था।

3.4.1.10 लेस्बियन स्टडीज़ (Lesbian Studies)

समलैंगिक अध्ययन जिसे क्वीर अध्ययन या LGBTQ अध्ययन के रूप में भी जाना जाता है, लिंग पहचान और यौन पहचान के अध्ययन के रूप में जाना जाता है। इसमें समलैंगिक, उभयलिंगी, ट्रांसजेंडर और अन्य विचित्र लोगों Queer और संस्कृतियों का अध्ययन शामिल है। समलैंगिक सिद्धांतकार लिंग और कामुकता को सामाजिक संरचना के रूप में देखते हैं। वे इस विचार को चुनौती देते हैं कि विषमलैंगिकता सामान्य है। क्वीर अध्ययन एक ऐसा क्षेत्र है जो लिंग की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देता है। वे निम्न बातों पर विचार करते हैं-

- ▶ लिंग और यौन पहचान सामाजिक रूप से कैसे निर्मित होती है।
- ▶ मानक श्रेणियों पर प्रश्न उठना।
- ▶ समलैंगिक होने का जीवन, इतिहास और धारणा।

▶ पहचान की तरलता और बहुलता पर ज़ोर देना।

▶ इस धारणा को चुनौती देना कि विषमलैंगिकता सामान्य है।

- जूडिथ बटलर के अनुसार लिंग एक कल्पना है, आंतरिक छवियों का एक सेट है

कुछ उल्लेखनीय समलैंगिक सिद्धांतकारों में मिशेल फूको, ग्लोरिया एन्जाल्दुआ, ईव कोसोफस्की और जूडिथ बटलर शामिल हैं। सबसे महत्वपूर्ण समकालीन क्वीर सिद्धांतकारों में से एक जूडिथ बटलर हैं, जिनके जेंडर ट्रबल पर पुस्तक में लिंग और कामुकता के बारे में सांस्कृतिक मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाने के लिए फ्रॉयडिय मनोविश्लेषण की अवधारणाओं का उपयोग किया गया है। जूडिथ बटलर के अनुसार लिंग एक कल्पना है, आंतरिक छवियों का एक सेट है, न कि शरीर और उसके अंग विन्यास द्वारा नियंत्रित गुणों का एक सेट। बल्कि लिंग आंतरिक संकेतों का एक सेट है, जो मानसिक रूप से शरीर पर किसी की पहचान की मानसिक भावना पर लगाया जाता है।

1920 के दशक के दौरान, कई बड़े अमरीकी शहरों में समान लिंग अपसंस्कृतियाँ अधिक स्थापित होने लगी थी।

- गेय' पुरुष समलैंगिक हैं और Lesbian स्त्री समलैंगिक

समलैंगिकों में दो वर्ग हैं - - Gays और Lesbians। 'गेय' पुरुष समलैंगिक हैं और Lesbian स्त्री समलैंगिक। मुख्यधारा समाज से ये दोनों ही वर्ग निष्कासित थे लेकिन 1970 तक आते आते पुरुष समलैंगिक Gays संगठित होने लगे लेकिन तब भी लेस्बियनों का अस्तित्व न के बराबर था।

इस नेगटीव अवधारणा के विरुध्द लेस्बियन स्टडीज़ उठ खड़ा हुआ। स्त्री और स्त्री के रिश्ता की वैधता प्रकट करते हुए, उसके साहित्य को मान्यता प्रकट करते हुए लेस्बियन स्टडीज़ की शुरुआत हुई।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन वैश्विक स्तर पर उपनिवेशवाद के स्थायी प्रभावों को समझने और विश्लेषण करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। उत्तर-औपनिवेशिकता को उपनिवेशवाद की निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है। 1990 के दशक से कॉमिक्स अध्ययन एक सक्रिय शोध क्षेत्र बन गया है, जिसमें कई पुस्तकें, पत्रिकाएं और सम्मेलन शामिल हैं। सांस्कृतिक अध्ययन में संस्कृति के बारे में बात करते समय याद रखने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृति एक प्रक्रिया है, जिसका अर्थ है कि यह कभी एक स्थान पर नहीं रहती है- यह हमेशा बदलती और विकसित होती रहती है। बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध डिजिटल क्रांति का युग था जिसके तहत फिल्म निर्माण एवं फिल्म अध्ययन ने एक नवीन मोड़ लिया। जेंडर स्टडीज़ की उत्पत्ति महिला अध्ययन के क्षेत्र से हुई। अब यह समलैंगिक अध्ययन और पुरुष अध्ययन के साथ ओवरलैप हो गया है। भाषा का अध्ययन संस्कृति का ही अध्ययन है और दोनों एक दूसरे में आते-जाते हैं।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. उत्तर औपनिवेशिकता क्या है एवं उसके अध्ययन के प्रमुख मुद्दे क्या-क्या हैं?
2. क्वीर सिद्धांत क्या है?
3. लेस्बियन स्टडीज़ का विकास कैसे हुआ?
4. 'लिंग' और 'जेंडर' में क्या अंतर है?
5. फिल्म अध्ययन के क्षेत्र में रिक्कोटो कानुडो का क्या योगदान है?
6. सांस्कृतिक अध्ययन में 'उच्च संस्कृति' और 'निम्न संस्कृति' के बीच क्या अंतर है?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. उत्तर-आधुनिकता उत्तर-संवाद - सं मुक्ता, नमन प्रकाशन, दिल्ली
3. उत्तर-आधुनिकता कुछ विचार - सं देव शंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन
4. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य - सं मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. विभक्ति और विखंडन - हिन्दी साहित्य में उत्तर-आधुनिक मोड़ - सुधीश पचौरी, अनंग प्रकाशन
2. आलोचना की छवियाँ - ज्योतिष जोशी, वाणी प्रकाशन
3. आलोचना का आत्म संघर्ष, संरवि रंजन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. उत्तर-औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य - प्रणय कृष्ण, हिन्दी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद

04

BLOCK

हिन्दी कथा साहित्य में उत्तर-आधुनिक शिल्पगत प्रयोग

Block Content

Unit 1	हिन्दी उपन्यास और उत्तराधुनिकता के बदलते संदर्भ
Unit 2	'तिरिछ' कहानी - उदय प्रकाश, तिरिछ कहानी में शिल्पगत प्रयोग, जादुई यथार्थवाद : अर्थ, परिभाषा, अवधारणा और आवश्यक तत्व
Unit 3	संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में
Unit 4	किन्नर विमर्श – मिथकों से अधिकारों तक

इकाई
1

हिन्दी उपन्यास और उत्तराधुनिकता के बदलते संदर्भ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उत्तर-आधुनिकतावाद के बारे में जानता है
- मनोहर श्याम जोशी के बहुआयामी व्यक्तित्व समझता है
- कुरु कुरु स्वाहा के कथ्यपरक और शिल्पगत प्रयोग जानता है
- बायस्कोपिक गद्य शैली जानता है
- सिनेमाई शिल्पगत प्रयोग से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

उत्तर-आधुनिकतावाद (पोस्टमॉडर्निज़्म) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विकसित एक बौद्धिक आंदोलन है, जो परंपरागत सत्य, तर्क और वस्तुनिष्ठता को चुनौती देता है। यह दर्शन, साहित्य, कला, वास्तुकला और संस्कृति सहित विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होता है। उत्तर-आधुनिकतावाद किसी एकल सत्य या सिद्धांत को स्वीकार करने के बजाय बहुलता, संदर्भ और व्याख्या की विविधता पर जोर देता है। यह आधुनिकतावादी आदर्शों की आलोचना करता है और भाषा, शक्ति और सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव को उजागर करता है। हिंदी साहित्य में समय-समय पर ऐसे उपन्यास लिखे गए हैं, जिन्होंने न केवल कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नवाचार किया, बल्कि पाठकों को भी एक नई सोच प्रदान की। मनोहरश्याम जोशी का 'कुरु कुरु स्वाहा' ऐसा ही एक अनूठा उपन्यास है, जो न केवल अपने कथ्य बल्कि शिल्पगत प्रयोगों के कारण हिंदी साहित्य में मील का पत्थर साबित हुआ। यह उपन्यास पारंपरिक कथा शैली से हटकर एक नवीन बायस्कोपिक गद्य शैली को अपनाता है और अमूर्तन की ओर बढ़ते हुए सिनेमाई तकनीकों का प्रभावी उपयोग करता है। जोशी के इस उपन्यास को अनुपन्यास भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें पारंपरिक कथात्मक संरचना को तोड़ते हुए एक नई शैली विकसित की गई है। जोशी ने इस उपन्यास में बायस्कोपिक गद्य शैली का प्रयोग किया है, जो सिनेमा की तकनीकों से प्रभावित है। यह उपन्यास साहित्य और सिनेमा के बीच की खाई को पाटने का प्रयास करता है। भाषा के स्तर पर भी यह उपन्यास एक क्रांतिकारी प्रयोग है। यह उपन्यास हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं के लिए अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि इसमें आधुनिक हिंदी उपन्यास की संभावनाओं को नए आयाम प्रदान किए हैं। प्रस्तुत अध्याय में उत्तराधुनिकता के परिवर्तनों को समझते हुए कुरु कुरु स्वाहा का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

बौद्धिक आंदोलन, सार्वभौमिक, नवाचार, अनूठा, मील का पत्थर, बायस्कोपिक गद्य शैली, पटकथा शैली, क्रांतिकारी प्रयोग, उत्तराधुनिकता

Discussion / चर्चा

उत्तराधुनिकता

- परंपरागत विचारधाराओं को तोड़कर नए दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देना

उत्तर-आधुनिकतावाद एक महत्वपूर्ण विचारधारा है, जो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विकसित हुई। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो समाज, संस्कृति, कला, राजनीति, साहित्य और दर्शन में तेजी से आए बदलावों को दर्शाती है। इसे ज्ञान की एक दशा भी कहा जाता है, जो परंपरागत विचारधाराओं को तोड़कर नए दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देती है।

- परंपरा और आधुनिकता दोनों को जोड़ने का प्रयास

उत्तर-आधुनिकता क्या है? - यह आधुनिकता के बाद की सोच है, जो परंपरा और आधुनिकता दोनों को जोड़ने का प्रयास करती है। इसमें बहुलतावाद (अनेक विचारों के सह-अस्तित्व) को स्वीकार किया जाता है और केंद्र में रहने वाली मुख्य धारा की जगह समाज के हाशिए पर मौजूद विचारों को महत्व दिया जाता है।

- साहित्य, समाज, विज्ञान और आम जीवन के अनेक क्षेत्रों में इसका प्रभाव

इसका प्रभाव कहाँ दिखता है?- उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव साहित्य, समाज, विज्ञान और आम जीवन के अनेक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। यह विचारधारा यंत्रों (टेक्नोलॉजी) के बढ़ते प्रभाव और बदलते समाज की मानसिकता से जुड़ी हुई है। यह एक प्रकार की बौद्धिक हलचल है, जिसने कई जटिल प्रश्नों को जन्म दिया है, जो आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

मुख्य विशेषताएँ:

- यह कोई निश्चित विचारधारा नहीं, बल्कि एक प्रवृत्ति है।
- यह परंपरागत और आधुनिक सोच के मेल की बात करती है।
- यह बहुलतावाद को स्वीकार करती है और केंद्र की बजाय हाशिए के विचारों को महत्व देती है।
- यह समाज और संस्कृति में बदलाव को दर्शाती है।

उत्तर-आधुनिकता बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उभरी एक विचारधारा है, जो पुराने विचारों को चुनौती देकर नए दृष्टिकोण अपनाने की बात करती है उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में उत्तर-आधुनिकतावाद की रुझानें चित्रकला में दिखाई देने लगती है

- सन् 1920 में इहाब हसन ने Post Modernism पद का प्रयोग किया

- कंप्यूटर, संचार क्रांति और नव-उपनिवेशवाद ने हमारे जीवन को प्रभावित किया

और वास्तुकला इसके प्रभाव को बीसवीं शताब्दी के चौथे-पाँचवें दशक में व्यक्त करने लगती हैं। सन् 1920 में इहाब हसन ने Postmodernism पद का प्रयोग किया। लेकिन 1925 में आर्नल्ड टॉयन्बी ने अपनी पुस्तक A Study of History में जब Postmodernism पद का प्रयोग किया तब यह व्यापक रूप में प्रचार में आया।

भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के कारण भारतीय समाज में बड़े बदलाव आ रहे हैं। कंप्यूटर, संचार क्रांति और नव-उपनिवेशवाद ने हमारे जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। इन बदलावों के साथ-साथ हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी नए विचार और शैलियाँ आ रही हैं। इन बदलावों से साहित्य के अस्तित्व पर भी खतरा मंडराने लगा है।

आज साहित्य के सामने कई चुनौतियाँ हैं। साहित्य के विषय और शैली में बदलाव हो रहे हैं, जिससे उसके मूल स्वरूप के नष्ट होने का खतरा है। साहित्य एक वस्तु बनकर बिकने लगा है, जिससे उसकी मौलिकता और सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लग गया है। संचार और दृश्य-श्रव्य माध्यमों के बढ़ते प्रभाव से छपाई (प्रिंट) मीडिया का भविष्य भी अनिश्चित हो गया है।

हिंदी साहित्य में उत्तर-आधुनिकता की चर्चा लंबे समय से हो रही है। लेकिन अधिकांश लोग इसे सतही रूप से देखते हैं और इसे केवल एक फैशन मानते हैं। भारत में वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं के संदर्भ में यह विचार महत्वपूर्ण हो जाता है कि उत्तर-आधुनिकता का क्या प्रभाव पड़ेगा। यह विचारधारा किन लोगों के लिए फायदेमंद होगी और किनके लिए हानिकारक, यह एक गंभीर सवाल है।

- उपनिवेशवाद के साथ भारत में आधुनिकतावाद भी आया

भारत पहले यूरोप के आधुनिकतावाद का शिकार रहा है और अब ऐसा लग रहा है कि वह उत्तर-आधुनिकतावाद के प्रभाव में आने वाला है। पहले जब उपनिवेशवाद भारत में आया, तब आधुनिकतावाद भी उसके साथ आया था। अब भूमंडलीकरण के दौर में यह प्रश्न उठता है कि क्या नव-उपनिवेशवाद के साथ उत्तर-आधुनिकतावाद भी आएगा? क्या भारत हमेशा पश्चिमी देशों के प्रभाव में रहेगा?

उत्तर-आधुनिकता भारत के लिए एक मिश्रित विचारधारा है। पश्चिमी देशों में इसका विकास और प्रभाव मुख्य रूप से स्थापत्य (आर्किटेक्चर) और साहित्य के क्षेत्र में देखा

गया। लेकिन इसे बिना सावधानी के अपनाने से हमारे समाज और संस्कृति को हानि हो सकती है।

- उत्तर-आधुनिकता के कई पहलू संदिग्ध और पक्षपातपूर्ण

भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर-आधुनिकता के कई पहलू संदिग्ध और पक्षपातपूर्ण लगते हैं। लेकिन इसमें अध्ययन और आलोचना की नई तकनीकें भी शामिल हैं, जो भारत के लिए उपयोगी हो सकती हैं। उत्तर-आधुनिकता की सबसे बड़ी देन यह है कि इसने पश्चिमी प्रभुत्ववादी विचारधारा को कमजोर किया है। इस दृष्टि से यह भारतीय समाज के लिए लाभदायक हो सकता है, यदि इसे समझदारी से अपनाया जाए।

कुरु कुरु स्वाहा(मनोहरश्याम जोशी)

मनोहरश्याम जोशी

- 2005 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित

मनोहर श्याम जोशी का जन्म 9 अगस्त 1933 को अजमेर में हुआ था। वे उत्तराखंड मूल के थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा अजमेर में हुई। मनोहर श्याम जोशी हिंदी साहित्य और मीडिया जगत के उन विरले लेखकों में से एक थे, जिन्होंने अपने लेखन से न केवल साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि पत्रकारिता, टेलीविज़न, रेडियो और फिल्म के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। वे एक प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार, संपादक, पत्रकार और पटकथा लेखक थे। उन्हें 2005 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

- आकाशवाणी के हिंदी अनुभाग में उप-संपादक

मनोहर श्याम जोशी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सक्रिय रहे। उन्होंने दिल्ली में स्वतंत्र लेखन किया और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े रहे। वे 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक के संपादक भी रहे। उन्होंने आकाशवाणी के हिंदी अनुभाग में उप-संपादक और 'दिनमान' पत्रिका में सहायक संपादक के रूप में भी कार्य किया। अमृतलाल नागर और अज्ञेय जैसे दिग्गज साहित्यकारों का उन्हें स्नेह और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

- भारतीय टेलीविज़न में धारावाहिकों की शुरुआत कराने का श्रेय

मनोहर श्याम जोशी को भारतीय टेलीविज़न में धारावाहिकों की शुरुआत कराने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने 1983 में 'हम लोग' धारावाहिक की कहानी लिखी, जिससे भारतीय टेलीविज़न के इतिहास में एक नए युग का आरंभ हुआ। फिल्मों के क्षेत्र में भी उन्होंने योगदान दिया। उन्होंने 'हे राम' और 'ज़मीन' जैसी फिल्मों की पटकथा लिखी। दक्षिण भारतीय फिल्मों के लिए 'अप्पू राजा' की डबिंग भी की। हालांकि, फिल्मों में उन्हें टेलीविज़न जैसी संतुष्टि नहीं मिली।

साहित्यिक योगदान

- कई उत्कृष्ट उपन्यास, व्यंग्य संग्रह, कहानी संग्रह और संस्मरण का लेखन

मनोहर श्याम जोशी ने कई उत्कृष्ट उपन्यास, व्यंग्य संग्रह, कहानी संग्रह और संस्मरण लिखे। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'कुरु कुरु स्वाहा', 'कसप', 'हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी', 'हमजाद' और 'क्याप' प्रमुख हैं। व्यंग्य लेखन में भी वे सिद्धहस्त थे, जिसके प्रमाण 'नेताजी कहिन' और 'उस देश का यारों क्या कहना' जैसे संग्रह हैं। उनकी कहानियाँ भी अत्यंत रोचक और सामाजिक यथार्थ से भरपूर हैं।

- बहुआयामी व्यक्तित्व

30 मार्च 2006 को दिल का दौरा पड़ने से मनोहर श्याम जोशी का निधन हो गया। उनके निधन से हिंदी साहित्य और टेलीविज़न जगत में एक अपूरणीय क्षति हुई। मनोहर श्याम जोशी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे एक ऐसे लेखक थे, जिन्होंने पत्रकारिता, टेलीविज़न, फिल्म और साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया। उनका लेखन शैली, विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति की दृष्टि से विलक्षण था। उनकी कृतियों में सामाजिक यथार्थ, व्यंग्य, मानवीय संवेदनाएँ और गहरी विचारशीलता दिखाई देती है। वे हिंदी साहित्य और भारतीय टेलीविज़न के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

कुरु कुरु स्वाहा

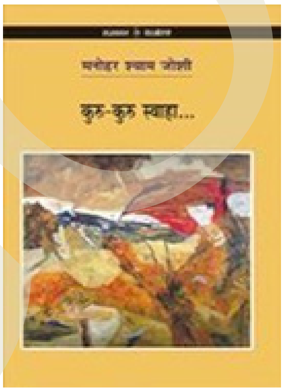

- निश्चित कथानक, पात्रों का ठोस विकास या सुसंगत शैली नहीं

हिंदी साहित्य में विभिन्न प्रवृत्तियाँ और धाराएँ समय-समय पर उभरती रही हैं। सातवें दशक में विकसित होने वाली 'नया उपन्यास' धारा के तहत लिखे गए उपन्यासों में मनोहर श्याम जोशी का 'कुरु - कुरु स्वाहा' (1980) एक महत्वपूर्ण रचना है। यह उपन्यास अपनी अनूठी शैली और प्रयोगधर्मिता के कारण चर्चा का विषय बना। इसे लेखक ने 'अनुपन्यास' (Anti-Novel) की संज्ञा दी, क्योंकि यह पारंपरिक उपन्यास की विधा से हटकर लिखा गया है। इसमें कोई निश्चित कथानक, पात्रों का ठोस विकास या सुसंगत शैली नहीं है। यह उपन्यास एक प्रयोगात्मक रचना के रूप में उभरता है, जिसमें भाषा, शिल्प और कथ्य के स्तर पर नवीनता देखने को मिलती है। मनोहर श्याम जोशी ने इसे एक ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है, जो उपन्यास की पारंपरिक परिभाषा को चुनौती देता है।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में पश्चिमी साहित्य में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव बढ़ा, जिसने 'अंतवाद' (Endism) की अवधारणा को जन्म दिया। इसमें कहा गया कि

- परंपरागत उपन्यास के ढांचे को तोड़ने का प्रयास

साहित्य में न केवल लेखक का, बल्कि उपन्यास का भी अंत हो चुका है। इस विचारधारा से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में भी कुछ लेखकों ने परंपरागत उपन्यास के ढांचे को तोड़ने का प्रयास किया। कृष्ण बलदेव वैद और मनोहर श्याम जोशी जैसे लेखकों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया और 'अनुपन्यास' की रचनाएँ कीं।

- कुरु -कुरु स्वाहा' हिंदी साहित्य में परंपरा, प्रयोग और नवाचार का अनूठा संगम

गोपाल राय के अनुसार, इस उपन्यास में लेखक के पास कोई गहरी विचारधारा नहीं है, बल्कि यह केवल एक प्रयोग के रूप में सामने आया है। कुरु - कुरु स्वाहा' हिंदी साहित्य में परंपरा, प्रयोग और नवाचार का अनूठा संगम है। यह उपन्यास अपने ढांचे, भाषा और कथ्य में नवीनता लाने का प्रयास करता है। यह न केवल हिंदी साहित्य में 'अनुपन्यास' की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, बल्कि उत्तर-आधुनिक विचारधारा को भी प्रस्तुत करता है। इसके जटिल स्वरूप के बावजूद, यह एक ऐसी कृति है, जो पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है और हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है।

कुरु कुरु स्वाहा कथ्यपरक अवलोकन

- विशिष्ट कथ्य-शैली और गहन समाज-चेतना के कारण एक महत्वपूर्ण कृति

मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कुरु - कुरु स्वाहा' हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्ट कथ्य-शैली और गहन समाज-चेतना के कारण एक महत्वपूर्ण कृति के रूप में स्थापित हुआ है। यह उपन्यास महानगरीय जीवन की विडंबनाओं, जटिलताओं और अनिश्चितताओं को उभारता है। विशेष रूप से मुंबई के सिनेमाई, अपराध जगत और देह व्यापार से जुड़े विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। इस उपन्यास की कथा संरचना, पात्र-चित्रण और भाषा शैली इसे एक अनूठी कृति बनाते हैं।

इस उपन्यास की कथा मुख्य रूप से मुंबई महानगर में बसते-टकराते किरदारों के इर्द-गिर्द घूमती है। नायक जोशी का व्यक्तित्व तीन स्तरों में विभाजित है – मनोहर, जोशी और 'मैं'।

- नायक जोशी का व्यक्तित्व तीन स्तरों में विभाजित

- ▶ मनोहर – सहज विश्वास से भरा, भावुक और बाल-सुलभ मन वाला व्यक्ति है।
- ▶ जोशी – एक गम्भीर साहित्यकार और विचारशील बौद्धिक है।
- ▶ 'मैं' – उपन्यास का प्रमुख कथावाचक, जो वृत्तचित्रकार और पत्रकार है। यह पात्र भौतिक सुखों और ऐंद्रिय भोग में संलग्न रहता है।

उपन्यास की कथा इन्हीं तीन स्तरों पर चलती है, जिससे यह कहीं-कहीं जटिल और उलझी प्रतीत होती है।

समाज में फैली भुखमरी, दरिद्रता, बेरोज़गारी, रिश्वत-खोरी और महँगाई जैसी समस्याओं का चित्रण

'कुरु - कुरु स्वाहा' में मुंबई के महानगरीय जीवन को विभिन्न रंगों और छवियों में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ सिनेमा, अपराध, सेक्स और समाज की अनगिनत विसंगतियों को उभारा गया है। उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार व्यस्त महानगरीय जीवन किसी भी तमाशे को देखने के लिए नहीं ठहरता। लेखक ने समाज में फैली भुखमरी, दरिद्रता, बेरोज़गारी, रिश्वतखोरी और महँगाई जैसी समस्याओं का भी उल्लेख किया है।

इस उपन्यास की केंद्रीय नारी पात्र 'पहुँचेली' अत्यंत रहस्यमय और बहुआयामी चरित्र है। यह पात्र कई रूपों में प्रस्तुत होती है – कभी वह तांत्रिक, कभी वेश्या, कभी क्रांतिकारी, कभी व्यवसायी और कभी पीड़ित स्त्री के रूप में दिखाई देती है। यह स्त्री-पात्र केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक विचार और अवधारणा का प्रतीक बन जाती है। वह समाज की विडंबनाओं, शोषण और स्त्री के बदलते रूपों का प्रतिनिधित्व करती है।

केंद्रीय नारी पात्र 'पहुँचेली' अत्यंत रहस्यमय और बहुआयामी चरित्र

पहुँचेली अपने आप में इतनी पहुँच चुकी है कि कोई भी उसे पूरी तरह समझ नहीं पाता। वह पुरुषों के लिए एक पहेली बनी रहती है। नायक के शब्दों में 'Women thy name is mystery' इस नायिका के चरित्र को सार्थक रूप में प्रस्तुत करता है।

मनोहर श्याम जोशी ने इस उपन्यास में भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी नया प्रयोग किया है। व्यंग्य, हँसी-मज़ाक और बिंबों का प्रयोग करके उन्होंने एक अनूठा साहित्यिक प्रभाव उत्पन्न किया है। इसमें बहुमुखी कथ्य, पेस्टिच (Pastiche) तकनीक और विभिन्न दृष्टिकोणों से कथा कहने की शैली अपनाई गई है। इस उपन्यास में उत्तर-आधुनिक विशेषताओं की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यह पारंपरिक कथा-शैली का अनुसरण नहीं करता, बल्कि नए प्रयोगों के माध्यम से एक जटिल लेकिन प्रभावशाली कथ्य प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में कोई निश्चित नैतिकता स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया, बल्कि समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों और द्वंद्वों को उजागर किया गया है।

नए प्रयोगों के माध्यम से एक जटिल, प्रभावशाली कथ्य प्रस्तुत करता है।

'कुरु - कुरु स्वाहा' केवल एक साधारण कथा नहीं, बल्कि एक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। यह महानगरीय

जीवन की कठोर सच्चाइयों, मनुष्य के मानसिक द्वंद्व और नारी के रहस्यमयी स्वरूप की पड़ताल करता है। भाषा, शिल्प और शैली की नवीनता के कारण यह हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण कृति के रूप में स्थापित होता है। यह उपन्यास न केवल पढ़ने के लिए, बल्कि विचार करने के लिए भी मजबूर करता है।

- मनुष्य के मानसिक द्वंद्व और नारी के रहस्यमयी स्वरूप की पड़ताल

शिल्पगत प्रयोग- अनुपन्यास

साहित्य सदा परिवर्तनशील रहा है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न होता है। साहित्य में होने वाले परिवर्तन उस युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। उत्तर आधुनिक युग भी इससे अछूता नहीं रहा है। कथा साहित्य विशेष रूप से उपन्यास के क्षेत्र में इस युग में अनेक नवीन प्रयोग किए गए हैं। यह परिवर्तन विशेषकर पश्चिम में हुए प्रयोगों से प्रभावित रहे हैं।

प्रयोग और शिल्प विधान

प्रयोग के मूल में अन्वेषण की प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रयोग नवीनता को महत्व देते हुए उसकी ओर बढ़ता है जो अज्ञात है। प्रयोग शब्द से प्रायः नवीन प्रयास, नये निर्माण अथवा नवीन अन्वेषण का आभास होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोग प्रायः पूर्व प्रतिष्ठित सिद्धांत के विपरीत कुछ नवीन सिद्ध करने का प्रयास होता है। पश्चिम में 'Experiment' और 'Practical' शब्दों का प्रयोग मुख्य रूप से शिल्प के क्षेत्र में किया जाता है। शिल्प, अंग्रेज़ी शब्द 'टेकनीक' का हिन्दी अनुवाद है, जिसका संबंध रचना की प्रक्रिया से है। हिन्दी में शिल्प का अर्थ कारीगरी अथवा प्रणाली से लिया जाता है। किसी भी रचना की संरचना में जिन तरीकों, रीतियों और विधियों का प्रयोग किया जाता है, वे शिल्प विधान के अंतर्गत आते हैं। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त के अनुसार, 'शिल्प-विधान' से तात्पर्य किसी भी रचना के प्रारंभ से अंत तक के कौशलपूर्ण संयोजन, व्यवस्थापन अथवा प्रबंधन से है। शिल्प विधान में लेखक की सृजनात्मकता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- शिल्प, अंग्रेज़ी शब्द 'टेकनीक' का हिन्दी अनुवाद

उत्तर आधुनिक युग और हिन्दी उपन्यास शिल्प

उत्तर आधुनिक युग में हिन्दी उपन्यास शिल्प में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। उपन्यासकार समय के परिवर्तन के साथ-साथ समाज और पाठकों की बदलती मानसिकता को ध्यान में रखते हुए उपन्यास की संरचना में नए प्रयोग कर रहे हैं। पश्चिमी साहित्य में हुए प्रयोगों की छाया हिन्दी उपन्यासों पर भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 1927 में ई. एम. फॉर्स्टर ने अपनी प्रसिद्ध कृति Aspect of the Novel में कहा था कि काश 'उपन्यास' में 'कथा' न होती। उनका मानना था कि कथा को पूर्णतः हटाना संभव नहीं है, लेकिन इसे न्यूनतम अवश्य किया जा सकता है। इसके बाद उपन्यास से कथानक को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति भी देखी गई। उत्तर आधुनिक उपन्यासों में पारंपरिक कथानक की जगह अनेक छोटे-छोटे उपाख्यान, आत्मचिंतन, संवादहीनता और गैर-रैखिक संरचना को अधिक महत्व दिया गया।

- पश्चिमी साहित्य में हुए प्रयोगों की छाया हिन्दी उपन्यासों पर

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में शिल्प प्रयोग

- नयी शिल्प तकनीकों और प्रयोगधर्मिता को प्रमुखता

उत्तर आधुनिक युग में हिन्दी उपन्यास शिल्प में तकनीकी प्रयोगों की प्रवृत्ति बढ़ी है। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कुरु - कुरु स्वाहा' में अपनाए गए नये शिल्प प्रयोग इसकी पुष्टि करते हैं। उत्तर आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नयी शिल्प तकनीकों और प्रयोगधर्मिता को प्रमुखता मिली है। मनोहर श्याम जोशी जैसे कथाकारों ने अपने लेखन में प्रयोगधर्मिता को अपनाकर उपन्यास विधा को नया स्वरूप दिया है। यह प्रवृत्ति आने वाले समय में हिन्दी उपन्यास को और भी नवीन दृष्टिकोण प्रदान करेगी।

- फ्रांस में 'नया उपन्यास', अंग्रेज़ी में 'Anti-Novel', हिन्दी में 'अनुपन्यास'

बीसवीं शताब्दी का सातवाँ दशक हिन्दी उपन्यास लेखन के लिए प्रयोगशीलता का दौर था। इस समय हिन्दी उपन्यास में यथार्थवादी संरचना को समेकित करने की प्रवृत्ति देखी जा रही थी, वहीं वैश्विक स्तर पर उपन्यास की संरचना में नए प्रयोग किए जा रहे थे। विशेष रूप से फ्रांस और लातिनी अमेरिका में उपन्यास की परंपरागत संरचना को तोड़ने के प्रयास किए गए। फ्रांस में 'नया उपन्यास' (Nouveau Roman) नामक धारा विकसित हुई, जिसे अंग्रेज़ी में 'Anti-Novel' भी कहा गया। इसी प्रकार, लातिनी अमेरिका में 'जादुई यथार्थवाद' (Magical Realism) का उद्भव हुआ। इन नए प्रयोगों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा और इसने हिन्दी में 'अनुपन्यास' जैसी प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

फ्रांस में 1955-65 के दौरान 'नया उपन्यास' आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसके प्रमुख प्रवर्तक माग्वेरी दयुरा, आलाँ रॉब ग्रीए और क्लॉद सिमाँ थे। इस आंदोलन ने साहित्यिक यथार्थवाद के पारंपरिक स्वरूप को चुनौती दी। इन लेखकों का मानना था कि उन्नीसवीं शताब्दी का सामाजिक यथार्थ अब अप्रासंगिक हो चुका था। दो विश्व युद्धों और वैज्ञानिक प्रगति ने समाज की संरचना को पूरी तरह बदल दिया था। इसी प्रवृत्ति का प्रभाव लातिनी अमेरिका में 'जादुई यथार्थवाद' के रूप में देखने को मिला, जिसके प्रमुख लेखक जॉर्ज लुइस बोरहेस और गैब्रियल गार्सिया मार्केज़ थे। इसी धारा से प्रभावित होकर जर्मनी के गुंटेर ग्रास, इंग्लैंड के जॉन फाउल्स और सलमान रश्दी ने भी अपने उपन्यासों में नई प्रवृत्तियों को अपनाया।

- दो विश्व युद्धों और वैज्ञानिक प्रगति ने समाज की संरचना को पूरी तरह बदल दिया

हिन्दी साहित्य में नया उपन्यास 1970 के आसपास सामने आया। इस धारा से प्रभावित होकर कृष्ण बलदेव वैद ने 'विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ' उपन्यास की रचना की, जिसे हिन्दी का पहला 'अनुपन्यास' कहा जाता है। हालांकि, इसे पाठकों और आलोचकों द्वारा विशेष स्वीकृति नहीं मिली। प्रमुख आलोचक गोपाल राय ने इसे असंगत, बेसिर-पैर की बातें कहकर नकार दिया। इसी प्रकार, मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कुरु - कुरु स्वाहा' (1980) भी इस श्रेणी में आता है। जोशी ने स्वयं अपनी कृति को 'अनुपन्यास' की संज्ञा दी है, जिसका अर्थ है कि यह उपन्यास परंपरागत कथानक, चरित्र निर्माण और परिवेश रचना की शर्तों को नकारता है।

- कृष्ण बलदेव वैद कृत 'विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ'-हिन्दी का पहला 'अनुपन्यास'

अनुपन्यास हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण प्रयोगवादी प्रवृत्ति रही है, जिसने परंपरागत उपन्यास संरचना को चुनौती दी। मनोहर श्याम जोशी और कृष्ण बलदेव वैद जैसे लेखकों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया और साहित्य में नई संभावनाएँ प्रस्तुत कीं। यह प्रवृत्ति भले ही मुख्यधारा में स्थान न बना पाई हो, परंतु यह हिन्दी उपन्यास लेखन की विकास यात्रा में एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में देखी जा सकती है।

बायस्कोपिक गद्य शैली

- उत्तर-आधुनिकतावादी साहित्य की देन

साहित्य और शिल्प का संबंध समय के प्रवाह के साथ निरंतर परिवर्तित होता रहता है। साहित्य में नवाचार और प्रयोगधर्मिता के कारण विभिन्न लेखन शैलियाँ विकसित हुई हैं। बायस्कोपिक गद्य शैली भी ऐसी ही एक नवीन शैली है, जो उत्तर-आधुनिकतावादी साहित्य की देन मानी जाती है। इस शैली में कथा एक फिल्मी फ्रेम की तरह चलती है, जो टूटती, बिखरती, चंचल और गतिशील होती है। इस नये शिल्प में लेखन और श्रव्य-दृश्य माध्यम का संलयन होता है, जिससे यह शैली आधुनिक उपन्यासों में एक नया आयाम जोड़ती है।

बायस्कोपिक गद्य शैली का स्वरूप

- 'कुरु-कुरु स्वाहा' और बायस्कोपिक गद्य शैली

बायस्कोपिक गद्य शैली का मूल आधार फिल्म और उपन्यास के शिल्प का मिश्रण है। यह परंपरागत उपन्यासों से अलग होती है क्योंकि इसमें कथा को एक फ्रेम के रूप में देखा और अनुभव किया जाता है। इस शैली में पूरी कथा एक संगठित और निरंतर प्रवाह में न होकर बिखरी हुई होती है। इसकी संगति अंतर्विरोधी स्थितियों में उभरती है, जिससे यह शैली पारंपरिक कथा-संरचना से अलग हटकर एक नया रूप धारण करती है। इस शिल्प के माध्यम से लेखक न केवल एक कथानक प्रस्तुत करता है, बल्कि वह अपने कार्य व्यापारों, वार्तालापों और मस्तिष्क की हरकतों को भी दृश्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है।

बायस्कोपिक गद्य शैली का उत्कृष्ट उदाहरण मनोहर श्याम जोशी द्वारा रचित उपन्यास 'कुरु - कुरु स्वाहा' है। इस उपन्यास में बंबई के महानगरीय जीवन की विसंगतियों, अनिश्चितताओं, नैतिक मूल्यों तथा वहाँ के जीवन-यापन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया गया है। उपन्यास में भाग-दौड़, रहस्य, देह-व्यापार आदि विषयों को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करने के लिए दृश्य और संवाद प्रधान गप्प बायस्कोप शैली का उपयोग किया गया है।

- यह शैली उपन्यास की परंपरागत संरचना को तोड़ने में सफल

इस उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी स्वयं एक गप्पी नरेटर की भूमिका निभाते हैं, जबकि उनका स्वयं का व्यक्तित्व दो भागों में विभाजित दिखता है— 'मनोहर' और 'जोशी'। ये दोनों पात्र अपने वार्तालापों, क्रियाकलापों और मस्तिष्क की हलचलों के माध्यम से एक दृश्यात्मक संसार की रचना करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि कहीं-कहीं पर जोशी भी नरेटर की भूमिका में दिखाई देते हैं। यह शैली उपन्यास की परंपरागत संरचना को तोड़ने में सफल होती है, क्योंकि इसमें पारंपरिक कथानक, चरित्र-निर्माण

और परिवेश-रचना को एक नया रूप दिया गया है।

बायस्कोपिक गद्य शैली की विशेषताएँ

- दृश्यात्मकता – इस शैली में कथा को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक उसे पढ़ते हुए अपने मस्तिष्क में दृश्य के रूप में देख सके।
- टूटती-बिखरती कथा – कथा एक निरंतर प्रवाह में न होकर विभिन्न फ्रेम्स में विभाजित होती है, जिससे इसका प्रभाव चलचित्र की तरह महसूस होता है।
- श्रव्य-दृश्य माध्यम का समन्वय – संवादों और घटनाओं की प्रस्तुति ऐसी होती है कि वे श्रव्य और दृश्य दोनों प्रभाव उत्पन्न करती हैं।
- उत्तर-आधुनिकतावादी प्रभाव – यह शैली परंपरागत उपन्यास शिल्प को तोड़ती है और नए प्रयोगधर्मी तरीके अपनाती है।
- नरेटर की भूमिका – इसमें लेखक स्वयं कथा का एक भाग बन जाता है और अपनी उपस्थिति को अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत करता है।

- कथा की प्रस्तुति पठनीय एवं दृश्यात्मक अनुभव भी प्रदान करती है।

अमूर्तन की ओर

उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख विधा है, जो यथार्थ से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी होती है। पारंपरिक रूप से उपन्यास का संबंध प्रत्यक्ष यथार्थ से माना गया है, जो पाठक के मानस में ठोस बिंब निर्मित करता है। परंतु समय के साथ-साथ उपन्यास के स्वरूप और शिल्प में परिवर्तन आता गया और आधुनिकता के प्रभाव से यह यथार्थ बाह्य से अधिक आंतरिक होता चला गया। उत्तर-आधुनिक संदर्भों में उपन्यासकारों ने यथार्थ के अमूर्तन की ओर यात्रा की, जिससे हिन्दी उपन्यास की एक नई प्रवृत्ति का जन्म हुआ।

- हिन्दी उपन्यास की एक नई प्रवृत्ति का जन्म

उपन्यास और यथार्थ का द्वंद्व

यथार्थ का मोटे तौर पर दो भागों में विभाजन किया जाता है—बाह्य यथार्थ और आंतरिक यथार्थ। बाह्य यथार्थ मनुष्य के जीवन की बाहरी परिस्थितियों से जुड़ा होता है, जबकि आंतरिक यथार्थ मानसिक प्रक्रियाओं और चेतना के स्तरों का प्रतिनिधित्व करता है। पारंपरिक उपन्यास इन दोनों स्तरों को समग्रता में प्रस्तुत करने का प्रयास करता था, किंतु मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों और उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोणों ने यह स्थापित किया कि बाहरी यथार्थ की अपेक्षा आंतरिक यथार्थ अधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर भी पड़ा और लेखकों ने यथार्थ के अमूर्तन की दिशा में कदम बढ़ाए।

- बाहरी यथार्थ की अपेक्षा आंतरिक यथार्थ अधिक महत्वपूर्ण

अमूर्तन की ओर यात्रा

अमूर्तन प्रक्रिया की शुरुआत हिन्दी में जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे और लक्ष्मीकांत वर्मा जैसे लेखकों से हुई। इन लेखकों ने उपन्यास में बाह्य घटनाओं की अपेक्षा आंतरिक मनोविज्ञान को अधिक महत्त्व दिया। इसके बाद, अमूर्तन की प्रक्रिया के दूसरे चरण में उपन्यास के पात्रों से उनके नाम छीन लिए गए और कथा-लोक में

- पश्चिमी साहित्यकारों जैसे काफ्का, कामू और सार्त्र से प्रभावित

समय एवं स्थान को शून्य के निकट लाने का प्रयास किया गया। इस प्रवृत्ति का प्रभाव निर्मल वर्मा और मोहन राकेश के उपन्यासों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हिन्दी उपन्यास में इस प्रकार के अमूर्तन की प्रवृत्ति पश्चिमी साहित्यकारों, विशेषकर काफ्का, कामू और सार्त्र से प्रभावित रही।

'कुरु कुरु स्वाहा' और अमूर्तन का चरम

मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' अमूर्तन की प्रक्रिया का चरम उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास अपने शिल्पगत प्रयोगों और कथात्मक चमत्कार के कारण विशिष्ट है। इसमें शाब्दिक और कथात्मक खिलवाड़ प्रमुख रूप से दिखाई देता है। इस उपन्यास में 'मनोहर श्याम जोशी' नामक पात्र का वर्णन एक संज्ञा और 'मैं' सर्वनाम के रूप में किया गया है, जिससे पात्रों की कल्पित प्रकृति उजागर होती है। यह तकनीक उपन्यास में कथाकार को एक नाटकीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य करती है, जिससे कथा-शिल्प में नवीनता आती है। इस प्रकार, कथाकार स्वयं को अप्रत्यक्ष रूप से उपन्यास में समाहित करता है और कहानी सुनाने का नया तरीका अपनाता है। इस शिल्प को अमूर्तन की ओर झुकी हुई तकनीक कहा जाता है, जिसका आधार शब्दक्रीड़ा होता है।

- कथाकार को एक नाटकीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य करती है

अमूर्तन की प्रक्रिया पर आलोचनात्मक दृष्टि

उत्तर-आधुनिकतावाद से प्रभावित लेखक साहित्य की निरर्थकता को प्रमाणित करने के लिए शब्दों के खेल को ही साहित्य मानने लगे। यह प्रवृत्ति कहीं न कहीं यह सिद्ध करने का प्रयास करती है कि साहित्य केवल भाषा की एक क्रीड़ा है और इसका कोई निश्चित अर्थ नहीं होता। मनोहर श्याम जोशी इसी प्रवृत्ति के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। हालांकि, इस विचारधारा के विरोध में भी अनेक आलोचनात्मक दृष्टिकोण हैं, जो साहित्य को केवल अमूर्तन तक सीमित करने के विचार को अस्वीकार करते हैं।

हिन्दी उपन्यास में अमूर्तन की प्रवृत्ति एक महत्वपूर्ण विकास है, जिसने उपन्यास के शिल्प और विषय-वस्तु को नया मोड़ दिया है। जहां परंपरागत उपन्यास बाह्य और आंतरिक यथार्थ को समान महत्व देता था, वहीं आधुनिक और उत्तर-आधुनिक उपन्यासों में आंतरिक यथार्थ को प्रमुखता दी गई। इस प्रक्रिया में पात्रों, समय और स्थान की पारंपरिक अवधारणाएँ बदल गईं, जिससे उपन्यास की नई संरचनाएँ विकसित हुईं। इस प्रकार, हिन्दी उपन्यास में अमूर्तन की यात्रा केवल शिल्पगत प्रयोग न होकर यथार्थ की नई व्याख्या का माध्यम भी बनी है।

- उत्तर-आधुनिक उपन्यासों में आंतरिक यथार्थ को प्रमुखता दी

सिनेमाई शिल्पगत प्रयोग

साहित्य और सिनेमा का संबंध अत्यंत गहरा और विस्तृत है। दोनों विधाएँ समाज के यथार्थ को अपने-अपने ढंग से प्रतिबिंबित करती हैं। मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यासों में परंपरागत ढांचे को तोड़ते हुए नए प्रयोग किए हैं। उनके उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' में सिनेमाई शिल्पगत प्रयोग विशेष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यह न केवल

कथानक की बनावट को प्रभावित करता है, बल्कि पात्रों और उनके मानसिक संसार को भी विशिष्टता प्रदान करता है।

सिनेमाई स्वप्न और बंबई महानगर

- फिल्मी दुनिया के सपनों, संघर्षों और विडंबनाओं का कुशल चित्रण

बंबई महानगर का वातावरण और उसका सिनेमाई प्रभाव इस उपन्यास का प्रमुख अंग है। इसमें फिल्मी दुनिया के सपनों, संघर्षों और विडंबनाओं का कुशल चित्रण किया गया है। उपन्यास में उन लोगों की मानसिकता को दर्शाया गया है, जो सिनेमा की चकाचौंध में अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। यह न केवल फिल्मी हस्तियों के जीवन को उद्घाटित करता है, बल्कि आम व्यक्ति की आकांक्षाओं और उनकी त्रासदी को भी उजागर करता है।

सिनेमाई शिल्प का सर्जनात्मक प्रयोग

- कथा का प्रवाह अत्यंत सहज और प्रभावशाली बन जाता है

मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यास में सिनेमा की कथा-वस्तु, संवाद शैली, दृश्यात्मकता और गतिशीलता को अपनाया है। उन्होंने उपन्यास को सिनेमाई शैली में गढ़ा है, जिससे कथा का प्रवाह अत्यंत सहज और प्रभावशाली बन जाता है। किशोर आकांक्षाओं, फिल्मी दुनिया के जटिल समीकरणों, पार्टियों के दिखावे और स्वप्नभंग की त्रासदी को वे अत्यंत कुशलता से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार, पाठक उपन्यास के माध्यम से सिनेमाजगत के उतार-चढ़ाव को अनुभव करता है।

भाषा और शिल्प

- भाषा के पारंपरिक नियमों को तोड़ते हुए नए प्रकार की भाषा शैली

मनोहर श्याम जोशी न केवल कथ्य में, बल्कि भाषा और शिल्प में भी नवीन प्रयोग करते हैं। वे किसी एक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं हैं और भाषा के पारंपरिक नियमों को तोड़ते हुए नए प्रकार की भाषा शैली विकसित करते हैं। उनकी भाषा जीवंत, बोलचाल की शैली में ढली हुई और पात्रों के अनुरूप ढली हुई होती है। यह भाषाई प्रयोग उपन्यास को एक अलग ऊँचाई प्रदान करता है।

- कथा शैली में यथार्थ और कल्पना का अनूठा मिश्रण

'कुरु कुरु स्वाहा' केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि साहित्य और सिनेमा के संलयन का उत्कृष्ट उदाहरण है। मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी कथा साहित्य को एक नया आयाम दिया है। उन्होंने परंपरागत ढांचे को तोड़कर उपन्यास को सामाजिक संरचना के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी कथा शैली में यथार्थ और कल्पना का अनूठा मिश्रण है, जो पाठकों को न केवल मनोरंजन प्रदान करता है, बल्कि उन्हें विचार करने के लिए भी बाध्य करता है। इस प्रकार, उनका उपन्यास केवल साहित्यिक संरचना तक सीमित न रहकर सामाजिक विमर्श का सशक्त माध्यम बन जाता है।

कुरु कुरु स्वाहा –भाषागत क्रांति

उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जो समाज के यथार्थ और चेतना के विभिन्न आयामों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। भाषा उपन्यास की आत्मा होती

- भाषा के विविध प्रयोगों और नवाचारों का उत्कृष्ट उदाहरण

है, जो उसकी प्रकृति, संरचना और सम्भावनाओं को व्यक्त करती है। मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' भाषा के विविध प्रयोगों और नवाचारों का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में भाषा का प्रयोग केवल संप्रेषण के लिए नहीं, बल्कि साहित्यिक खिलंदड़पन और विविध सामाजिक-भाषागत संदर्भों को उजागर करने के लिए किया गया है।

उपन्यास में भाषा का विविधतापूर्ण प्रयोग

- भाषा का एक अनूठा इन्द्रजाल रचा गया

मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यास में बहुभाषिकता और भाषाई प्रयोगों के माध्यम से एक नए प्रकार की साहित्यिक संरचना गढ़ते हैं। 'कुरु कुरु स्वाहा' पूरी तरह शब्दों पर आधारित उपन्यास है, जहाँ भाषा का एक अनूठा इन्द्रजाल रचा गया है। इसमें हिंदी, उर्दू, बंगला, गुजराती, संस्कृत, अंग्रेज़ी, पंजाबी, हरियाणवी, अवधी, कुमाऊँनी, भोजपुरी जैसी भाषाओं और बोलियों का सजीव प्रयोग किया गया है।

बहुभाषिक प्रयोग और उसका प्रभाव

जोशी जी के उपन्यास में विभिन्न भाषाओं के विपथित (डिविएटेड) प्रयोग देखने को मिलते हैं, जो इस कृति की विशेषता है। इन प्रयोगों से उपन्यास की शैली में एक नया प्रयोगधर्मी दृष्टिकोण जुड़ता है, जिससे पाठक को विभिन्न भाषायी संदर्भों और समाज की बहुलता को समझने का अवसर मिलता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

बंगला भाषा का प्रयोग:- 'जभी साला उन लोक जिंदगी जीया ठाठ का, आर्ट पैदा किया सूक्ष्म अउर विराट का तूम।'

इस प्रकार की भाषा प्रयोगशीलता उपन्यास में हास्य और खिलंदड़ेपन को दर्शाती है।

पंजाबी भाषा का प्रयोग:-'कीं पेश जी, की हाल है? चंगे ने प्राजी तुसी दसो।'

इस प्रकार की संवाद शैली पात्रों की क्षेत्रीय विशेषताओं को उभारने में सहायक सिद्ध होती है।

- भाषा के लचीलेपन और समकालीन समाज में उसके प्रभाव को दर्शाता है।

हरियाणवी भाषा का प्रयोग:- 'भाया क्यूँ रोता से? नू बोल्या, मैं रो रहा हूँ मेमसाहबों के शैम्पोल-सपनों पर।'

इस भाषा में क्षेत्रीयता के साथ-साथ यथार्थवादी चित्रण भी स्पष्ट रूप से उभरकर आता है।

अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग:- 'टइटा देवी कहती है कि लुक आई एम लाइक यू बट आई एम नाट लाइक यू।'

भाषा की विशिष्टता और व्यंग्यात्मकता

इस उपन्यास की भाषा मानक हिंदी से भिन्न और विविध प्रयोगों से युक्त है। जोशी जी ने व्याकरणिक मानकों से परे जाकर एक ऐसी शैली विकसित की है, जो सहज, संवादात्मक और नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करती है। उपन्यास में कई स्थानों पर 'सड़क

छाप' भाषा और गुमलेबाजी का प्रयोग किया गया है, जो हास्य और व्यंग्य उत्पन्न करता है।

- भाषा की पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती देकर एक नवीन भाषा-शैली की स्थापना

मनोहर श्याम जोशी का उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' भाषा के विविध प्रयोगों के कारण हिंदी साहित्य में एक अलग स्थान रखता है। उन्होंने न केवल हिंदी भाषा के मानक रूप को चुनौती दी, बल्कि भाषा के प्रयोगधर्मिता और उसकी सीमाओं का विस्तार भी किया। उनका यह प्रयोग न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि समाज और भाषा के अंतर्संबंधों को भी रेखांकित करता है। जोशी जी का यह उपन्यास भाषा की पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती देकर एक नवीन भाषा-शैली की स्थापना करता है, जो पाठकों के लिए एक रोचक और विचारोत्तेजक अनुभव प्रदान करता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्य में उत्तराधुनिकता (Postmodernism) एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है, जो पारंपरिक कथानकों, शिल्प और भाषा के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। उत्तराधुनिकता के संदर्भ में हिन्दी उपन्यास की चर्चा करते समय मनोहरश्याम जोशी का उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' एक महत्वपूर्ण कृति के रूप में सामने आता है। यह उपन्यास न केवल अपनी कथ्यगत जटिलता बल्कि अपनी शिल्पगत नवीनता और भाषागत क्रांति के कारण विशेष ध्यान आकर्षित करता है।

'कुरु कुरु स्वाहा' कथ्य के स्तर पर पारंपरिक कथा संरचनाओं को तोड़ता है और जीवन की विडंबनाओं तथा सामाजिक विसंगतियों को एक नए ढंग से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास उत्तराधुनिकतावादी प्रवृत्तियों को अपनाकर कथा में असंगतता, विखंडन, तथा चक्रीय कथानक (Non-linear Narrative) जैसी विशेषताओं को शामिल करता है। इसमें भारतीय समाज, राजनीति, मध्यवर्गीय मानसिकता और सामाजिक बदलावों को गहरे स्तर पर चित्रित किया गया है। 'कुरु कुरु स्वाहा' एक पारंपरिक उपन्यास न होकर 'अनुपन्यास' की संज्ञा अधिक उपयुक्त रूप से ग्रहण करता है। यह उपन्यास कहानी कहने के रूढ़ प्रारूप को अस्वीकार करता है और अलग-अलग स्तरों पर विभिन्न अनुभवों और विचारों को प्रस्तुत करता है। कथ्य और भाषा का यह अनूठा मिश्रण इसे एक प्रयोगधर्मी कृति बनाता है। इस उपन्यास की गद्य शैली 'बायस्कोपिक' है, जिसका तात्पर्य है कि यह चलचित्र (सिनेमा) के दृश्यों की भांति विभिन्न कोणों से कथा प्रस्तुत करता है। इस तकनीक के माध्यम से लेखक समय और स्थान की पारंपरिक सीमाओं को तोड़ते हुए पाठक को एक बहुस्तरीय अनुभव प्रदान करता है। इस उपन्यास में अमूर्तन (Abstractness) का प्रमुख स्थान है। कथा में प्रतीकों, रूपकों और भाषा के विविध प्रयोगों के माध्यम से यथार्थ और कल्पना की सीमाओं को धुंधला किया गया है। इस शैलीगत प्रयोग के कारण पाठक को निष्कर्ष निकालने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है, जिससे वह उपन्यास को अपने दृष्टिकोण से समझने में सक्षम होता है। मनोहरश्याम जोशी ने अपने लेखन में सिनेमाई प्रभावों का उपयोग किया है। 'कुरु कुरु स्वाहा' में यह प्रभाव संवादों, दृश्यों के कट (cuts) और कथानक के अनियमित प्रवाह में देखा जा सकता है। यह तकनीक पाठक को एक फिल्म देखने जैसी अनुभूति प्रदान करती है, जिससे उपन्यास अधिक रोचक और गतिशील बनता है। भाषा की दृष्टि से 'कुरु कुरु स्वाहा' को हिन्दी उपन्यासों में

क्रांतिकारी कृति माना जा सकता है। इसमें संवादों, लोक-भाषा, अंग्रेज़ी शब्दों और विभिन्न सामाजिक वर्गों की भाषाई विविधताओं को प्रयोग कर भाषा के प्रयोग को एक नया मोड़ दिया गया है। यह उत्तराधुनिकतावादी प्रयोगधर्मिता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

मनोहरश्याम जोशी का 'कुरु कुरु स्वाहा' उत्तराधुनिक हिन्दी साहित्य का एक सशक्त उदाहरण है। यह उपन्यास अपनी कथ्यगत नवीनता, शिल्पगत प्रयोगधर्मिता, बायस्कोपिक शैली, अमूर्तन, सिनेमाई प्रभाव और भाषागत क्रांति के माध्यम से साहित्य में एक नया आयाम जोड़ता है। यह कृति पारंपरिक उपन्यास संरचनाओं को चुनौती देकर एक नए साहित्यिक विमर्श की ओर संकेत करती है, जिससे हिन्दी उपन्यास का परिदृश्य और अधिक समृद्ध तथा बहुआयामी बनता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. मनोहरश्याम जोशी के उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' को उत्तराधुनिक उपन्यास क्यों कहा जाता है? तर्क सहित व्याख्या करें।
2. 'कुरु कुरु स्वाहा' उपन्यास की कथा किस प्रकार पारंपरिक उपन्यासों से भिन्न है? उदाहरण सहित समझाइए।
3. हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा में उत्तराधुनिकता का क्या योगदान रहा है?
4. उत्तराधुनिक हिन्दी उपन्यासों में यथार्थ और कल्पना का क्या संबंध है?
5. किसी एक हिन्दी उपन्यास का चयन कर उसमें उत्तराधुनिक प्रवृत्तियों का विवेचना कीजिए।
6. उत्तराधुनिक हिन्दी उपन्यासों में बहुलता (Pluralism) और विकेन्द्रण (Decentralization) की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
7. डिजिटल युग में उत्तराधुनिक हिन्दी उपन्यासों की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए।
8. हिन्दी उपन्यासों में उत्तराधुनिकता के कारण कथानक संरचना में क्या बदलाव आया है?
9. हिन्दी उपन्यासों में उत्तराधुनिकता के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक विघटन को किस प्रकार चित्रित किया गया है?

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. सं डॉ नामवर सिंह - आधुनिक हिन्दी उपन्यास-2
2. जेन्द्र यादव - उपन्यास स्वरूप और संवेदना
3. सुधीश पचौरी - उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श
4. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - इन्द्रनाथ मदान

5. उत्तराधुनिकता की पृष्ठभूमि कुछ विचार, कुछ प्रश्न - डॉ.वीरेंद्र सिंह यादव
6. उत्तराधुनिकता कुछ विचार - देवशंकर नवीन, सुशांतकुमार मिश्र

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. कमलेश – 'मनोहर श्याम जोशी के कथा प्रयोग'
2. गोपाल राय – 'उपन्यास की संरचना'
3. सं नामवर सिंह – 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास',
4. कुरु कुरु स्वाहा-मनोहरश्याम जोशी
5. www.shodh net
6. shodhganga.inflibnet.ac.in
7. www.mgutheses.org
8. dyuthi .cusat.ac.in
9. 8.wikipedia.org

इकाई 2

'तिरिछ' कहानी - उदय प्रकाश, तिरिछ कहानी में शिल्पगत प्रयोग, जादुई यथार्थवाद : अर्थ, परिभाषा, अवधारणा और आवश्यक तत्व

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- जादुई यथार्थवाद के अर्थ और परिभाषा से परिचय मिलता है
- जादुई यथार्थवाद की अवधारणा और आवश्यक तत्वों से परिचित होता है
- तिरिछ कहानी से परिचय होता है
- उदय प्रकाश जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व जानता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य के जाने माने लेखक उदयप्रकाश की बहुचर्चित कहानी है तिरिछ। इसमें लेखक जादुई यथार्थवाद का प्रयोग किया है। उन्होंने कहानी में जादुई यथार्थवाद का प्रयोग करते हुए भी भाषा को अपेक्षाकृत यथार्थवादी रखा है, जिससे कहानी को एक खास पहचान मिलती है। इसमें एक बेटा अपनी पिता की कहानी कहता है, अपने सपने के बारे में कहता है, शहर के बारे में और शहरी जीवन से जर की बाते बताता है। इस कहानी में एक अनूठा एवं रहस्यमय अनुभव को पैदा किया गया है जो यथार्थ और स्वप्न के बीच की सीमा को धुधला करके बनाया गया है। इससे पाठक को यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि क्या वास्तविक है और क्या नहीं। तिरिछ एक प्रतीक है, शहरी जीवन की भयानकता एवं विषैलीपन का। शहरों में खत्म होती संवेदना को उभारनेवाली मार्मिक कहानी है तिरिछ। इस कहानी के द्वारा हम जादुई यथार्थवाद की अवधारणा पर भी चर्चा कर सकते हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

तिरिछ, जादुई यथार्थवाद, परिभाषा, संरचना, अवधारणा, जीवन यथार्थ

Discussion / चर्चा

पिता और पुत्र के आपसी संबंधों की आकर्षक शिल्प में ढली हुई एक ख़ूबसूरत कहानी है तिरिछ। यह कहानी एक पुत्र के द्वारा अपने पिता के बारे में कही गई है। कहानी के प्रारंभ में ही लेखक लिखते हैं - 'इस घटना का संबंध पिताजी से है, मेरे सपने से है और शहर से भी है शहर के प्रति जो जन्मजात भय होता है उससे भी है' इस कहानी में तिरिछ पिताजी को काटता है जिसे वह मार तो देते हैं परंतु जला नहीं पाते फिर वह शहर चले जाते हैं। तिरिछ को लेकर गांव में अनेक प्रकार की लोक कथाएँ प्रचलित हैं। इन्हीं विश्वासों को लेखक ने अपनी इस कहानी में गंभीरता से प्रस्तुत किया है।

तिरिछ के ज़हर से लोगों की मृत्यु तक हो जाती है मगर यह तिरिछ विभिन्न रूपों में नज़र आता है जो गाँव से लेकर शहर तक पिताजी का पीछा करता है। और अंततः पिताजी की मृत्यु का कारण भी बनता है। यह अदालती समन, अपमान, तिरस्कार, शहरी लोगों के व्यवहार और अपूर्ण ज्ञान का है। शहर आने के बाद लेखक के पिता के साथ जो कुछ भी घटित होता है वह अत्यंत ही मर्मस्पर्शी है। कथा नायक अपने सपने में बार-बार तिरिछ को देखता है। घर पर जो सबसे मज़बूत व्यक्ति था, वह शहर जाकर एकदम दयनीय अवस्था में पहुँच गया था। शहरी जीवन की विद्रूपताएँ और संवेदनहीनता का ज़हर धीरे-धीरे उन्हें निगल रहा था। घर खोने का भय और अदालत में मिला अपमान उनकी त्रासदी का ही प्रतिबिंब है। कोई उनकी मदद नहीं कर रहा था बल्कि सब के सब उन्हें प्रताड़ित कर रहे थे। धतूरे के बीज का काढ़ा बनाकर बिना किसी चिकित्सकीय परामर्श के उन्हें पिला दिया गया जिससे उनकी चेतना चली गई। तिरिछ के काटे जाने के कई घंटे के बाद भी जो व्यक्ति ठीक-ठाक था वह अचेतन सा हो गया। फिर शहर और अदालत के फेरों ने एक सम्मानित ग्रामीण व्यक्ति को अपमान और वितृष्णा से भर दिया। यह सभी तिरिछ के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं जिसके काटने से व्यक्ति अचेत एवं निष्क्रिय हो जाता है।

- शहरी जीवन की विद्रूपताएँ और संवेदनहीनता का ज़हर धीरे-धीरे उन्हें निगल रहा था

आगे की कहानी में शहर में जगह-जगह पर मिली प्रताड़ना की वजह से रास्ता भटक जाते हैं और अंत मेमारे जाते हैं। कहानी के अंत में पिताजी का चेहरा समाज के विकृत रूप का प्रतिनिधि है। गाँव आज जिस प्रकार शहरों में रूपांतरण हो रहा है और सभी तिरिछ विसंगतियों, विद्रूपताओं में परिवर्तित होकर शहरों में फैल गए हैं। वास्तव में शहरातियों का जंगलीपन ही है जहाँ के लोग तिरिछ से भी अधिक विषैले और ख़तरनाक होते हैं। कहानी के अंत में लेखक कहते हैं कि असली तिरिछ जंगल से निकलकर शहर में आ गया है और वह कई रूपों में फैल चुका है।

- कहानी के अंत में पिताजी का चेहरा समाज के विकृत रूप का प्रतिनिधि है

उदय प्रकाश (1952)

लेखक का परिचय

> ● समसामयिक हिन्दी लेखन में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

समसामयिक हिन्दी लेखन में अग्रणी एवं महत्वपूर्ण लेखक उदय प्रकाश का जन्म 1 जनवरी, 1952 के दिन अनूपपुर, मध्यप्रदेश में स्थित सीतापुर नामक स्थान पर हुआ। इन्होंने बी.एस-सी. करने के उपरांत सागर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश से हिन्दी में एम.ए. किया। इन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के भारतीय भाषा विभाग में कुछ समय तक अध्यापन भी किया। इसके बाद मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग में विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे। इन्होंने 'दिनमान' के संपादन विभाग में भी कार्य किया। उदय प्रकाश जी निरंतर स्वतंत्र लेखन, फिल्म निर्माण और अखबारों तथा फिल्मों के लिए लेखन में रत हैं। पिछले दो दशकों में समसामयिक हिन्दी लेखन में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वे निरंतर लेखन कार्य में रत हैं।

> ● कवी, कहानीकार, निबंधकार आलोचक, अनुवादक

रचनाएँ- उदय प्रकाश जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं- **कहानी** - *'दरियाई घोड़ा', 'तिरिछ और अंत में प्रार्थना', 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'पीली छतरी वाली लड़की', 'दत्तात्रेय के दुख', 'अरेबा-परेबा', 'मोहनदास', 'मेंगोसिल'* आदि। **कविता संग्रह** - *'सुनो कारीगर', 'अबूतर-कबूतर', 'रात में हारमोनियम'* आदि। निबंध-आलोचना - *'ईश्वर की आँख'*। **अनुवाद** - *'कला - अनुभव', 'इन्दिरा गाँधी की आखिरी लड़ाई', 'लाल घास पर नीले घोड़े', 'रोम्याँ का भारत'*। **फिल्म-टी.वी.** - इन्होंने अनेक धारावाहिकों तथा फिल्मों के स्क्रिप्ट लिखे हैं।

> ● लेखन के तमाम क्षेत्रों में इन्होंने नवीन प्रयोग किया

साहित्यिक विशेषताएँ : उदय प्रकाश जी ने अपने विषय-चयन, सीधी-सादी भाषा, ताजगी भरे मुहावरों और अनौपचारिक संवेदना के कारण पाठकों को आकृष्ट किया। कविता, कहानी, निबन्ध, लेख-टिप्पणियाँ, आलोचना और टेलीविजन फिल्म आदि के लिए लेखन के तमाम क्षेत्रों में इन्होंने नवीन प्रयोग किए। पिछले वर्षों की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों में आधी से ज्यादा इन्हीं की होंगी। इनका साहित्य तथ्य और कथ्य का विपुल विस्तार लिए है।

समकालीन कहानीकारों में उदय प्रकाश की अपनी एक अलग पहचान है अपने आसपास के जीवन से लेकर व्यापक सामाजिक स्तर की समस्याओं को अभिव्यक्त करने का उनका तरीका बहुत प्रभावशाली है कथ्य की बारी किया है तो शिल्प का सचित्र प्रयोग भी है यथार्थ को व्यक्त करने की अजब सी छटपटाहट उनके यहाँ परिलक्षित होती है शायद उनकी इसी बेचैनी ने उनको जादुई यथार्थ की तरफ उन्मुख किया। निसंदेह उदय प्रकाश परिवार के महत्व को समझते हैं और इसीलिए उनकी कहानियों में दादा दादी माँ पिता भाई बहन आदि चरित्र प्रयास अपनी यादगार उपस्थिति दर्ज करते हैं। परिवार से कटकर क्रांति या बदलाव की कोशिश उसे एक अमूर्त अराजक एवं संवेदन ही दिशा में ही ले जाएगी। आत्मीय जनों की उपस्थिति उदय प्रकाश की कहानियों का महत्वपूर्ण पक्ष है और यह एक संवेदनशील मानवीय संभावना को व्यक्त करता है। उदय प्रकाश की कहानियों में घर परिवार एवं आत्मीय संबंधों के अलावा उसके आसपास का परिवेश भी चित्रित हुआ है। प्रकृति और जंगल का चित्र उनकी कहानियों में उभर कर सामने आया है। व्यक्तिवादी स्वार्थता का यहाँ पर कोई भी स्थान नहीं है। एक भरे पूरे परिवार में ख़ुशियाँ तलाश करने की चेष्टा उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ती है। ये प्रवृत्तियाँ शायद उदय प्रकाश को अपने समकालीन अन्य लेखकों से एक अलग विशिष्ट पहचान प्रदान करती हैं।

- घर परिवार एवं आत्मीय संबंधों के अलावा आसपास का परिवेश की चित्रण

'तिरिछ' कहानी का परिचय

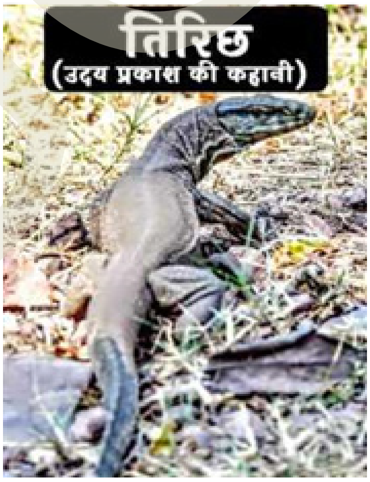

पाठ का सारांश

'तिरिछ' कहानी का कथानक लेखक के पिताजी से सम्बन्धित है। इसका संबंध लेखक के सपने से भी है। इसके अतिरिक्त, कहानी में शहर के प्रति जो जन्मजात भय होता है उसकी विवेचना भी इस कहानी में की गई है। गाँव एवं शहर की जीवन-शैली का इसमें तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया गया है। गाँव की सादगी तथा शहर का कृत्रिम आचरण इसमें प्रतिबिम्बित होता है।

- गाँव एवं शहर की जीवन-शैली का सफलतापूर्वक तुलनात्मक अध्ययन

लेखक के पिताजी जो पचपन साल के वयोवृद्ध व्यक्ति हैं, उनकी विशिष्ट जीवन शैली है। वह मितभाषी हैं। उनका कम बोलना, हमेशा मुँह में तम्बाकू का भरा रहना भी है। बच्चे उनका आदर करते थे तथा उनकी कम बोलने की आदत के कारण सहमे भी रहते थे। घर की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी।

एक दिन शाम को जब वे टहलने निकले तो एक विषैले जन्तु तिरिछ ने उन्हें काट लिया। उसका विष साँप की तरह जहरीला तथा प्राणघातक होता है। रात में झाड़-फूंक तथा इलाज चला दूसरे दिन सुबह उन्हें शहर की कचहरी में मुकदमे की तारीख के क्रम में जाना था। घर से वे गाँव के ही ट्रैक्टर पर सवार होकर शहर को रवाना हुए। तिरिछ द्वारा काटे जाने की घटना का वर्णन ट्रैक्टर पर सवार अन्य लोगों से करते हैं। ट्रैक्टर पर सवार उनके सहयात्री पं. रामऔतार ज्योतिषी के अलावा वैद्य भी थे। उन्होंने रास्ते में ट्रैक्टर रोककर उनका उपचार किया। धतूरे की बीज को पीसकर उबालकर काढ़ा बनाकर उन्हें पिलाया गया। ट्रैक्टर आगे बढ़ा तथा शहर पहुँचकर लेखक के पिताजी ट्रैक्टर से उतरकर कचहरी के लिए रवाना हुए।

- तिरिछ का विष साँप की तरह जहरीला तथा प्राणघातक होता है

यह समाचार पं. रामऔतार ने गाँव आकर बताया, क्योंकि वे (लेखक के बाबूजी) शाम को घर नहीं लौटे थे, विभिन्न स्रोतों से उनके विषय में निम्नांकित जानकारी प्राप्त हुई। ट्रैक्टर से उतरते समय उनके सिर में चक्कर आ रहा था तथा कंठ सूख रहा था। गाँव के मास्टर नंदलाल, जो उनके साथ थे, उन्होंने बताया। इस बीच वे स्टेट बैंक की देशबन्धु मार्ग स्थित शाखा, सर्किट हाउस के निकट वाले थाने में क्रमशः गए। उक्त स्थानों ने उन्हें अपराधी प्रवृत्ति तथा असामाजिक तत्व समझकर काफी पिटाई की गई और वे लहू-लुहान हो गए। अंत में वे इतवारी कॉलोनी गए।

वहाँ उनको कहते सुना गया, 'मैं राम स्वारथ प्रसाद, एक्स स्कूल हेडमास्टर एंड विलेज हेड ऑफ..... ग्राम बकेली ...।' किन्तु वहाँ उन्हें पागल समझकर कॉलोनी के छोटे-बड़े लड़कों ने उनपर पत्थर बरसाकर रही-सही कसर निकाल दी। उनका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया। घिसते-पिटते लगभग शाम छः बजे सिविल लाइन्स की सड़क की पटरियों पर बनी मोचियों की दुकान में से गणेशवा मोची की दुकान के अन्दर चले गए। गणेसवा मोची उनके बगल के गाँव का रहनेवाला था। उसने उन्हें पहचाना। कुछ ही देर में उनकी मृत्यु हो गई।

- उनका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया

इस प्रकार इस कहानी के द्वारा लेखक ने सांकेतिक भाषा शैली में आधुनिक शहरों में विकृतियों एवं विसंगतियों पर कटाक्ष किया है। दूषित मानसिकता से ग्रसित शहरी जीवन-शैली 'तिरिछ' की तरह भयानक तथा विषैली हो गयी है। वास्तविकता की तह में गए बगैर हम दरिन्दगी तथा अमानवीय कृत्यों पर उतर आते हैं।

- दूषित मानसिकता से ग्रसित शहरी जीवन-शैली 'तिरिछ' की तरह भयानक तथा विषैली

लेखक का मन्तव्य (उद्देश्य) निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है, 'इस समय पिताजी को कोई दर्द महसूस नहीं होता रहा होगा, क्योंकि वे अच्छी तरह से पूरी तार्किकता और गहराई के साथ विश्वास करने लग गए होंगे कि यह सब सपना है और

- उन्हें पता था कि वे ठेले सपने के भीतर जा रहे हैं और इससे किसी को कोई चोट नहीं आएगी

जैसे ही वे जागेंगे, सब कुछ ठीक हो जाएगा। लेखक पुनः कहता है-' इसके पीछे पहली वजह तो यही थी कि उन्हें यह बहुत अच्छी तरह से पता था कि वे ठेले सपने के भीतर जा रहे हैं और इससे किसी को कोई चोट नहीं आएगी।' इससे (इन पंक्तियों से) कहानी में लेखक का संदेश स्पष्ट परिलक्षित होता है।

(तिरिछ : यह एक प्रकार का जानवर होता है। इसके बारे में लोक मान्यता यह है कि यह जिसको काटता है उसका बचना मुश्किल होता है। काटने के 24 घंटे बाद शरीर में ज़हर फैल जाता है फिर मृत्यु हो जाती है)

कहानी का शिल्पः

कहानी जिस विशेषता के बल पर टिकी होती है उसे कहानी का शिल्प कहते हैं। इसके अन्तर्गत भाषा, शैली और संवाद आते हैं। इसमें जादुई यथार्थवाद का प्रयोग किया गया है जो एक पद्धति भी है और शिल्प का नया प्रयोग भी। जादुई यथार्थवाद की शैली को एक साहित्यिक शैली के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें काल्पनिक चीजों को न केवल संभव माना जाता है, बल्कि यथार्थवादी भी माना जाता है।

भाषा

- शब्दों के द्वारा ही कथा में रोचकता, पात्रों में सजीवता और परिवेश में स्वाभाविकता

कहानीकार की रचना की सारी विशेषताएँ भाषा के माध्यम से ही हमारे सामने आती है। इसलिए कहानी की संरचना का प्राण भाषा को कहा जाता है। शब्दों के द्वारा ही कथा में रोचकता, पात्रों में सजीवता और परिवेश में स्वाभाविकता आती है। रचनात्मक का भाषा पर जितना अधिक अधिकार होगा, उसकी रचना उतनी ही उत्कृष्ट होगी।

शैली

- 'तिरिछ' कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है

कहानी चाहे घटना प्रधान हो या चरित्र प्रधान, उसकी विषयवस्तु ऐतिहासिक हो या समकालीन, चाहे वह जिस दृष्टि या उद्देश्य से लिखी गयी हो, प्रत्येक कहानीकार का लिखने का अपना अंदाज होता और कहानीकार इसी कारण विशिष्ट होता है। कहानी लिखने की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। घटनाप्रधान कहानियाँ प्रायः वर्णात्मक शैली में लिखी जाती हैं जिसमें लेखक घटनाओं का वर्णन करता है। चरित्रप्रधान कहानियों में लेखक मनोविश्लेषणात्मक का प्रयोग करता है और पात्रों के अंतर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करता है। कथानक आवश्यकतानुसार आत्मकथात्मक शैली का पूर्वदीप्ति शैली, फंतासी शैली का भी प्रयोग करता है।

संवाद

- संवाद के द्वारा कथनी में नाटकीयता लायी जा सकती है

कहानी के विभिन्न पात्र आपस में बातचीत करते हैं, उन्हें ही हम संवाद कहते हैं। संवादों से कहानी आगे बढ़ती है। विभिन्न पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। संवाद के द्वारा कथनी में नाटकीयता लायी जा सकती है और लम्बे चौड़े वर्णन से बचा जा सकता है। 'तिरिछ' कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। इसमें जादुई यथार्थवाद का

प्रयोग किया गया है जो एक पद्धति भी है और शिल्प का नया प्रयोग भी। मिथकों, विश्वासों, धारणाओं और मान्यताओं का सहारा लेकर एक रचनाकार यथार्थ को प्रभावी बनाने का प्रयास करता है। आज के जटिल यथार्थ को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिए जादुई यथार्थवाद का प्रयोग किया जाता है।

तिरिछ कहानी के मुख्य बिंदु :

- यह एक लम्बी कहानी है।
- गाँव और शहर की जीवन-शैली का तुलनात्मक अध्ययन।
- तात्कालिकता के साथ भविष्य के भयावह रूप को दिखाना।
- समकालीन समय के दुःस्वप्नों की ओर इंगित करना।
- भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था और उसकी लापरवाही को उजागर करना।
- उपभोक्तावादी संस्कृति के बिंब को सामने लाना।
- जादुई यथार्थ का प्रयोग।
- यह कहानी नई पीढ़ी के प्रतिनिधि बेटे के नज़रिए से लिखी गई है।
- इस कहानी में शहर के प्रति जन्मजात भय की भी बात की गई है।
- इस कहानी में गाँव की सादगी और शहर के कृत्रिम आचरण को दिखाया गया है।
- इस कहानी में शहरी लोगों की अमानवीयता का पता चलता है।

जादुई यथार्थवाद : अर्थ और परिभाषा

जादुई यथार्थवाद एक ऐसी साहित्यिक विधा या शैली है जो यथार्थवादी कथा साहित्य में काल्पनिक या पौराणिक तत्वों को शामिल करती है।

- यथार्थवादी कथा साहित्य में काल्पनिक या पौराणिक तत्वों को शामिल कराना

परिभाषा : जादुई यथार्थवाद एक साहित्यिक शैली है जो जादुई तत्वों को यथार्थवादी सेटिंग्स और घटनाओं के साथ मिश्रित करती है, जिससे एक ऐसी कथा बनती है जिसमें असाधारण को रोज़मर्रा की ज़िन्दगी का हिस्सा माना जाता है।

जादुई यथार्थवाद की अवधारणा :

जर्मन कला समीक्षक फ्रेंज रोह ने चित्रकला की एक रहस्यवादी शैली के संदर्भ में 1925 में जादुई यथार्थवाद (मेजिकल रियलिज्म) पद का उपयोग किया था। लेकिन साहित्य में इसकी चर्चा 1955 में तब शुरू हुई जब कुछ लेखकों के उपन्यासों में यथार्थवाद के जिस रूप की अभिव्यक्ति हुई उसे यथार्थवाद की प्रचलित अवधारणाओं से भिन्न पाया। 1940 में दो लैटिन अमरीकी लेखक मिगुएल एंजेल आस्त्रियास और एलीजो कार्पेटियर के उपन्यासों मे जादुई यथार्थवाद को एक शैली की तरह

- मिगुएल एंजेल आस्त्रियास और एलीजो कार्पेटियर के उपन्यासों मे एक शैली की रूप

अपनाया गया था। लेकिन जादुई यथार्थवाद की विश्वव्यापी चर्चा की शुरुआत स्पेनी भाषा के प्रख्यात लेखक गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज के उपन्यास 'द हंड्रेड इयर्स ऑफ सॉलीट्यूड' (1967) के प्रकाशन से हुई। इसके बाद दुनिया भर के बहुत से लेखकों ने अपने लेखन में इस शैली का इस्तेमाल किया।

- कथा साहित्य में प्रयुक्त यथार्थवाद की एक ऐसी शैली

जादुई यथार्थवाद कथा साहित्य में प्रयुक्त यथार्थवाद की एक ऐसी शैली है जिसमें मौजूदा समय के यथार्थ की आलोचना की एक नयी पद्धति का इस्तेमाल किया गया है। इस शैली में यथार्थ की संरचना के बीच ही कुछ ऐसी अयथार्थ प्रतीत होने वाले जादुई, मिथकीय और प्रतीकात्मक तत्वों का समावेश इस तरह किया जाता है ताकी यथार्थ में निहित अंतर्विरोधों और उसके जनविरोधी चरित्र को सामने लाया जा सके।

हिंदी आलोचक चंचल चौहान ने जादुई यथार्थवाद की अवधारणा को लैटिन अमेरिका के इतिहास और परंपरा से जोड़ते हुए उसे समझने का प्रयास किया है। उनके अनुसार, लातिन अमेरिकी देशों में साम्राज्यवादी शोषण से मुक्ति के संघर्ष में वहाँ की जनता ने नये यथार्थ का साक्षात्कार किया और अपनी अस्मिता की रचना भी इसी संघर्ष के साथ-साथ की समाज व्यवस्था की एक लंबी छलांग सचमुच जादुई थी। जादुई यथार्थवाद से समृद्ध रचनाएँ :

1. गैब्रियल गार्सिया मार्केज़ द्वारा वन हंड्रेड इयर्स ऑफ़ सॉलिट्यूड (1967)
2. सलमान रुश्दी द्वारा मिडनाइट्स चिल्ड्रन (1981)
3. द हाउस ऑफ द स्पिरिट्स, इसाबेल अलेंदे द्वारा (1982)
4. नाइट्स एट द सर्कस, एंजेला कार्टर द्वारा (1984)
5. रेड सोरघम, मो यान (1986)
6. टोनी मॉरिसन द्वारा बेलवेड (1987)

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

जादुई यथार्थवाद में मिथकों, विश्वासों, धारणाओं और मान्यताओं का संयोजन होता है। लेखक इन्हें अपने यथार्थवाद में शामिल कर अपने समय की वास्तविकता को नया रूप देता है। 'तिरिछ' कहानी जीवन की कठोर सच्चाई को सामने लाती है। यह आधुनिक समाज की एक भयावह तस्वीर प्रस्तुत करती है, जो हमें भविष्य की चेतावनी भी देती है। यही एक बड़े कहानीकार की दृष्टि होती है। इस कहानी का नायक मानो विश्व-द्रष्टा बन गया हो। यह कहानी इंसानों की संवेदनशीलता को झकझोर देती है और हमें उस यथार्थ से रूबरू कराती है जिसे आधुनिकता, विकास और अंधी दौड़ ने जन्म दिया है। इसका समय-क्षेत्र केवल 24 घंटे का है, जिनमें से 8 घंटे शहर में बिताए गए, जो इसकी संवेदनशीलता और मानवीयता को गहराई देते हैं। उदय प्रकाश इस समाज की पूरी व्यवस्था को 'तिरिछ' के ज़हर की तरह पाठकों के सामने रखते हैं, जिससे पता चलता है कि एक व्यक्ति को गैर-तथ्य के आधार पर कैसे प्रताड़ित किया जाता है। यह कहानी प्रशासन और व्यवस्था पर सवाल उठाती है और हमारे समय के यथार्थ को समझने में मदद करती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. जादुई यथार्थ की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
2. 'तिरिछ' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
3. 'तिरिछ' कहानी की संरचना पर विचार कीजिए।
4. 'तिरिछ' कहानी में अभिव्यक्त जीवन के यथार्थ पर प्रकाश डालिए।
5. उदय प्रकाश की रचनाओं का परिचय दीजिए।
6. उदय प्रकाश का साहित्यिक परिचय दीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. निरिछ - उदय प्रकाश
2. मिडनाइट्सचिल्ड्रन - सल्मान रुश्दी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. समकालीन यथार्थवाद – जॉर्ज लुकाच, अनुवाद- कर्णसिंह चौहान।
2. यथार्थवाद साहित्यिक निबंध – सम्पादक डॉ.त्रिभुवन सिंह।
3. हिंदी कथा साहित्य : विचार और विमर्श – डॉ. चंचल चौहान।
4. यथार्थवाद- डॉ.शिवकुमार मिश्र।
5. समकालीन लेखन में यथार्थवाद और जनवाद, सम्पादन – आनंद प्रकाश।

इकाई 3

संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- संकरता की अवधारणा के बारे में समझता है
- 'संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में' जानता है
- हिन्दी साहित्य में संकरता का चित्रण प्राप्त होता है
- प्रमुख संकरता की रचनाकारों से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

संकरता (Hybridization) का अर्थ है दो या अधिक भिन्न सांस्कृतिक, भाषाई, सामाजिक या साहित्यिक तत्वों का मेल, जिससे एक नई संरचना या पहचान का निर्माण होता है। यह संकल्पना विशेष रूप से प्रवासी साहित्य के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाती है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और पहचानों के बीच तालमेल देखने को मिलता है। प्रवासी साहित्य उन लेखकों की रचनाओं को सम्मिलित करता है, जो अपने मूल देश को छोड़कर किसी अन्य देश में निवास कर रहे हैं और वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक जटिलताओं को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करते हैं। संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य में दोहरी पहचान, सांस्कृतिक टकराव, भाषा का मिश्रण और नई सांस्कृतिक धारा के निर्माण के रूप में उभरती है। प्रवासी साहित्यकारों के लेखन में संकरता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जहाँ वे अपने देश की स्मृतियों, परंपराओं और मूल्यों को अपनाए रखते हुए नए समाज की वास्तविकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। हिन्दी साहित्य में संकरता के विविध आयाम देखने को मिलते हैं, विशेष रूप से प्रवासी लेखकों के साहित्य में, जहाँ वे अपनी मातृभाषा, सांस्कृतिक पहचान और विदेशी परिवेश के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करते हैं। इस संदर्भ में, अनेक रचनाकारों ने भाषा, कथानक और शिल्प के स्तर पर संकरता को अपनाया है। प्रवासी साहित्य में द्विभाषिकता, विदेशी शब्दों का प्रयोग और भिन्न सांस्कृतिक परिदृश्यों का चित्रण प्रमुख रूप से देखने को मिलता है। इस प्रकार, संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के लिए एक अनिवार्य तत्व बन चुकी है, जो न केवल साहित्यिक शिल्प को प्रभावित करती है बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक संवाद को भी नए अर्थ प्रदान करती है। प्रस्तुत इकाई में उपर्युक्त विषय पर गहराई से अध्ययन किया जाएगा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

संकरता, संरचना, सांस्कृतिक टकराव, जटिलता, सामंजस्य, द्विभाषिकता, परिदृश्य, अवधारणा, संवाद

Discussion / चर्चा

संकरता की अवधारणा

होमी के. भाभा की संकरता की अवधारणा (Hybridity) उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन (Postcolonial Studies) में एक महत्वपूर्ण सैद्धांतिक आधार है। यह अवधारणा पहचान (Identity) को स्थिर या निश्चित मानने के बजाय उसे एक सतत् प्रक्रिया के रूप में देखती है, जो विभिन्न सांस्कृतिक मुठभेड़ों (Cultural Encounters) के माध्यम से विकसित होती रहती है।

संकरता की अवधारणा क्या है?

- संस्कृतियों, भाषाओं, परंपराओं या विचारधाराओं के मेल से उत्पन्न एक नया रूप

संकरता का अर्थ है दो या अधिक संस्कृतियों, भाषाओं, परंपराओं या विचारधाराओं के मेल से उत्पन्न एक नया रूप, जो न तो पूरी तरह मूल होता है और न पूरी तरह विदेशी। यह कोई स्थिर या निश्चित पहचान नहीं होती, बल्कि यह निरंतर बदलाव और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया होती है।

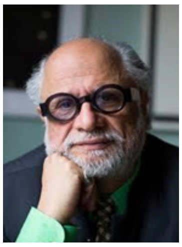

होमी के भाभा

A concept elaborated by Homi K Bhabha, hybridity is the rejection of a single or unified identity, and a preference for multiple cultural locations and identities.

भाभा का दृष्टिकोण

- उपनिवेशवाद के दौरान और उसके बाद भी विभिन्न संस्कृतियों के बीच निरंतर मुठभेड़

भाभा का मानना है कि उपनिवेशवाद के दौरान और उसके बाद भी विभिन्न संस्कृतियों के बीच निरंतर मुठभेड़ (Encounter) होती रही है। इस प्रक्रिया में एक नया संकर सांस्कृतिक स्थान (Hybrid Cultural Space) निर्मित होता है, जहाँ पहचान (Identity) कोई निश्चित या अपरिवर्तनीय चीज़ नहीं होती, बल्कि वह संवाद (Negotiation) और बदलाव की स्थिति में रहती है।

संकरता पहचान की स्थिर धारणाओं को कैसे चुनौती देती है?

- पहचान हमेशा बाहरी प्रभावों और अंतःसंवादों के कारण बदलती रहती है

परंपरागत रूप से, पहचान को एक निश्चित और अपरिवर्तनीय तत्व के रूप में देखा जाता था। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति को किसी विशिष्ट भाषा, धर्म या संस्कृति से जोड़कर उसकी पहचान तय कर दी जाती थी। लेकिन भाभा की संकरता की अवधारणा इस स्थिरता को अस्वीकार करती है। वह यह दिखाती है कि पहचान हमेशा बाहरी प्रभावों और अंतःसंवादों के कारण बदलती रहती है।

संकरता और अंतरालीय (In-Between) स्थान

- भाभा ने 'थर्ड स्पेस' या 'अंतरालीय स्थान' का विचार प्रस्तुत किया

भाभा ने 'थर्ड स्पेस' (Third Space) या 'अंतरालीय स्थान' (Liminal Space) का विचार प्रस्तुत किया, जो दो संस्कृतियों के बीच का वह स्थान है जहाँ पहचानें आपस में मिलती हैं, बातचीत करती हैं और बदलती हैं। यह स्थान केवल उपनिवेशित (Colonized) और उपनिवेशक (Colonizer) के बीच ही नहीं, बल्कि विभिन्न समुदायों, जातियों, भाषाओं और परंपराओं के बीच भी मौजूद होता है।

उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन में इसका महत्व

- **औपनिवेशिक सत्ता का प्रतिरोध** – संकरता से यह स्पष्ट होता है कि उपनिवेशवादी (Colonial) और स्वदेशी (Indigenous) पहचानें परस्पर बातचीत के माध्यम से बदलती हैं। इससे उपनिवेशवाद द्वारा स्थापित कठोर सांस्कृतिक भेद मिटने लगते हैं।
- **नवीन सांस्कृतिक पहचान का निर्माण** – यह अवधारणा दिखाती है कि औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में लोग केवल 'शुद्ध' संस्कृतियों के वाहक नहीं होते, बल्कि वे विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों से नई पहचानें गढ़ते हैं।
- **स्थानीय और वैश्विक के बीच संबंध** – संकरता यह दर्शाती है कि कोई भी संस्कृति पूरी तरह स्वतंत्र या शुद्ध नहीं होती, बल्कि वह अन्य संस्कृतियों के साथ संबंधों के माध्यम से विकसित होती है।

- पहचान कोई स्थिर तत्व नहीं है, बल्कि वह एक गतिशील प्रक्रिया है

होमी के. भाभा की संकरता की अवधारणा यह बताती है कि पहचान कोई स्थिर तत्व नहीं है, बल्कि वह एक गतिशील प्रक्रिया है, जो विभिन्न सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों में निरंतर रूपांतरित होती रहती है। यह अवधारणा उपनिवेशवाद के प्रभावों को समझने और उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में सांस्कृतिक पहचान के निर्माण को विश्लेषित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में

संकरता (Hybridism) एक बहुआयामी अवधारणा है, जो सांस्कृतिक, भाषायी और सामाजिक संदर्भों में विभिन्न प्रभावों के मिश्रण को दर्शाती है। हिन्दी प्रवासी साहित्य में

- प्रवासी लेखकों का अनुभव दो या अधिक संस्कृतियों के संपर्क में आने से निर्मित होता है

यह अवधारणा विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि प्रवासी लेखकों का अनुभव दो या अधिक संस्कृतियों के संपर्क में आने से निर्मित होता है। प्रवासी साहित्य भारतीय मूल के लेखकों द्वारा विदेशी परिवेश में रचित साहित्य है, जिसमें उनकी जड़ें, संघर्ष, पहचान और संस्कृतियों का द्वंद्व अभिव्यक्त होता है।

1. संकरता और प्रवासी साहित्य

संकरता का तात्पर्य दो या अधिक सांस्कृतिक तत्वों के आपसी मेल-जोल से उत्पन्न एक नई पहचान या संरचना से है। प्रवासी साहित्य में यह विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, जैसे—

(क) भाषायी संकरता

हिन्दी प्रवासी साहित्य में हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी, मलय, डच, अरबी आदि भाषाओं का मिश्रण देखने को मिलता है। लेखक कभी-कभी अपने पात्रों की संवाद शैली में दूसरी भाषाओं के शब्दों, वाक्य संरचनाओं या अभिव्यक्तियों को शामिल करते हैं, जिससे एक बहुभाषी प्रभाव उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, उषा प्रियंवदा, गगन गिल और चित्रा मुद्‌गल जैसे लेखकों की रचनाओं में यह संकरता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

(ख) सांस्कृतिक संकरता

- अपनी मूल भारतीय संस्कृति और नए परिवेश की संस्कृति के बीच एक संतुलन बनाते हैं

प्रवासी भारतीय लेखक अपनी मूल भारतीय संस्कृति और नए परिवेश की संस्कृति के बीच एक संतुलन बनाते हैं। उनके साहित्य में भारतीय परंपराएँ, मूल्य और रीति-रिवाज़ पश्चिमी सोच और आधुनिक जीवनशैली से टकराते हुए दिखते हैं। मृदुला गर्ग, अचला नागर तथा कमलेश्वर जैसे लेखकों की प्रवासी विषयक कहानियाँ इस द्वंद्व को उभारती हैं।

(ग) पहचान और संकरता

प्रवासियों के लिए सबसे बड़ा सवाल उनकी पहचान का होता है। वे न पूरी तरह अपनी जन्मभूमि से कट पाते हैं और न ही पूरी तरह नए देश में घुल-मिल पाते हैं। इस द्वंद्व को हिन्दी प्रवासी साहित्य में 'संकर पहचान' (Hybrid Identity) के रूप में देखा जा सकता है।

3. संकरता के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव

1. साहित्य को एक नई दृष्टि और वैश्विक स्वरूप प्रदान करता है।
2. सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देता है।
3. नई भाषायी संरचनाओं और लेखन शैलियों का जन्म होता है।

नकारात्मक प्रभाव

1. मूल सांस्कृतिक पहचान के विलुप्त होने का भय।
2. भाषायी शुद्धता की समस्या।
3. सांस्कृतिक अलगाव और मानसिक द्वंद्व।

- प्रवासी लेखकों के अनुभवों और उनके द्वंद्वों को समझने का एक सशक्त माध्यम

हिन्दी प्रवासी साहित्य में संकरता की अवधारणा न केवल भाषा और संस्कृति के स्तर पर बल्कि पहचान और अस्तित्व के स्तर पर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह प्रवासी लेखकों के अनुभवों और उनके द्वंद्वों को समझने का एक सशक्त माध्यम है। संकरता से साहित्य में नवीनता आती है, जिससे यह अधिक प्रभावशाली और व्यापक बनता है।

प्रवासी हिन्दी साहित्य एवं उसकी प्रवृत्तियाँ

- विदेशों में रहने वाले हिन्दी साहित्यकारों द्वारा रचित

हिन्दी साहित्य की धारा केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि इसने विश्वभर में बसे हिन्दी भाषियों के माध्यम से एक वैश्विक स्वरूप ग्रहण किया है। प्रवासी हिन्दी साहित्य उन साहित्यिक कृतियों को संदर्भित करता है, जो विदेशों में रहने वाले हिन्दी साहित्यकारों द्वारा रचित हैं। यह साहित्य प्रवासी जीवन के संघर्ष, सांस्कृतिक पहचान, नॉस्टेल्जिया और सामाजिक परिवर्तन को दर्शाता है।

प्रवासी हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति

- व्यापार, शिक्षा और रोज़गार की तलाश में अनेक भारतीय विदेशों में बसे।

प्रवासी हिन्दी साहित्य की जड़ें भारत से बाहर जाने वाले प्रवासियों के साथ जुड़ी हुई हैं। उपनिवेशवाद, व्यापार, शिक्षा और रोज़गार की तलाश में अनेक भारतीय विदेशों में बसे। विशेष रूप से मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में हिन्दी भाषियों की बस्तियाँ बसीं। इन प्रवासियों ने अपनी मातृभाषा को जीवंत बनाए रखने के लिए साहित्य सृजन को अपनाया।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रवासी हिन्दी साहित्य में विभिन्न प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं:

सांस्कृतिक पहचान और आत्मसंघर्ष – प्रवासी हिन्दी साहित्यकार अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहने की कोशिश करते हैं। वे अपनी रचनाओं में भारत से जुड़ी स्मृतियों,

परंपराओं और प्रवासी जीवन की चुनौतियों को चित्रित करते हैं।

नॉस्टेल्जिया (स्मृतियों की कसक) – अनेक प्रवासी साहित्यकारों की कृतियों में मातृभूमि की यादें, बचपन के अनुभव और परिवार से दूरी का दर्द प्रमुख रूप से व्यक्त होता है। उदाहरण के लिए, गिरिराज किशोरी और रामदेव धुरंधर जैसे लेखकों ने इस विषय पर उत्कृष्ट साहित्य सृजन किया है।

सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष – कई प्रवासी लेखकों ने अपने साहित्य में प्रवासी भारतीयों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को उकेरा है। वे नस्लवाद, भेदभाव, शोषण और समानता के मुद्दों को अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं।

बहुसंस्कृतिवाद और समायोजन – आधुनिक प्रवासी साहित्य में दो संस्कृतियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। प्रवासी हिन्दी साहित्यकार पश्चिमी जीवनशैली और भारतीय परंपराओं के मध्य संतुलन बनाए रखने की कोशिश को दर्शाते हैं।

- भारत से जुड़ी स्मृतियों, परंपराओं और प्रवासी जीवन की चुनौतियों का चित्रण

नारीवाद और स्त्री संघर्ष – प्रवासी महिलाओं के अनुभवों, उनकी स्वतंत्रता, संघर्ष, तथा पहचान के मुद्दों को भी प्रवासी साहित्य में स्थान मिला है। अनेक महिला लेखिकाएँ जैसे कि सुमन कुमारी और मीरा सिंह प्रवासी स्त्री जीवन पर लेखन कर रही हैं।

भाषा और अभिव्यक्ति की विशेषताएँ – प्रवासी हिन्दी साहित्य में भाषा की दृष्टि से विविधता देखने को मिलती है। इसमें कई जगहों पर विदेशी शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो प्रवासी जीवन की वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है।

प्रमुख प्रवासी हिन्दी साहित्यकार

वर्तमान में प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों की संख्या बढ़ रही है। इनमें प्रमुख रूप से फिजी के विश्वनाथ प्रसाद, मॉरीशस के अभिमन्यु अनत, त्रिनिदाद के रामदेव धुरंधर, अमेरिका के तेजेन्द्र शर्मा, कनाडा की इंदिरा गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं।

- वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा और संस्कृति को समृद्ध करनेवाला साहित्य

प्रवासी हिन्दी साहित्य हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण शाखा बन चुका है, जो वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा और संस्कृति को समृद्ध कर रहा है। यह साहित्य प्रवासी भारतीयों के अनुभवों को व्यक्त करने के साथ-साथ भारतीय और विदेशी संस्कृतियों के बीच सेतु का कार्य भी कर रहा है। प्रवासी हिन्दी साहित्य न केवल भावनात्मक और सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण है, बल्कि साहित्यिक दृष्टिकोण से भी यह हिन्दी भाषा की विविधता और व्यापकता को दर्शाता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण विषय है, जो दो या अधिक संस्कृतियों, भाषाओं और परंपराओं के मेल से उत्पन्न नई पहचान और संरचना को दर्शाती है। होमी के. भाभा की संकरता की अवधारणा उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन में विशेष स्थान रखती है, जो यह स्पष्ट करती है कि पहचान कोई स्थिर तत्व नहीं होती, बल्कि वह निरंतर बदलाव और संवाद की प्रक्रिया में रहती है। प्रवासी साहित्य में संकरता विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, जैसे भाषायी संकरता, सांस्कृतिक संकरता और पहचान का द्वंद्व। हिन्दी प्रवासी साहित्य में लेखकों द्वारा हिन्दी के साथ अन्य भाषाओं का मिश्रण, सांस्कृतिक मूल्यों के टकराव और द्विभाषिकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रवासी साहित्यकार अपनी जड़ों और नई संस्कृति के बीच संतुलन बनाते हुए एक नई सांस्कृतिक धारा का निर्माण करते हैं। यह साहित्य प्रवासी भारतीयों के संघर्ष, नॉस्टेल्जिया, सामाजिक परिवर्तन और आत्मसंघर्ष को उजागर करता है। प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों, जैसे तेजेन्द्र शर्मा, अभिमन्यु अनत और रामदेव धुरंधर, ने अपने लेखन के माध्यम से इस संकरता को प्रभावी रूप से व्यक्त किया है। कुल मिलाकर, प्रवासी साहित्य में संकरता न केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति को नया स्वरूप देती है, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक संवाद को भी नए आयाम प्रदान करती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. संकरता की अवधारणा लिखिए।
2. संकरता की अवधारणा प्रवासी साहित्य के संदर्भ में टिप्पणी लिखिए।
3. संकरता और प्रवासी साहित्य पर टिप्णी लिखिए।
4. प्रवासी हिन्दी साहित्य की उत्पत्ती और प्रमुख प्रव-त्तियाँ लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी का प्रवासी साहित्य - कालीचरण स्नेही
2. प्रवासी हिन्दी साहित्य अवधारणा एवं चिंतन-प्रदीप श्रीधर
3. हिन्दी का प्रवासी साहित्य - डॉ. कमल किशोर गोयनका
4. www.gurukuljournal.com
5. www.Shodhbraham.com
6. wikipedia.org

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. 'उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श'- सुधीश पचौरी
2. Contemporary Literary and CulturalTheory- Pramod.K.Nayar
3. प्रवासी हिन्दी साहित्य दशा एवं दिशा- डॉ.प्रतीप श्रीधर
4. प्रवासी हिन्दी साहित्य विविध आयाम- डॉ.रमा
5. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डॉ.रामकुमार वर्मा
6. प्रवासी भारतीय हिन्दी साहित्य- विमलेश कांति वर्मा

SGOU

इकाई 4

किन्नर विमर्श–मिथकों से अधिकारों तक

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- थर्ड जेंडर की अवधारणा समझता है
- साहित्य में क्वीर सिद्धांत जानता है
- थर्ड जेंडर जीवन शैली से परिचित होता है
- हिन्दी कहानियों में किन्नर विमर्श के बारे में जानकारी प्राप्त करता है
- प्रतीप सौरभ, महेद्र भीष्म अनुसुइया त्यागी, नीरजा माधव आदि परिचित प्राप्त करता है
- निवेदिता झा – किन्नर(कविता) समझता है

Background / पृष्ठभूमि

समाज में थर्ड जेंडर की पहचान ऐतिहासिक रूप से एक विशेष स्थान रखती आई है, किन्तु उन्हें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। भारतीय समाज में किन्नर समुदाय पारंपरिक रीति-रिवाज़ों से जुड़े रहे हैं, फिर भी उनकी अस्मिता का प्रश्न आज भी विचारणीय बना हुआ है। साहित्य में किन्नर विमर्श ने उनकी भावनाओं, संघर्षों और सामाजिक बहिष्करण को सामने लाने का कार्य किया है। यह अध्ययन सामग्री थर्ड जेंडर की अवधारणा, उनकी जीवन शैली, रीति-रिवाज़, तथा साहित्य में किन्नर विमर्श को केंद्र में रखकर तैयार की गई है। इसमें विशेष रूप से हिन्दी साहित्य में क्वीर सिद्धांत और किन्नर समुदाय से संबंधित कहानियों एवं कविताओं का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, इस अध्ययन में कुछ प्रमुख साहित्यकारों जैसे प्रतीप सौरभ, महेंद्र भीष्म, अनुसुइया त्यागी, नीरजा माधव एवं निवेदिता झा की रचनाओं को भी शामिल किया जाएगा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, अस्मिता, संघर्ष, बहिष्करण, अवधारणा

Discussion / चर्चा

थर्ड जेंडर की अवधारणा

- स्वयं को न तो पूरी तरह पुरुष मानते हैं और न ही महिला

समाज में लैंगिक पहचान (Gender Identity) एक महत्वपूर्ण विषय है, जो न केवल जैविक पहलुओं से जुड़ा होता है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कारकों से भी प्रभावित होता है। पारंपरिक रूप से समाज ने पुरुष और महिला के दो स्पष्ट लिंगों को ही स्वीकार किया है, लेकिन वास्तविकता इससे कहीं अधिक जटिल है। थर्ड जेंडर (Third Gender) की अवधारणा इसी जटिलता को स्पष्ट करने का प्रयास करती है, जिसमें वे लोग आते हैं जो स्वयं को न तो पूरी तरह पुरुष मानते हैं और न ही महिला।

- भारतीय संस्कृति में थर्ड जेंडर का अस्तित्व प्राचीन काल से उपस्थित

भारत सहित अनेक देशों में थर्ड जेंडर का अस्तित्व प्राचीन काल से देखा जाता है। भारतीय समाज में 'हिजड़ा', 'किन्नर' और 'अर्द्धनारीश्वर' जैसे विभिन्न शब्दों के माध्यम से इस वर्ग की पहचान की जाती रही है। हिंदू धर्मशास्त्रों में अर्द्धनारीश्वर (भगवान शिव और पार्वती का संयुक्त स्वरूप) का उल्लेख लैंगिक विविधता का प्रतीक माना जाता है। महाभारत में शिखंडी और बृहन्नला जैसे पात्र इस बात का प्रमाण हैं कि थर्ड जेंडर की उपस्थिति सदियों से भारतीय संस्कृति में रही है।

भारत में औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश शासन के दौरान थर्ड जेंडर को कानूनी और सामाजिक रूप से अलग-थलग कर दिया गया। 1871 में लागू किए गए 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' ने हिजड़ा समुदाय को अपराधी घोषित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप इस वर्ग का सामाजिक बहिष्कार शुरू हुआ।

- भारत में सुप्रीम कोर्ट ने अप्रैल 2014 में थर्ड जेंडर को कानूनी मान्यता प्रदान की

लेकिन 21वीं सदी में स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। भारत में सुप्रीम कोर्ट ने अप्रैल 2014 में ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए थर्ड जेंडर को कानूनी मान्यता प्रदान की। इस निर्णय के तहत थर्ड जेंडर को समान अधिकार, शिक्षा, रोज़गार और पहचान प्राप्त करने की स्वतंत्रता दी गई। यह फैसला भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15 (भेदभाव के विरुद्ध सुरक्षा) और अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) की पुष्टि करता है।

- थर्ड जेंडर समुदाय के प्रति भेदभाव समाप्त करके उन्हें मुख्यधारा में शामिल करना

आज, थर्ड जेंडर के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संगठन कार्यरत हैं। 2019 में भारत सरकार ने 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम' पारित किया, जिसका उद्देश्य थर्ड जेंडर समुदाय के प्रति भेदभाव को समाप्त करना और उन्हें मुख्यधारा में शामिल करना है। हालांकि, सामाजिक स्तर पर अब भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और सामाजिक स्वीकृति के क्षेत्रों में अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है।

थर्ड जेंडर की अवधारणा केवल एक जैविक या कानूनी मुद्दा नहीं है, बल्कि यह समाज के समावेशी दृष्टिकोण का भी प्रतिबिंब है। यह आवश्यक है कि समाज में सभी

व्यक्तियों को उनकी लैंगिक पहचान के आधार पर सम्मान और समान अवसर प्राप्त हों। सरकार और समाज को मिलकर थर्ड जेंडर समुदाय के अधिकारों की रक्षा के लिए और अधिक प्रयास करने चाहिए, ताकि वे भी एक गरिमामय जीवन जी सकें। इस प्रकार, थर्ड जेंडर की अवधारणा केवल एक कानूनी मान्यता भर नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा और समानता का प्रतीक है, जिसे व्यापक रूप से स्वीकार किए जाने की आवश्यकता है।

- थर्ड जेंडर की अवधारणा मानवीय गरिमा और समानता का प्रतीक

साहित्य में क्वीर सिद्धांत

क्वीर सिद्धांत साहित्य में LGBTQIA+ पहचान और विषों के प्रतिनिधित्व की व्याख्या और आलोचना करता है, जो अक्सर विषमलैंगिक दृष्टिकोण और लिंग और कामुकता के द्विआधारी वर्गीकरण को चुनौता देते हैं। यह सिद्धांत 1990 के दशक में शुरु हुआ था, जब मुख्यधारा में क्वीर पहचान के मुद्दों पर चर्चा तेजी से बढ़ रही थी। क्वीर सिद्धांत ने समलैंगिक और समलैंगिक अध्ययन से परे बढ़कर सभी LGBTQIA+ पहचानों को शामिल किया है और कई क्वीर सिद्धांतकारों के लिए, यह एक कलंक को पुनः प्राप्त करने का एक तरीका है।

- यह सिद्धांत 1990 के दशक में शुरु हुआ

क्वीर सिद्धांत कामुकता और पहचान से जुड़े मुद्दों की गहन जांच करता है। यह अध्ययन करता है कि ये पहचान कैसे निर्मित होती हैं और किस प्रकार कई द्विआधारी विचार वास्तव में सामाजिक निर्माण होते हैं। यह सिसजेंडर और विषमलैंगिकता की सीमाओं से परे जाकर नए दृष्टिकोण अपनाने को प्रेरित करता है। क्वीर सिद्धांतकार पारंपरिक धारणाओं और रूढ़ियों से आगे बढ़कर कामुकता और पहचान का विश्लेषण करते हैं। एक अकादमिक अनुशासन के रूप में, इसने मानव कामुकता और पहचान को स्वतंत्र और सीमाहिन तरीके से समझने की दिशा प्रदान की है।

- कामुकता और पहचान से जुड़े मुद्दों की गहन जांच करता है

क्वीर सिद्धांत साहित्यिक आलोचना का एक विस्तृत क्षेत्र है, जिसमें कई विविध दृष्टि कोण शामिल हैं। हालांकि, इसमें कुछ सामान्य विशेषताएँ हैः

- **स्थापित मानंदड़ों पर प्रश्न उठानाः** यब सिद्धात सिसजेंडर और विषमलैंगिकता को सामान्य मानने वाली रूढ़ियों को चुनौती देता है और कामुकता एवं लिंग पहचान की व्यापक विविधता पर जोर देता है।
- **रूढ़ियों का सामाजिक निर्माणः** अधिकांश सिद्धांतकारों का मानना है कि कामुकता और लिंग की पारंपरिक धारणाएँ सामाजिक रूप से निर्मित है और मानव विकास उनके परिवेश और प्रभावों से प्रभावित होता है।
- **शक्तिशाली संस्थाओं की आलोचनाः** यह सिद्धांत सत्ता संरचनाओं को खत्म करने की वकालत करता है और भेदभावपूर्ण या प्रतिवंधात्मक नीतियों की समीक्षा करता है।

- कामुकता और लिंग की पारंपरिक धारणाएँ सामाजिक रूप से निर्मित

- **LGBTQIA+ जीवन की खोजः** LGBTQIA+ समुदाय के अनुभवों और कहानियों को सामने लाकर उन्हें सामान्य बनाने और उत्पीडन का विरोध करने का काम करता है।
- **द्विआधारी सोच को चुनौतीः** यह लिंग और कामुकता के पारंपरिक द्विआधारों को तोड़ता है और मानता है कि इंसान पहचान कहीं अधिक तरल और खोजने योग्य है।

जूडिथ बटलरः क्वीर सिद्धांत

- लिंग की पारंपरिक धारणाएँ सामाजिक रूप से निर्मित हैं

जूडिथ बटलर, क्वीर सिद्धांत की प्रमुख और प्रभावशाली हस्तियों में से एक है। वह महिला अध्ययन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान के लिए जानी जाती है। उनकी 1990 में प्रकाशित पुस्तक जेंडर ट्रबल को क्वीर सिद्धांत को एक अकादमिक क्षेत्र के रूप में विकसित करने में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है। जूडिथ बटलर जेंडर ट्रबल में तर्क देती हैं कि लिंग की पारंपरिक धारणाएँ सामाजिक रूप से निर्मित हैं। उनके अनुसार, लिंग एक प्रदर्शन है, जहाँ लोग उन क्रियाओं को अपनाते हैं जो पारंपरिक रूप से उनके जन्म लिंग से जुड़ी होती हैं और यही व्यवहार लिंग पहचान बनाता है।

- बटलर द्वारा लिंग को लचीला और अपरिभाषित मानने का दृष्टिकोण

बटलर द्वारा लिंग को लचीला और अपरिभाषित मानने का दृष्टिकोण लिंग और पहचान से जुड़े क्वीर सिद्धांत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्वीर सिद्धांत लिंग की पारंपरिक परिभाषाओं से आगे बढ़कर इसे एक तरल और निरंतर बदलती अवधारणा के रूप में देखता है। यह लिंग को किसी एक निश्चित परिभाषा तक सीमित करने के विचार का विरोध करता है और द्विआधारी दृष्टिकोण को चुनौती देता है।

सिग्मंड फ्रायड और मिशेल फोकॉल्ट

- हर व्यक्ति किसी न किसी स्तर पर उभयलिंगी होता है

फ्राइड मनोविश्लेषण और मनोविज्ञानिक के इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति माने जाते हैं। उनके मानना कामुकता संबंधी विचार उस समय के लिए काफी असामान्य थे, जब 1990 के दशक की शुरुआत में समलैंगिकता को अवैध और वर्जित समझा जाता था। फ्राइड ने तर्क दिया कि हर व्यक्ति किसी न किसी स्तर पर उभयलिंगी होता है। नका यह भी मानना था कि सेक्स जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है। कई समलैंगिक सिद्धांतकारों ने उनके विचारों को या तो अपनाया या चुनौती दी, दिससे कामुकता पर कई महत्वपूर्ण चर्चाओं की शुरुआत हुई।

- फौकॉल्ट की किताब आधुनिक सिद्धांत के विकास में प्रभाव

फौकॉल्ट की किताब आधुनिक सिद्धांत के विकास में गहराई से प्रभावशाली रही। हालंकि वह विशेष रूप से केवल क्वीर मुद्दों पर ध्यान केंद्रित नहीं करते, फौकॉल्ट मानव कामुकता का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। वह अनुचित विषय माना जाता था। फौकॉल्ट ने यौनिकता पर सत्ता के प्रभाव पर चर्चा की है। 1960 और 1970 के दशकों में LGBTQIA+ समुदाय द्वारा उठाए गए कदमों के बावजूद, सरकार और मीडिया के माध्यम से शक्तिशाली संस्थाएँ उन पर अब भी बड़ा नियंत्रण रखती थीं।

फ्राइड और फौकॉल्ट के विचारों के आधार पर, 1990 के दशक में क्वीर सिद्धांत का एक अनुशासन के रूप में व्यापक विकास हुआ। बटलट, सेडविक और रिच दैसे सिद्धांतकारों ने लिंग पहचान और कामुकता की पारंपरिक धारणाओं को तोड़ते हुए उन्हें चुनौती दी। क्वीर अनुभवों की कहानियाँ अधिक सामान्य और व्यापक रूप से स्वीकर की जीने लगीं। 1990 के दशक के इस सिद्धांत ने कामुकता और पहचान के प्रति हमारी आधुनिक सोच को गहराई से प्रभाविक किया। आज के क्वीर सिद्धांतकार मानव कामुकता और पहचान की तरलता की गहन खोज कर रहे हैं।

- क्वीर अनुभवों की कहानियाँ अधिक सामान्य और व्यापक

थर्ड जेंडर जीवन शैली

मनुष्य की पहचान केवल स्त्री और पुरूष तक ही सीमित नहीं होती। समाज में एक ऐसा वर्ग भी है, जिसे थर्ड जेंडर या तृतीय लिंग कहा जाता है। थर्ड जेंडर वे लोग होते हैं, जो न तो पूरी तरह स्त्री होते हैं और न ही पूरी तरह पुरूष। भारत सहित अनेक देशों में थर्ड जेंडर समुदाय का एक विशिष्ट स्थान है, जो ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है।

- थर्ड जेंडर समुदाय का एक विशिष्ट स्थान

प्राचीन भारतीय समाज में थर्ड जेंडर को सम्मानित स्थान प्राप्त था। महाभारत में शिखंडी का उल्लेख मिलता है, जो तृतीय लिंग से संबंधित एक महत्वपूर्ण पात्र था। इसके अलावा, मुगल काल में हिजड़ा समुदाय को राजदरबारों में एक विशेष भूमिका निभाते हुए देखा गया। ब्रिटिश शासन के दौरान, इस समुदाय को समाज के हाशिये पर धकेल दिया गया और उनके अधिकारों को सीमित कर दिया गया।

थर्ड जेंडर समुदाय की जीवनशैली समाज के विभिन्न पहलुओं से प्रभावित होती है। उनका पारंपरिक रूप से नृत्य, संगीत और आशीर्वाद देने का कार्य प्रमुख रहा है। विवाह, जन्म और अन्य शुभ अवसरों पर हिजड़ा समुदाय का आशीर्वाद लेना शुभ माना जाता है। हालांकि, समाज में उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

- शुभ अवसरों पर हिजड़ा समुदाय का आशीर्वाद लेना शुभ माना जाता है

अधिकांश थर्ड जेंडर समुदाय आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं। शिक्षा और रोज़गार के अवसरों की कमी के कारण वे भिक्षावृत्ति, यौन कार्य और अन्य अनौपचारिक कार्यों में संलग्न होने के लिए विवश होते हैं। हालांकि, हाल के वर्षों में सरकार और गैर-सरकारी संगठनों ने इस समुदाय के लिए रोज़गार और शिक्षा के नए अवसर प्रदान करने के प्रयास किए हैं।

- अधिकांश थर्ड जेंडर समुदाय आर्थिक रूप से कमजोर

भारत में थर्ड जेंडर को संवैधानिक अधिकार प्रदान करने की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। 2014 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय में थर्ड जेंडर को आधिकारिक मान्यता प्रदान की। 2019 में 'ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम' लागू किया गया, जिसके तहत इस समुदाय को भेदभाव से सुरक्षा और अधिकारों की गारंटी दी गई। थर्ड जेंडर समुदाय को समाज में अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे – पारिवारिक अस्वीकृति,

- इनको समाज में अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है

शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता और सामाजिक भेदभाव। इसके अलावा, उन्हें मानसिक तनाव और असुरक्षा का भी सामना करना पड़ता है।

थर्ड जेंडर समुदाय के जीवन को बेहतर बनाने के लिए समाज और सरकार दोनों को मिलकर कार्य करना होगा। शिक्षा और रोज़गार के अवसर बढ़ाने, कानूनी सुरक्षा प्रदान करने और सामाजिक जागरूकता अभियान चलाने से उनकी स्थिति में सुधार किया जा सकता है। मुख्यधारा की शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। थर्ड जेंडर समुदाय हमारे समाज का एक अभिन्न अंग है। उन्हें भी समानता, सम्मान और अधिकार मिलने चाहिए। भारतीय समाज में इस समुदाय को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के लिए मानसिकता में बदलाव आवश्यक है। जब तक समाज उन्हें समानता और गरिमा प्रदान नहीं करता, तब तक समावेशी विकास अधूरा रहेगा। इसलिए, हमें अपने विचारों में परिवर्तन लाना होगा और थर्ड जेंडर समुदाय को भी समाज की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

- थर्ड जेंडर समुदाय हमारे समाज का एक अभिन्न अंग है

थेड जेंडर रीति-रिवाज़

मानव समाज में लिंग (Gender) को परंपरागत रूप से दो वर्गों—पुरुष और महिला—में विभाजित किया जाता रहा है। लेकिन वास्तविकता इससे कहीं अधिक जटिल है। जैविक, मानसिक और सामाजिक स्तर पर लिंग की परिभाषा केवल पुरुष और स्त्री तक सीमित नहीं है। इनके अतिरिक्त एक अन्य वर्ग भी मौजूद है, जिसे 'थर्ड जेंडर' (तीसरा लिंग) के रूप में पहचाना जाता है। भारत में इस समुदाय के लोगों को विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे किन्नर, हिजड़ा, ट्रांसजेंडर, अरावानी, जोगप्पा आदि। इनका समाज में एक विशिष्ट स्थान रहा है, विशेषकर रीति-रिवाज़ों, धार्मिक परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहरों में। हालाँकि, ऐतिहासिक रूप से इनका स्थान कभी सम्मानजनक था, तो कभी इन्हें समाज के हाशिए पर धकेल दिया गया। आज के आधुनिक समाज में भी थर्ड जेंडर को सामाजिक, आर्थिक और कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

- भारत में इस समुदाय के लोगों को विभिन्न नामों से जाना जाता है

भारतीय इतिहास और पौराणिक ग्रंथों में थर्ड जेंडर का उल्लेख प्राचीन काल से मिलता है।

1. प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख

मनुस्मृति में तीसरे लिंग (नपुंसक) का उल्लेख किया गया है, जिसमें इन्हें समाज का एक अंग माना गया है। महाभारत में 'शिखंडी' का चरित्र महत्वपूर्ण है, जो जन्म से स्त्री थे लेकिन पुरुष रूप में पहचाने गए। रामायण में भगवान राम जब 14 वर्षों के वनवास पर जाते हैं, तो हिजड़ा समुदाय उनके लौटने की प्रतीक्षा करता है। जब राम वापस आते हैं, तो वे उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद देते हैं।

- महाभारत में 'शिखंडी' का चरित्र महत्वपूर्ण

2. मुगल और ब्रिटिश काल में स्थिति

- मुगल काल में किन्नर समुदाय को उच्च पदों पर रखा गया था

मुगल काल में किन्नर समुदाय को उच्च पदों पर रखा गया था। वे राजमहलों में सुरक्षा, प्रशासन और दरबार के अन्य कार्यों से जुड़े थे। ब्रिटिश शासन के दौरान 'Criminal Tribes Act, 1871' के तहत इन्हें अपराधी घोषित किया गया, जिससे इनकी सामाजिक स्थिति और अधिक दयनीय हो गई।

थर्ड जेंडर एवं रीति-रिवाज़

भारतीय समाज में थर्ड जेंडर से जुड़ी कई प्रथाएँ और परंपराएँ प्रचलित हैं। इन्हें विभिन्न रीति-रिवाज़ों में विशिष्ट भूमिका दी जाती है, विशेषकर जन्म, विवाह और धार्मिक अनुष्ठानों में।

1. जन्म और विवाह से जुड़े रीति-रिवाज़

- वे नृत्य, गीत और आशीर्वाद देकर परिवार के लिए शुभकामनाएँ देते हैं

जब किसी घर में नवजात शिशु (विशेषकर पुत्र) का जन्म होता है, तो किन्नरों को बुलाया जाता है। वे नृत्य, गीत और आशीर्वाद देकर परिवार के लिए शुभकामनाएँ देते हैं। यह परंपरा इस विश्वास पर आधारित है कि उनका आशीर्वाद सुख-समृद्धि लाता है। विवाह के अवसर पर भी कुछ परिवारों में किन्नरों को बुलाकर आशीर्वाद लिया जाता है ताकि नवविवाहित जोड़े को सुखद दांपत्य जीवन प्राप्त हो। यह मान्यता भी प्रचलित है कि यदि कोई परिवार किन्नरों को दान-दक्षिणा देने से इनकार कर दे, तो वे नाराज होकर बद्दुआ दे सकते हैं, जिससे अशुभ घटनाएँ हो सकती हैं।

2. धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ

बहुचरा माता की पूजाः गुजरात और महाराष्ट्र में कई किन्नर बहुचरा माता की उपासना करते हैं, जिन्हें वे अपनी कुल देवी मानते हैं।

अरावन देवता का विवाहः तमिलनाडु के कोवागम उत्सव में थर्ड जेंडर समुदाय अरावन देवता से प्रतीकात्मक विवाह करता है। यह उत्सव उनकी धार्मिक आस्था का प्रतीक है। कोठंडारामस्वामी मंदिर अनुष्ठानः दक्षिण भारत में यह मंदिर ट्रांसजेंडर समुदाय की धार्मिक गतिविधियों का केंद्र है।

- त्योहारों पर विशेष अनुष्ठानों का आयोजन

त्योहारों में भागीदारीः कुछ स्थानों पर किन्नर दिवाली, होली और अन्य त्योहारों पर विशेष अनुष्ठानों का आयोजन करते हैं।

3. मृत्यु से जुड़े रीति-रिवाज़

थर्ड जेंडर समुदाय के मृत्यु संस्कारों को गुप्त रखा जाता है।

यह माना जाता है कि इन्हें रात में जलाया जाता है और उनका अंतिम संस्कार परंपरागत तरीकों से अलग होता है।

समाज में प्रचलित अंधविश्वासों और भेदभाव के कारण इनके अंतिम संस्कारों को छिपाकर किया जाता है।

पारंपरिक रूप से किन्नर समुदाय भिक्षावृत्ति, नृत्य और आशीर्वाद देने जैसे कार्यों पर निर्भर करता रहा है।

हाल के वर्षों में कुछ गैर-सरकारी संगठनों (NGO) और सरकारी योजनाओं के माध्यम से इन्हें शिक्षा और रोज़गार के अवसर मिल रहे हैं। कुछ किन्नर व्यक्ति राजनीति, कला, व्यवसाय और अन्य क्षेत्रों में भी आगे बढ़ रहे हैं। थर्ड जेंडर भारतीय समाज का अभिन्न अंग हैं और उनके रीति-रिवाज़ हमारी सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। प्राचीन काल में जहाँ इन्हें सम्मान प्राप्त था, वहीं आधुनिक समाज में इन्हें भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि, कानूनी सुधार और जागरूकता अभियानों के माध्यम से स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। समाज को चाहिए कि वह इन व्यक्तियों को समानता का अधिकार दे और भेदभाव से मुक्त वातावरण प्रदान करे। शिक्षा, रोज़गार और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार से इनकी स्थिति को बेहतर बनाया जा सकता है। जब समाज सभी को समान दृष्टि से देखेगा, तभी वास्तविक प्रगति संभव होगी।

- थर्ड जेंडरके रीति-रिवाज़ हमारी सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं

थर्ड जेंडर की अस्मिता का प्रश्न

समाज में लिंग को मुख्यतः पुरुष और स्त्री के रूप में देखा जाता रहा है, लेकिन समय के साथ यह स्पष्ट हुआ है कि इसके अलावा भी एक वर्ग है, जिसे 'थर्ड जेंडर' या 'त्रितीय लिंग' कहा जाता है। थर्ड जेंडर की पहचान, अधिकार और उनकी सामाजिक स्थिति लंबे समय तक उपेक्षित रही है। हालांकि, हाल के वर्षों में यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक और साहित्यिक विमर्श बन चुका है।

- 'थर्ड जेंडर' या 'त्रितीय लिंग'

थर्ड जेंडर की परिभाषा और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

परिभाषाः थर्ड जेंडर उन व्यक्तियों का समूह है जो स्वयं को पारंपरिक पुरुष या स्त्री श्रेणी में नहीं देखते हैं। इसमें हिजड़ा, किन्नर, ट्रांसजेंडर, इंटरसेक्स और अन्य गैर-बाइनरी पहचान वाले लोग आते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि

प्राचीन भारतः महाभारत में शिखंडी का उल्लेख, रामायण में हिजड़ों की भक्ति, तथा अन्य ग्रंथों में किन्नरों का उल्लेख मिलता है।

मध्यकालः इस काल में समाज में इनका स्थान सीमित हो गया और इन पर कई प्रकार की सामाजिक बंदिशें लगा दी गईं।

- भारतीय संविधान ने इन्हें समान अधिकार दिए

औपनिवेशिक कालः ब्रिटिश शासन के दौरान 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' (1871) के तहत इन्हें अपराधी घोषित कर दिया गया।

स्वतंत्रता के बादः भारतीय संविधान ने इन्हें समान अधिकार दिए, लेकिन सामाजिक स्वीकृति में देरी हुई।

(i) समाजिक अस्मिता

- अपने परिवारों द्वारा भी स्वीकार नहीं किया जाता

समाज में थर्ड जेंडर समुदाय की अस्मिता को सबसे बड़ी चुनौती सामाजिक दृष्टिकोण से मिलती है। पारंपरिक समाज में इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है। भारतीय समाज में सदियों से लैंगिक पहचान को पुरुष और स्त्री तक सीमित कर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप, थर्ड जेंडर समुदाय को न केवल अपनी पहचान को लेकर संघर्ष करना पड़ा है, बल्कि उन्हें सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त नहीं हो पाई। थर्ड जेंडर समुदाय को उनके अपने परिवारों द्वारा भी स्वीकार नहीं किया जाता। बचपन से ही यदि कोई बच्चा अपनी लिंग पहचान को पारंपरिक मानदंडों से अलग अनुभव करता है, तो उसे उपेक्षा और तिरस्कार झेलना पड़ता है। कई मामलों में, उन्हें उनके घरों से निकाल दिया जाता है और वे समाज में अकेले संघर्ष करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। परिवार और समाज में इनका स्थान न मिलने के कारण वे एक अलग समुदाय के रूप में संगठित हो जाते हैं और मुख्यधारा से कट जाते हैं। इस सामाजिक बहिष्करण के कारण वे कई मानसिक और भावनात्मक समस्याओं का सामना करते हैं।

- बुनियादी सुविधाओं की कमी, कानूनी अधिकारों की अनुपलब्धता

थर्ड जेंडर समुदाय को शिक्षा और रोज़गार के क्षेत्र में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। स्कूलों और कॉलेजों में इन्हें प्रायः तिरस्कार और भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वे अपनी शिक्षा अधूरी छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं। इसके अलावा, उचित शिक्षा के अभाव में उन्हें नौकरी के अवसर भी सीमित रूप से उपलब्ध होते हैं। समाज में व्याप्त पूर्वाग्रहों के कारण कई नियोक्ता इन्हें नौकरी देने से कतराते हैं। बुनियादी सुविधाओं की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच और कानूनी अधिकारों की अनुपलब्धता भी उनकी अस्मिता को कमजोर करती है। हालाँकि, हाल के वर्षों में सरकार और सामाजिक संगठनों द्वारा कुछ सकारात्मक कदम उठाए गए हैं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

- कानूनी सुधारों के साथ-साथ मानसिकता में बदलाव की आवश्यक

थर्ड जेंडर समुदाय की अस्मिता को सशक्त बनाने के लिए समाज में जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है। उनके अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनी सुधारों के साथ-साथ मानसिकता में बदलाव भी आवश्यक है। शिक्षा और रोज़गार के क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करने से उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हो सकता है। हमें यह समझना होगा कि हर व्यक्ति, चाहे वह किसी भी लिंग से हो, सम्मान और गरिमा के साथ जीने का अधिकार रखता है। जब तक समाज थर्ड जेंडर समुदाय को समान दृष्टि से नहीं देखेगा, तब तक उनकी अस्मिता का प्रश्न अनुत्तरित ही बना रहेगा।

(ii) आर्थिक अस्मिता

आर्थिक अस्मिता किसी भी व्यक्ति या समुदाय की वित्तीय स्वतंत्रता और सम्मानजनक जीवन जीने की क्षमता से जुड़ी होती है। थर्ड जेंडर समुदाय को मुख्यधारा के कार्यक्षेत्रों में अवसरों से वंचित रखा गया है, जिसके कारण इन्हें अपनी आजीविका चलाने के लिए सीमित और अनौपचारिक विकल्पों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस संदर्भ में कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं:

मुख्यधारा की नौकरियों से वंचित रहना:थर्ड जेंडर समुदाय को पारंपरिक नौकरियों, जैसे कि सरकारी और निजी क्षेत्र की नौकरियों में समान अवसर नहीं मिलते।

- मुख्यधारा के कार्यक्षेत्रों में अवसरों से वंचित

समाज में व्याप्त भेदभाव और पूर्वाग्रह के कारण उन्हें शिक्षा और कौशल विकास के अवसरों से भी वंचित रखा जाता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।

- सरकारी नीतियों और सामाजिक जागरूकता के कारण कुछ सकारात्मक परिवर्तन

आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम:हाल के वर्षों में सरकार और विभिन्न सामाजिक संगठनों ने थर्ड जेंडर समुदाय के आर्थिक उत्थान के लिए प्रयास किए हैं। सरकार ने कुछ नीतियों के तहत इन्हें शिक्षा, कौशल विकास और रोज़गार के अवसर प्रदान करने की दिशा में कदम उठाए हैं। कुछ निजी कंपनियों ने भी समावेशी नीतियों को अपनाते हुए थर्ड जेंडर समुदाय के सदस्यों को नौकरी के अवसर देना शुरू किया है। हालाँकि, सरकारी नीतियों और सामाजिक जागरूकता के कारण इस दिशा में कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं, लेकिन अभी भी समाज को अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाने की आवश्यकता है। समावेशी नीतियों और समान अवसरों के माध्यम से ही थर्ड जेंडर समुदाय को एक गरिमामय और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार प्राप्त हो सकता है।

(iii) कानूनी एवं राजनीतिक अस्मिता

1. सुप्रीम कोर्ट द्वारा कानूनी मान्यता (2014)2014 में भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने नालसा बनाम भारत सरकार (NALSA vs. Union of India) मामले में ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुए थर्ड जेंडर को कानूनी मान्यता दी। इस फैसले ने भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय की पहचान को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान की और उन्हें समाज में समान अधिकार देने का मार्ग प्रशस्त किया।

इस फैसले के तहत:

- ▶ थर्ड जेंडर को पुरुष या महिला के रूप में पहचान के लिए बाध्य न किए जाने का अधिकार दिया गया।
- ▶ सरकार को निर्देश दिया गया कि वह थर्ड जेंडर समुदाय के लिए विशेष अधिकार और अवसर सुनिश्चित करे।
- ▶ शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के क्षेत्र में भेदभाव को समाप्त करने का निर्देश दिया गया।

- भारत सरकार जेंडर को कानूनी मान्यता दी

इस फैसले ने न केवल ट्रांसजेंडर समुदाय को पहचान दी, बल्कि समाज में उनकी अस्मिता को स्वीकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया।

(iii) ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम (2019) में भारत सरकार ने ट्रांसजेंडर व्यक्ति (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित किया। यह कानून ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा और उनके सशक्तिकरण की दिशा में एक

बड़ा कदम था। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं:

- ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को उनकी पहचान को मान्यता देने और उसे सरकारी दस्तावेजों में दर्ज कराने का अधिकार दिया गया।
- शिक्षा, रोज़गार और स्वास्थ्य सेवाओं में भेदभाव को समाप्त करने के लिए कानूनी प्रावधान किए गए।
- उनके साथ होने वाले किसी भी प्रकार के शोषण, उत्पीड़न और अन्याय को रोकने के लिए सख्त कानूनी कार्रवाई का प्रावधान किया गया।
- सरकार को निर्देश दिया गया कि वह ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए विशेष कल्याणकारी योजनाएँ लागू करे।
- यह अधिनियम ट्रांसजेंडर समुदाय के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण पहल थी, लेकिन इसे लेकर कुछ आलोचनाएँ भी उठी हैं। कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं का मानना है कि इसमें ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की आत्म-घोषणा की प्रक्रिया को जटिल बना दिया गया है और इसमें कई सुधारों की आवश्यकता है।

> ● अस्मिता केवल कानूनी मान्यता से नहीं, बल्कि समाज की स्वीकृति से निर्धारित

(iv) साहित्य में थर्ड जेंडर की अस्मिता

हिंदी साहित्य ने सामाजिक असमानता और हाशिए पर पड़े समुदायों की स्थिति को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेष रूप से थर्ड जेंडर की अस्मिता से जुड़े मुद्दों को साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में स्थान दिया है, जिससे इस समुदाय की वास्तविक स्थिति को व्यापक समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं: महेंद्र भीष्म जी का 'किन्नर कथा' किन्नर समुदाय के समर्थन में लिखा गया एक उपन्यास है जो किन्नरों को उनके समाज और अधिकारों के प्रति जागरूक करता है। इसमें उनकी आहों और दर्द का जिक्र है। इस उपन्यास में एक राजघराने में जन्मी 'चंदा' की कहानी है। 'गुलाम मंडी' में लेखिका ने किन्नरों के जीवन की त्रासदी और सामाजिक उपेक्षा के दर्द को बहुत ही मार्मिक ढंग से सामने लाया है। प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली' में गौतम साहब और आनंदी आंटी इस डर से दरवाजा नहीं खोलते कि कहीं वे हमारा बच्चा न छीन लें क्योंकि वहां बच्चे के जन्म की खुशी की जगह गम और उदासी का माहौल था। चित्रा मुद्गल जी का उपन्यास है 'पोस्ट बॉक्स 203 नाला सोपारा' जिसमें लेखिका ने किन्नर समुदाय की दशा और दिशा से पाठकों को परिचित कराया है।

> ● समाज और अधिकारों के प्रति जागरूक

थर्ड जेंडर की निराशा, कुंठा एवं एकांकिपन

भारतीय समाज में थर्ड जेंडर, जिन्हें हिजड़ा, किन्नर या ट्रांसजेंडर के रूप में जाना जाता है, लंबे समय से सामाजिक बहिष्कार, उपेक्षा और भेदभाव का शिकार रहे हैं। आधुनिक काल में कानूनी और सामाजिक स्तर पर कुछ सुधार अवश्य हुए हैं, परंतु

> ● सामाजिक बहिष्कार, उपेक्षा और भेदभाव का शिकार

अभी भी मुख्यधारा में उन्हें समान अधिकार और सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया है। इस कारण थर्ड जेंडर समुदाय के लोग निराशा, कुंठा और एकाकीपन जैसी मानसिक एवं सामाजिक समस्याओं का सामना करते हैं।

निराशा (Depression)

थर्ड जेंडर समुदाय को समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं मिल पाता, जिससे उनमें निराशा की भावना जन्म लेती है। वे जन्म से ही पारिवारिक उपेक्षा झेलते हैं, क्योंकि अधिकांश परिवारों में इस जेंडर को स्वीकार करने की मानसिकता नहीं होती। जन्म के बाद ही परिवार द्वारा त्याग दिया जाना, शिक्षा और नौकरी के अवसरों की कमी, तथा सामाजिक स्तर पर तिरस्कार झेलना, इनकी निराशा को और अधिक गहरा कर देता है।

- शिक्षा और नौकरी के अवसरों की कमी, तथा सामाजिक स्तर पर तिरस्कार

सरकार ने भले ही ट्रांसजेंडर अधिकारों की रक्षा के लिए कुछ कानून बनाए हैं, लेकिन जमीनी हकीकत में इन कानूनों का पालन अधूरा ही रहता है। नौकरी, स्वास्थ्य सुविधाओं और शिक्षा में भेदभाव के कारण उनके जीवन में निराशा का स्तर बढ़ता जाता है।

कुंठा (Frustration)

समाज में बार-बार उपेक्षित होने के कारण थर्ड जेंडर समुदाय में कुंठा की भावना उत्पन्न होती है। यह कुंठा मुख्य रूप से उन अवसरों की कमी के कारण पैदा होती है, जो अन्य लोगों को सहज रूप से मिलते हैं।

- अधिकांश थर्ड जेंडर को भीख मांगने, सेक्स वर्क या अवैध धंधों में धकेल दिया जाता

रोज़गार और शिक्षा में भेदभाव – उच्च शिक्षा प्राप्त करने और अच्छी नौकरी पाने की संभावना बहुत कम होती है। अधिकांश थर्ड जेंडर को भीख मांगने, सेक्स वर्क या अवैध धंधों में धकेल दिया जाता है, जिससे वे मानसिक रूप से और अधिक कुंठित हो जाते हैं।

सामाजिक तिरस्कार – समाज उन्हें हंसी-मजाक का विषय समझता है। फिल्मों, धारावाहिकों और साहित्य में भी इन्हें हास्यास्पद या नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनकी छवि खराब होती है।

परिवार और समाज से अस्वीकृति – माता-पिता, रिश्तेदार और पड़ोसी तक उन्हें अपनाने से कतराते हैं। इस अस्वीकृति के कारण वे अंदर ही अंदर टूटने लगते हैं और अपनी पहचान को लेकर कुंठा महसूस करते हैं।

एकाकीपन (Loneliness)

थर्ड जेंडर समुदाय के लोग पारिवारिक और सामाजिक संबंधों से वंचित रह जाते हैं, जिससे उनके जीवन में गहरा अकेलापन आ जाता है।

पारिवारिक अलगाव – अधिकांश थर्ड जेंडर को जन्म के बाद ही परिवार से निकाल दिया जाता है। वे अपने माता-पिता, भाई-बहनों के स्नेह और समर्थन से वंचित रह जाते हैं।

यह स्थिति उनके मन में अकेलेपन की भावना को और अधिक बढ़ा देती है।

वैवाहिक और प्रेम संबंधों की कठिनाई – समाज में थर्ड जेंडर के प्रति नकारात्मक धारणा के कारण उन्हें प्रेम और विवाह के अवसर नहीं मिलते। इस कारण वे जीवनभर साथी की तलाश में रहते हैं, लेकिन उन्हें सामाजिक स्वीकार्यता नहीं मिलती।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव – निराशा और कुंठा के कारण थर्ड जेंडर समुदाय में अवसाद (डिप्रेशन), आत्महत्या की प्रवृत्ति और नशे की लत जैसी समस्याएँ देखने को मिलती हैं। अकेलापन उन्हें मानसिक और भावनात्मक रूप से तोड़ देता है।

- निराशा, कुंठा और एकाकीपन समाज के असंवेदनशील रवैये का परिणाम

थर्ड जेंडर समुदाय की निराशा, कुंठा और एकाकीपन समाज के असंवेदनशील रवैये का परिणाम है। हालाँकि कानूनी सुधार हो रहे हैं, लेकिन जब तक समाज अपनी मानसिकता नहीं बदलेगा, तब तक इस समुदाय को वास्तविक स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपनी सोच बदलें, समानता और मानवता को बढ़ावा दें और थर्ड जेंडर समुदाय को एक गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान करें।

हिन्दी कहानियों में किन्नर विमर्श

- किन्नर विमर्श भी साहित्य में अपनी विशेष पहचान

समाज में विभिन्न विमर्शों का विश्लेषण साहित्य के माध्यम से किया जाता रहा है। नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श और अल्पसंख्यक विमर्श की भाँति किन्नर विमर्श भी साहित्य में अपनी विशेष पहचान बना रहा है। किन्नरों को समाज में तीसरे लिंग के रूप में पहचाना जाता है, लेकिन सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक स्तर पर वे सदैव उपेक्षा के शिकार रहे हैं। हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन की पीड़ा, संघर्ष और उनकी पहचान को लेकर कई कहानियाँ और उपन्यास लिखे गए हैं, जो किन्नर विमर्श को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं।

- किन्नरों की दयनीय स्थिति, सामाजिक उपेक्षा, घृणा, संवेदनाओं व भावनाओं का चित्रण

किन्नर जीवन पर आधृत प्रमुख कहानियाँ त्रासदी (महेन्द्र भीष्म), रतियावन की चेली (ललित शर्मा), नेग(डॉ.लवलेश दत्त), पन्ना बा(गरिमा संजय दूबे), गलती जो माफ नहीं (पारस दासोत), खुश रहो क्लीनिक(चांद दीपिका), हिज़ड़ा (श्री कृष्ण सैनी), संकल्प (विजेन्द्र प्रताप सिंह) आदि हैं। इन सभी कहानियों में किन्नर जीवन के तिरस्कार, घृणा, उपेक्षा व जिजीविषा के लिए संघर्ष को चित्रित किया गया है। रचनाकारों ने महानगरों की गन्दी बस्तियों में जीवन यापन के लिए विवश किन्नरों की दयनीय स्थिति, सामाजिक उपेक्षा, घृणा, संवेदनाओं व भावनाओं का यथार्थ चित्रण किया है।

शिव प्रसाद सिंह की कहानी 'बिन्दा महाराज' ऐसे किन्नर की कहानी है, जो अपनों के मोह में पड़ा अन्त समय तक अपनी दुर्दशा करवाता रहता है। माता-पिता, भाई और भाई के बेटे करीमा पर जान छिड़कता है, परन्तु माता- पिता के गुज़र दाने और भाई के द्वारा केवल तिरस्कार औप अपमान मिलने के कारण उसकी सारी ममता करीमा पर सिमट जाती है। एक समय परिस्थियाँ ऐसी मोड़ लेती हैं, कि बिन्दा को सब छोड़ कर

गाँव-गाँव भटकना और नाच- गा कर गुजर करना पड़ता है। एक गाँव में दीपू मिसिर के बेटे के प्रति ममत्व जागृत होता है, परन्तु अचानाक बच्चे की मृत्यु हो जाने से लोग बिन्दी को डायन कहने लगते हैं। स्वयं के प्रति लोगों की ऐसी सोच के कारण बिन्दी महाराज धीरे-धीरे बच्चों के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

- शिव प्रसाद सिंह की कहानी 'बिन्दा महाराज' - किन्नर की कहानी

राही मसूम रज़ा द्वारा लिखित एक ऐसे किन्नर की कहानी है खलिक अहमद बुआ। जिसे प्रेम के बदले धोखा मिलता है, जिससे वह घोर अकेलापन से घिर जाती है।

किन्नर जीवन की त्रासदी को कुसुम अंसल ने अपनी कहानी ई मुर्दन के गाँव में मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। बीलु, सिद्धार्थ तथा नीलिमा अच्छे दोस्त हैं, परन्तु अपने स्त्रैण स्वबाव के कारण बीलु को नीलिमा के साथ खेलना अधिक भाता है। किन्नर होने के कारण धीरे-धीरे उस पर पाबन्दियाँ बढ़ती जाती हैं, जिससे वह विद्रोही हो जाता है और अंततः माता-पिता दूर विदेश में मौसी के पास भेज कर उसकी बचपन उससे छीन लिया जाता है।

- राही मसूम रज़ा - 'खलिक अहमद बुआ' कुसुम अंसल- 'ई मुर्दन के गाँव'

किरण सिंह द्वारा रचित कहानी संझा किन्नरों के प्रति समाज की नकारात्मक सोच के कारण संझा से जुड़े लोगों की जिन्दगी भी नरक बन जाने की कथा है। किन्नरों की अक्सर यह आरोप लगता रहता है कि वे जबरन सामान्य मनुष्यों को पकड़कर हिजड़ा बना देते हैं। पद्मा शर्मा रचित कहानी इज्जत के रहबर का यही केन्द्रीय कथ्य है। अंजना वर्मा की कहानी कौन तार से बीनी चदरिया भी किन्नर विमर्श पर आधारित है। यह ईश्वर से एक प्रकार का प्रश्न है सुन्दरी का जो जानना चाहती है कि उसने कौन सा अपराध किया जो उसे इस हिज़ड़ा योनी में जन्म मिला।

- किरण सिंह - संझा, पद्मा शर्मा - इज्जत के रहबर,। अंजना वर्मा - कौन तार से बीनी चदरिया

ललिता शर्मा की कहानी रतियावन की चेली किन्नरों को जबरन उनके परिवार से छीन लिए जाने की कहानी है। चाँद दीपिका की कहानी खुश रहो क्लिनिक संघर्षशील किन्नर की कथा है, जो अपने परिश्रम व ज़िद के बल पर डॉक्टर बनता है और पारम्परिक नाचने-गाने व भीख माँगने के पेश को लात मार देता है।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में कहानियों ने किन्नरों के शोषण, तिरस्कार, अपमान, बहिष्कार व सामाजिक निर्ममता को जो स्वर प्रदान किया वह अपने आप में अविस्मरणीय है।

- किन्नरों के शोषण, तिरस्कार, अपमान, बहिष्कार व सामाजिक निर्ममता का स्वर

प्रतीप सौरभ

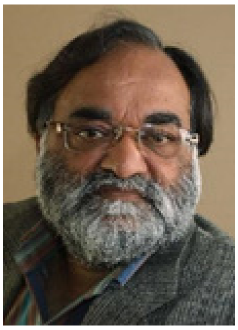

प्रतीप सौरभ अपने आप में विविधताओं से भरा है—तेजतर्रार, स्पष्टवादी और स्वतंत्र सोच रखने वाला। तर्कों की गहराई में डूबे इस शख्स ने जीवन को अपनी ही शर्तों पर जिया, कभी किसी तयशुदा राह पर नहीं चले। चेहरे पर कोई शिकन नहीं, चाहे परिस्थितियाँ कितनी भी कठिन रही हों। कानपुर में जन्मे, लेकिन इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया। छात्र जीवन में जन आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई, कई बार जेल भी गए।

- छात्र जीवन में जन आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी

पत्रकारिता में गहरी रुचि होने के कारण कई नौकरियाँ बदलते हुए दिल्ली पहुँचे और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के संपादकीय विभाग से जुड़े। लेखनी से समाज को देखने-समझने का कार्य किया, तो कैमरे की आँख से भी दुनिया को परखा। कई शहरों में फोटो प्रदर्शनियाँ लगाईं और मूड आने पर चित्रांकन में भी हाथ आजमाया।

- कई शहरों में फोटो प्रदर्शनियाँ लगाईं

पत्रकारिता के क्षेत्र में 35 वर्षों से अधिक का अनुभव, जिसमें पूर्वोत्तर समेत कई राज्यों की रिपोर्टिंग शामिल रही। गुजरात दंगों की रिपोर्टिंग के लिए पुरस्कार प्राप्त किया। 'अक्कड़-बक्कड़' और 'तारीफ आपकी' जैसे लोकप्रिय स्तंभ वर्षों तक लिखे। बच्चों के लिए देश का पहला हिंदी अखबार निकाला। 'नेशनल दुनिया' के संपादक रहे।

- गुजरात दंगों की रिपोर्टिंग के लिए पुरस्कार प्राप्त

पंजाब में आतंकवाद और बिहार में बंधुआ मजदूरी पर बनी फ़िल्मों के लिए शोध किया। 'बसेरा' टीवी धारावाहिक में मीडिया सलाहकार की भूमिका निभाई। पत्रकारिता विभागों में विजिटिंग फैकल्टी के रूप में अध्यापन किया। उनके उपन्यासों पर कई विश्वविद्यालयों में शोध हुए और विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी। प्रमुख कृतियों में मुन्नी मोबाइल, तीसरी ताली, देश भीतर देश और सिर्फ तितली जैसे उपन्यास शामिल हैं। इसके अलावा, कविता, बाल साहित्य और आलोचना पर भी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

- गुजरात दंगों की रिपोर्टिंग के लिए पुरस्कार प्राप्त

महेंद्र भीष्म

हिंदी साहित्य के समकालीन परिदृश्य में महेंद्र भीष्म एक प्रतिष्ठित और सुपरिचित कथाकार के रूप में उभरे हैं। उनका जन्म बसंत पंचमी, 1966 को उत्तर प्रदेश के महोबा जिले के खरेला नामक गाँव में हुआ। साहित्य के प्रति उनका रुझान प्रारंभ से ही रहा और उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी से हिंदी कथा-साहित्य को समृद्ध किया।

महेंद्र भीष्म ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन किया, जिनमें प्रमुख रूप

से कथा-साहित्य, नाट्य-संग्रह और उपन्यास सम्मिलित हैं। अब तक उनके पाँच कहानी-संग्रह, एक नाट्य-संग्रह तथा तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कहानियाँ न केवल पाठकों के हृदय को छूती हैं, बल्कि समाज के विविध आयामों को भी उजागर करती हैं। उनकी कहानियों में यथार्थवाद और संवेदना का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है, जो पाठकों को सोचने पर विवश कर देता है।

- साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन

महेंद्र भीष्म की कई कहानियों को रंगमंच पर नाट्य रूप में प्रस्तुत किया जा चुका है, जिससे उनकी लेखनी की प्रभावशालीता सिद्ध होती है। उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ 'लालच' और 'तीसरा कंबल' पर लघु फिल्में भी बनाई जा चुकी हैं। उनकी बहुचर्चित कृति 'किन्नर कथा' तथा उनकी कहानी 'तीसरा कंबल' पर फीचर फिल्म निर्माण की योजना प्रस्तावित है, जबकि 'मैं पायल...' नामक फिल्म निर्माण प्रक्रिया में है। इससे स्पष्ट होता है कि उनकी रचनाएँ केवल साहित्यिक मंच तक सीमित न रहकर दृश्य माध्यमों में भी अपनी गहरी छाप छोड़ रही हैं।

- उनकी रचनाएँ केवल साहित्यिक मंच तक सीमित नहीं दृश्य माध्यमों में भी

साहित्य में उनके योगदान को विभिन्न संस्थानों द्वारा सराहा गया है। उन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'यशपाल कहानी सम्मान' सहित कई अन्य प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। उनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ यह दर्शाती हैं कि वे न केवल एक प्रतिभाशाली कथाकार हैं, बल्कि सामाजिक विषयों पर उनकी दृष्टि अत्यंत गहन और संवेदनशील भी है। वर्तमान में महेंद्र भीष्म इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ में निबंधक सह प्रधान न्यायपीठ सचिव के पद पर कार्यरत हैं। उनके साहित्य में न्याय, समाज, मानव अधिकार और हाशिए पर खड़े वर्गों की पीड़ा का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

- 'यशपाल कहानी सम्मान' प्राप्त

अनुसूया त्यागी

डॉ. अनुसूया त्यागी एक ऐसी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हैं जिन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया और साथ ही साहित्य सृजन में भी अपनी पहचान बनाई। उनका लेखन प्रेम बचपन से ही स्पष्ट था। जब वह कक्षा छह में थीं, तब उन्होंने स्वामी शिवानंद पर अपनी पहली कविता लिखी, जिसे उनके शिक्षकों ने सराहा। यह उनकी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत थी, जो आगे चलकर उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनी।

हालाँकि डॉ. त्यागी को लेखन का शौक था, लेकिन उनका सपना एक कुशल चिकित्सक बनने का था। उन्होंने वर्ष 1966 में उदयपुर से एम.बी.बी.एस. और 1970

- विज्ञान और साहित्य का एक अद्‌भुत संगम की झलक

में जयपुर से एम.एस. की पढ़ाई पूरी की। उनके इस सफर में साहित्यिक रुचि भी बनी रही, और वे अपने मेडिकल कॉलेज की लिटरेरी सेक्रेटरी रहीं। जब उन्होंने एक कहानी लिखी, तो उनके विभागाध्यक्ष ने उनकी लेखनी की सराहना करते हुए कहा कि उनके लेखन में विज्ञान और साहित्य का एक अद्‌भुत संगम झलकता है। यह उनकी अनोखी शैली को दर्शाता है, जिसमें चिकित्सा के अनुभव और मानवीय संवेदनाएँ एक साथ समाहित होती हैं।

वर्ष 1973 में डॉ. आर.पी. त्यागी से विवाह के बाद भी उन्होंने लेखन को नहीं छोड़ा। चिकित्सा क्षेत्र में काम करने के साथ-साथ उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख और कहानियाँ लिखनी जारी रखीं। उनकी पहली पुस्तक 'रिश्तों के बोझ' थी, जो मानवीय संबंधों की जटिलताओं को उजागर करती है। यह पुस्तक पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हुई। इसके बाद आई उनकी दूसरी कृति 'लेबर रूम', जिसमें उन्होंने प्रसूति कक्ष के अपने अनुभवों को साझा किया। यह पुस्तक चिकित्सा जगत के भीतर झाँकने का अवसर प्रदान करती है और इसे पाठकों ने खूब सराहा।

- शारीरिक अपूर्णता के कारण पूर्ण स्त्री स्वीकार नहीं करता

डॉ. त्यागी का पहला उपन्यास 'मैं भी औरत हूँ' उनके लेखन का एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। यह उपन्यास वास्तविक पात्रों से प्रेरित है, लेकिन इसमें कल्पनाशीलता का भी समावेश है। यह एक ऐसी नारी की पीड़ा को व्यक्त करता है, जिसे समाज शारीरिक अपूर्णता के कारण पूर्ण स्त्री स्वीकार नहीं करता। इस उपन्यास ने समाज में गहरी चर्चा को जन्म दिया और इसके प्रभाव को देखते हुए विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाँच छात्रों ने इस पर शोध भी किया।

- संवेदनशीलता और यथार्थ का अनूठा मिश्रण

डॉ. अनुसूया त्यागी का साहित्यिक और चिकित्सीय जीवन इस बात का प्रमाण है कि विज्ञान और साहित्य एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं। उन्होंने अपने अनुभवों को शब्दों में पिरोकर समाज को न केवल जागरूक किया बल्कि मानवीय संबंधों और स्त्री जीवन की जटिलताओं को भी बारीकी से उजागर किया। उनका लेखन संवेदनशीलता और यथार्थ का अनूठा मिश्रण प्रस्तुत करता है, जो पाठकों को सोचने पर मजबूर करता है। साहित्य के प्रति उनका समर्पण यह दर्शाता है कि यदि जुनून और संकल्प हो, तो व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बना सकता है।

नीरजा माधव

हिन्दी साहित्य जगत में नीरजा माधव एक विशिष्ट और प्रतिष्ठित नाम हैं। 15 मार्च 1962 को उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के मुफ्तीगंज स्थित ग्राम कोतवालपुर में जन्मी नीरजा माधव ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् अंग्रेजी विषय में एम.ए.,

बी.एड. और पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उन्होंने संगीत में रुचि रखते हुए सितार में डिप्लोमा भी किया। उनके व्यक्तित्व की यह बहुआयामी विशेषता उनके साहित्यिक लेखन में भी परिलक्षित होती है।

- सामाजिक यथार्थ, ऐतिहासिक संदर्भ और मानवीय संवेदनाएँ

नीरजा माधव हिन्दी साहित्य की सुपरिचित कथाकार हैं, जिनके उपन्यास समाज के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। उनके प्रमुख उपन्यासों में 'यमदीप', 'तेभ्य स्वधा', 'गेशे जम्पा', 'अनुपमेय शंकर', 'अवर्ण महिला कांस्टेबल की डायरी', 'ईहा मृग', 'धन्यवाद सिवनी' और 'देनपा : तिब्बत की डायरी' शामिल हैं। इन उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ, ऐतिहासिक संदर्भ और मानवीय संवेदनाएँ प्रमुखता से देखने को मिलती हैं। उनकी भाषा सहज और प्रवाहमयी होती है, जो पाठकों को कथानक से जोड़े रखती है।

कहानी लेखन के क्षेत्र में भी नीरजा माधव ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके छह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें जीवन के विविध रंग देखने को मिलते हैं। उनकी कहानियाँ नारी संवेदनाओं, समाज में व्याप्त विषमताओं और मानवीय संघर्षों को चित्रित करती हैं। उनकी कविता-संवेदना भी उतनी ही सशक्त और प्रभावशाली है। उनके दो कविता संग्रह 'प्रथम छंद से स्वप्न' और 'प्रस्थानंत्रयी' हिन्दी काव्य जगत में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने 'चैत चित्त मन महुआ' और 'सांझी फूलन चीति' जैसे ललित निबंध संग्रह भी लिखे, जिनमें उनके गहरे चिंतन और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है।

- 'हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास'

हिन्दी साहित्य में नारी योगदान को रेखांकित करने के उद्देश्य से लिखी गई उनकी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास' हिन्दी साहित्य जगत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने उन नारियों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है, जिनका योगदान समय के साथ ओझल होता गया। यह पुस्तक न केवल साहित्यिक शोधार्थियों के लिए उपयोगी है, बल्कि समाज के लिए भी एक प्रेरणास्रोत है। उनकी उत्कृष्ट साहित्यिक सेवाओं को देखते हुए उन्हें 'सर्जना पुरस्कार', 'यशपाल पुरस्कार', 'भारतेन्दु प्रभा सम्मान', 'मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी अवार्ड', 'शंकराचार्य पुरस्कार', 'शैलेश मटियानी पुरस्कार', 'राष्ट्रीय साहित्य सर्जक पुरस्कार' और 'काशीरत्न सम्मान' जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

- सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहलुओं को उजागर करना

नीरजा माधव साहित्य की विभिन्न विधाओं में समान रूप से सृजनरत हैं। उनका साहित्य केवल भावनाओं का संप्रेषण नहीं, बल्कि समाज में परिवर्तन लाने का एक माध्यम भी है। उनकी रचनाएँ सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहलुओं को उजागर करती हैं तथा पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। उनके बहुआयामी लेखन ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है और वे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक प्रेरणा बनी रहेंगी।

निवेदिता झा

निवेदिता झा ने अपने पत्रकारिता जीवन की शुरुआत देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र नवभारत टाइम्स से की। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता में उत्कृष्ट योगदान दिया और अपने व्यापक अनुभव के कारण लगभग सभी प्रमुख राष्ट्रीय समाचार पत्रों में काम किया। उनके लेखन की विशिष्टता उनके निर्भीक दृष्टिकोण और सामाजिक सरोकारों से जुड़ी विषय-वस्तु में निहित है। उन्होंने उन मुद्दों को उजागर किया, जो समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों के जीवन से जुड़े थे। उनके लेख और रिपोर्ट समाज में बदलाव लाने के सशक्त माध्यम बने।

- लाड़ली मीडिया अवॉर्ड से सम्मानित

पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके योगदान को मान्यता देते हुए उन्हें लाड़ली मीडिया अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार उन्हें हिंदी पत्रकारिता में उत्कृष्ट कार्य के लिए प्रदान किया गया, जो उनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

उनका नाम विशेष रूप से मुजफ्फरपुर शेल्टर होम मामले के संदर्भ में चर्चा में आया, जब उन्होंने इस गंभीर सामाजिक अपराध के खिलाफ न केवल लेखनी से, बल्कि सक्रिय रूप से आंदोलन कर आवाज़ उठाई। उन्होंने इस प्रकरण को अदालत से लेकर सड़कों तक पहुँचाया और न्याय की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए सुप्रीम कोर्ट में याचिका भी दायर की। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि अपराधियों को सजा मिली और इस मामले ने राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित किया। उनकी इस पहल ने पत्रकारिता की शक्ति को दर्शाया और यह सिद्ध किया कि सच्ची पत्रकारिता केवल सूचना देने का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव का हथियार भी हो सकती है।

- कविता, संस्मरण और कहानियों के माध्यम से अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त

निवेदिता झा का रचनात्मक पक्ष भी उतना ही सशक्त है जितना कि उनका पत्रकारिता का पक्ष। उन्होंने कविता, संस्मरण और कहानियों के माध्यम से अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त किया है। उनकी दो प्रमुख काव्य संग्रह 'ज़ख्म जितने थे' और 'प्रेम में डर' वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुए हैं। ये काव्य संग्रह समाज की विभिन्न भावनात्मक और संवेदनशील पहलुओं को उजागर करते हैं। उनकी कविताओं में प्रेम, संघर्ष, पीड़ा और आशा के स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई देते हैं। इसके अतिरिक्त, उनकी संस्मरण-पुस्तक 'पटना डायरी' पाठकों को उनके जीवन के विभिन्न अनुभवों से परिचित कराती है। इस पुस्तक में उन्होंने अपने पत्रकारिता जीवन और सामाजिक सरोकारों से जुड़े महत्वपूर्ण क्षणों को साझा किया है। साथ ही, उनका कहानी-संग्रह 'अब के बसंत', जो प्रलेक प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है, समकालीन समाज की जटिलताओं और जीवन

की सच्चाइयों को दर्शाने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

निवेदिता झा का जीवन और कृतित्व प्रेरणादायक है। वे एक ऐसी शख्सियत हैं जिन्होंने न केवल पत्रकारिता को एक नए आयाम तक पहुँचाया, बल्कि साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी लेखनी सामाजिक न्याय, मानवीय अधिकारों और स्त्री-विमर्श को एक नई दिशा देती है। वे उन दुर्लभ पत्रकारों और साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से समाज में वास्तविक परिवर्तन लाने का कार्य किया है। हिंदी भाषा और साहित्य के विद्यार्थियों के लिए उनका जीवन और कार्य एक प्रेरणा-स्रोत है, जो यह सिखाता है कि साहित्य और पत्रकारिता केवल अध्ययन के विषय नहीं, बल्कि समाज सुधार के महत्वपूर्ण उपकरण भी हो सकते हैं।

- शब्दों के माध्यम से समाज में वास्तविक परिवर्तन लाने का कार्य

किन्नर(कविता)- निवेदिता झा

(1)
उसको
सजने की आदत थी
बेली, उडहूल, जूही बाँध लेती
उस छत्ते से जूडे में जिसने वर्षों पहले
देखी हो शायद
अपनी देखरेख की कोई कोशिश
वो समय को भी छिपा लेती थी
भीतर उस खोपे में
जहाँ भ्रम था कि रुका रहता है समय
मानने लगे उसे स्त्री
और मँडराने लगे दुनिया
पागलों का वेश और झुकी नजरें
सिलिकान से सजी ‘ खोती...
जबरदस्ती का साबित करना
कि उसकी लय तरंगे मिलती जुलती हैं
बिना गंध के
भय से आक्रांत है
प्रेम में राज़ के जाहिर होनें से
वो मिलेगा कुछ बर्षो के बाद
जानते ही सच्चाई
प्रेम खो जाएगा

(2)
तुम कौन हो
आदिकाल से
रामायण में भी, महाभारत में भी
हिन्दु में भी इस्लाम में भी
हो अपना अस्तित्व बनाये
एक अलग जगह पर, सबसे अलग
अर्द्धनारिश्वर कहूँ तो शायद मिलती मिलेगी परिभाषा
कोख तो तुम्हें भी जन्म देती है
अघोर प्रसव पीड़ा के बाद
पहली ही गोद तिरस्कार से फेर लेती है मुँह
माँ गले से फिर भी लगाती है
सबसे राजदुलारे
माँ की पेशानी पर के छोटे-छोटे कण
छुपा लेती है आँचल
रात भयावह होती है
कोई ले न जाये उसे बहुत दूर
वो दिन आ भी जाता है
तुम फिर भी सबके मन के प्रश्न चिह्न हो
एक अलग जगह पर आसीन
जब हँसती हो तो स्त्री
और मुस्कुराने पर पुरूष लगते हो
चेहरे सपाट
ज़ख्म के छोटे-छोटे बिन्दु
कभी किसी को दिख जाते हैं
कोई देखना नहीं चाहता
मुस्कुराते गुजर जाते हो सबके सब
उनके मनुहार का एक अस्त्र होता है
बजाते हैं ताली
ठिठक जाते हैं सब के सब
अपनी व्यथा को मन में रख कर दुआयें देते हो
कहते हैं त्रेता में तुम्हें शक्ति मिली
शुभ बनाने, निभाने और आशीर्वाद देनें
तुम्हारी भी रात होती है
सोने-गहनें और दुख को उतारने वाली रात
सिसकने की रात

अपने घर को याद करके, बचपन की रात
दिन में बेफिक्र हर लालबत्ती पर
या बड़ी गाड़ियों में बेधडक चले जा रहे हो।

यह कविता समाज के उस वर्ग को केंद्र में रखकर लिखी गई है, जिसे हम किन्नर, हिजड़ा, ट्रांसजेंडर या तृतीय लिंगी के रूप में जानते हैं। कवि ने इस समुदाय के जीवन, संघर्ष, समाज में उनकी स्थिति और उनकी भावनाओं को बहुत गहराई से उकेरा है।

पहला भागः

पहली कड़ी में कवयित्री किन्नरों के सौंदर्य, उनकी सजने-संवरने की आदतों और उनके अंदर के दर्द को व्यक्त करती हैं। वह बताती हैं कि किन्नर फूलों से सजते हैं, अपने बालों में जूही और उडहूल (गुड़हल) के फूल लगाते हैं। यह सजना-संवरना सिर्फ बाहरी नहीं बल्कि एक प्रयास है अपने वास्तविक दर्द को छुपाने का।

'उसको सजने की आदत थी...'

किन्नरों के अंदर भी सौंदर्यप्रियता होती है, वे भी अपने रूप को संवारना चाहते हैं। लेकिन यह सजना सिर्फ दिखावे के लिए नहीं, बल्कि उनके अंदर की तकलीफों को छुपाने का माध्यम भी है।

'वो समय को भी छिपा लेती थी...'

- अपने भीतर दर्द और बीते समय को छुपाने की कला

वे अपने भीतर दर्द और बीते समय को छुपाने की कला जानते हैं। वे भ्रम में रहते हैं कि समय शायद वहीं रुका हुआ है और समाज उन्हें उसी रूप में देखता है, जिससे वे कभी बाहर नहीं निकल सकते।

'मानने लगे उसे स्त्री...'

समाज कभी उन्हें स्त्री मानता है, कभी पुरुष। लेकिन वे किसी एक पहचान में समा नहीं सकते, इसलिए उन्हें समाज की भेदभावपूर्ण नजरों और उपहास का शिकार होना पड़ता है।

'भय से आक्रांत है प्रेम में राज़ के जाहिर होने से...'

किन्नर भी प्रेम कर सकते हैं, लेकिन उनका डर यह है कि जब सच्चाई सामने आए-गी, तो प्रेम विलुप्त हो जाएगा। उनके लिए प्रेम में हमेशा अनिश्चितता और भय जुड़ा रहता है।

दूसरा भाग:

इस खंड में कवयित्री ऐतिहासिक और धार्मिक संदर्भों का उपयोग करते हुए किन्नरों की स्थिति को दर्शाती हैं। वे बताती हैं कि किन्नरों का अस्तित्व कोई नया नहीं है, बल्कि यह प्राचीन काल से ही समाज का हिस्सा रहा है।

'तुम कौन हो आदिकाल से...'

यह सवाल उठता है कि किन्नरों का अस्तित्व क्या है?वे न तो पूरी तरह पुरुष हैं, न पूरी तरह स्त्री। रामायण, महाभारत, हिंदू और इस्लाम जैसे सभी धर्मों में उनका उल्लेख मिलता है।

'अर्द्धनारिश्वर कहूँ तो शायद मिलती मिलेगी परिभाषा...'

अर्द्धनारिश्वर की अवधारणा शिव और शक्ति के संयोग को दर्शाती है, जहां पुरुष और स्त्री दोनों का समावेश है। किन्नर भी इसी संकल्पना से मेल खाते हैं, लेकिन समाज उन्हें किसी स्पष्ट पहचान में नहीं देख पाता।

'कोख तो तुम्हें भी जन्म देती है...'

हर किन्नर भी एक स्त्री की कोख से ही जन्म लेता है। जन्म के बाद ही समाज का तिरस्कार शुरू हो जाता है, क्योंकि उन्हें 'सामान्य' नहीं माना जाता।

'रात भयावह होती है...'

किन्नरों के लिए रातें डरावनी होती हैं, क्योंकि उनका जीवन असुरक्षा से भरा होता है। कई बार उन्हें जबरदस्ती उठा लिया जाता है, शोषण किया जाता है। समाज उन्हें अलग-थलग कर देता है, जिससे वे हमेशा भय में जीते हैं।

'जब हँसती हो तो स्त्री और मुस्कुराने पर पुरुष लगते हो...'

- किन्नरों के लिए रातें डरावनी होती हैं

किन्नरों के हाव-भाव को देखकर लोग भ्रमित हो जाते हैं कि वे स्त्री हैं या पुरुष। समाज उनकी वास्तविकता को देखने की कोशिश नहीं करता, बल्कि उन्हें एक तमाशा समझकर नजरअंदाज कर देता है।

'बजाते हैं ताली, ठिठक जाते हैं सब के सब...'

किन्नर जब ताली बजाते हैं, तो लोग ठिठक जाते हैं। यह ताली उनका अस्त्र बन चुकी है, जिससे वे समाज में अपनी जगह बना पाते हैं। लेकिन इसके पीछे एक गहरी पीड़ा छुपी होती है।

'तुम्हारी भी रात होती है...'

किन्नरों का भी एक निजी जीवन होता है, जिसे समाज देखना नहीं चाहता। रात के समय वे अपने दुःख, अकेलेपन और बचपन की यादों में खो जाते हैं। वे भी किसी घर-परिवार का हिस्सा हुआ करते थे, लेकिन समाज ने उन्हें अस्वीकार कर दिया।

यह कविता किन्नरों की आंतरिक और बाहरी दुनिया को बहुत गहराई से दिखाती है। कवयित्री ने उनकी मानसिक स्थिति, सामाजिक तिरस्कार, प्रेम में भय और उनके संघर्षों को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। यह कविता हमें सोचने पर मजबूर करती है कि किन्नरों को समाज में बराबरी का स्थान कब मिलेगा? क्या हम उन्हें केवल शुभ अवसरों पर आशीर्वाद देने के लिए ही याद करेंगे, या उन्हें भी इंसान की तरह जीने का अधिकार देंगे?

किन्नर समाज का अभिन्न अंग हैं और उनका ऐतिहासिक महत्व भी रहा है। वे भी प्रेम, सम्मान और अधिकार के हकदार हैं। हमें उन्हें तमाशे की तरह देखने की बजाय समान भाव से स्वीकार करना चाहिए। उनका जीवन सिर्फ लालबत्ती पर पैसे मांगने तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके भीतर भी इच्छाएँ, सपने और संघर्ष हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

किन्नर की अवधारणा समाज में लैंगिक पहचान की व्यापकता को दर्शाती है, जो केवल पुरुष और महिला तक सीमित नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक संदर्भों में इसकी स्वीकृति देखी जाती रही है। औपनिवेशिक काल में इस समुदाय को कानूनी और सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ा, लेकिन 2014 में भारतीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा थर्ड जेंडर को कानूनी मान्यता दिए जाने और 2019 के ट्रांसजेंडर अधिकार संरक्षण अधिनियम के लागू होने से उनकी स्थिति में सुधार की दिशा में कदम उठाए गए। हालांकि, शिक्षा, रोज़गार और सामाजिक स्वीकृति के क्षेत्रों में अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं और इसके समाधान के लिए सरकार व समाज को मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता है। तीसरे लिंग के लोगों का जीवन समाज में कई चुनौतियों से भरा होता है। उन्हें अक्सर भेदभाव और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, लेकिन वे अपनी पहचान के साथ जीने के लिए संघर्ष करते हैं। कई लोग नृत्य, गायन, या आशीर्वाद देने जैसे पारंपरिक कार्यों में संलग्न होते हैं, जबकि कुछ शिक्षा और रोज़गार के माध्यम से मुख्यधारा में स्थान बनाने का प्रयास करते हैं। हालाँकि, अब समाज में जागरूकता बढ़ रही है और उनके अधिकारों को मान्यता देने के लिए कई सकारात्मक बदलाव हो रहे हैं। यहाँ क्वीय थियरी के बारे में और हिन्दी कहानी में चित्रित किन्नरों पर भी विचार किया गया है। हिन्दी के चर्चित कहानीकार एवं किन्नर पर रचित कविता का भी विस्तार से जोड़ा है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भारतीय समाज और हिंदी साहित्य में किन्नर समुदाय की स्वीकृति और अस्वीकृति पर विचार व्यक्त करें।
2. आधुनिक हिंदी कविता और कथा साहित्य में किन्नर समुदाय के जीवन और संघर्षों को किस प्रकार प्रस्तुत किया गया है?
3. क्या हिंदी साहित्य किन्नर समुदाय के अधिकारों और सामाजिक स्थिति को पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त कर पाया है? तर्क सहित उत्तर दें।
4. समकालीन हिंदी कविता में तृतीय लिंग की अस्मिता और संघर्ष को उजागर करने वाली प्रमुख रचनाओं पर विस्तृत टिप्पणी करें।
5. किन्नरों पर केंद्रित हिंदी साहित्य और पश्चिमी साहित्य में चित्रित ट्रांसजेंडर विषयों की तुलना करें।
6. हिंदी कथा साहित्य (कहानी और उपन्यास) में किन्नर पात्रों के चित्रण पर आलोचनात्मक चर्चा करें। उदाहरण स्वरूप किसी एक या दो साहित्यिक कृतियों का विश्लेषण करें।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. मुन्नी मोबईल- प्रतीप सौरभ
2. किन्नर (कहानी संघर्ष की) –सुशील कुमार
3. वह (किन्नर समुदाय के संघर्श की गाथा)-एस जी एस सिसोदिया निसार
4. यमदीप- नीरजा माधव
5. मैं पायल- महेन्द्र भीष्म
6. तीसरी ताली-प्रतीप सौरभ
7. www.Shodhbraham.com
8. www.gurukuljournal.com
9. Gina shodh sangam.com

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. किन्नर समाज और साहित्य-डॉ.खन्नप्रसाद अमीन
2. हिन्दी साहित्य में किन्नर समाज –श्रीमती प्रेम सिंह
3. हिन्दी साहित्य में किन्नर जीवन- डॉ.दिलीप मेहरा

4. हिन्दी उपन्यासों के आइने में थेड़ जेंडर-विजेन्द्र प्रताप सिंह
5. त्रासदी (कहानी)- महेन्द्र भीष्म
6. रतियावन की चेली(कहानी) - ललित शर्मा
7. नेग(कहानी)- डॉ. लवलेश दत्त
8. खुश रहो क्लीनिक(कहानी) - चाँद दीपिका
9. हिजड़ा(कहानी) - श्री कृष्ण सैनी
10. संकल्प(कहानी) - विजेन्द्र प्रताप सिंह

SGOU

Model
Question Paper Sets

SGOU

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ....

Reg. No : ……….............
Name : ………………...

THIRD SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD10DC- उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श

Model Quedtion Paper - Set 1

(CBCS - PG)

2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. किन-किन विद्वानों ने सर्वप्रथम उत्तर आधुनिकतावाद पदबंध का प्रयोग किया?
2. भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर आधुनिकता का आरंभ किन-किन परिस्थितियों में हुआ?
3. भारतीय विद्वानों में किस प्रकार उत्तर आधुनिकतावाद को परिभाषित किया है?
4. रोलां बार्थ ने लेखक की मृत्यु का निष्कर्ष क्या तर्क देकर निकाला?
5. जा बौद्रिआ का छलना सिद्धांत को समझाइए।
6. अति यथार्थवाद एवं यथार्थवाद का भेद क्या है?
7. ल्योत्यार ने महा आख्यानों का अंत क्यों घोषित किया?
8. वृद्ध पूंजीवाद की अवधारणा क्या है? **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. सबाल्टर्न पद से क्या तात्पर्य है?

10. भारतीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर आधुनिकतावाद पर विद्वानों की क्या राय है?

11. क्वीर सिद्धांत क्या है?

12. उत्तर आधुनिक हिंदी उपन्यासों में यथार्थ और कल्पना का क्या संबंध है?

13. उदय प्रकाश का साहित्यिक परिचय दीजिए?

14. भारतीय समाज और हिंदी साहित्य में किन्नर समुदाय की स्वीकृति और अस्वीकृति पर विचार व्यक्त करें।

15. आधुनिकता के प्रचार एवं प्रसार का विवेचन दीजिए।

16. दरिदा के विखंडन सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए यह बताइए कि आप किस हद तक उनसे सहमत हैं?

17. जेम्सन के विचारों पर प्रकाश डालिए।

18. ओरिएंटलिज्म से क्या तात्पर्य है? **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

19. उत्तर आधुनिकता किस प्रकार आधुनिकता की पुनर्व्याख्या करती है स्पष्ट कीजिए।

20. फ्रेडरिक जेम्सन कि पूंजीवाद की पुनर्व्याख्या पर प्रकाश डालिए।

21. एडवर्ड साईद के प्राच्यवाद किस प्रकार पूर्वी राज्यों में पोस्ट कॉलोनियल स्टडीज की नींव डाली?

22. गायत्री स्पीवाक के कारण हाशिएकृत समूह को नई आवास मिली- क्या आप इससे सहमत है? चर्चा कीजिए।

(2X15 = 30 Marks)

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

QP CODE: ………

Reg. No : ……….............
Name : ………………...

THIRD SEMESTER MA HINDI LANGUAGE AND LITERATURE EXAMINATION

DISCIPLINE CORE - M23HD10DC- उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श

Model Quedtion Paper - Set 2

(CBCS - PG)

2023-24 - Admission Onwards

Time: 3 Hours **Max Marks: 70**

SECTION A

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों का उत्तर दो या दो से अधिक वाक्यों में लिखिए।

1. आधुनिकतावाद पदबंध का सर्वप्रथम प्रयोग किन-किन क्षेत्रों में हुआ?
2. प्रारंभिक दौर में किन-किन विद्वानों ने उत्तर आधुनिक पद का प्रयोग किया?
3. विवेक युक्त होना आधुनिक होने की पहचान है इस युक्ति से आप किस हद तक सहमत है?
4. रोलां बार्थ की प्रमुख साहित्यिक अवधारणाएँ क्या-क्या थी?
5. विखंडन से दरिदा का क्या तात्पर्य है?
6. महा आख्यान से क्या तात्पर्य है?
7. फुको की विमर्श सिद्धांत से क्या तात्पर्य है?
8. लिंग और जेंडर में क्या अंतर है? **(5X2 = 10 Marks)**

SECTION B

II. किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर एक पृष्ठ के अन्दर लिखिए।

9. एक भौतिक आंदोलन के रूप में उत्तर आधुनिकतावाद की चर्चा हिंदी साहित्य में कब से होने लगी?
10. सांस्कृतिक अध्ययन में 'उच्च संस्कृति' और 'निम्न संस्कृति' के बीच क्या अंतर है?
11. 'कुरु कुरु स्वाहा' उपन्यास की कथा किस प्रकार पारंपरिक उपन्यासों से भिन्न है?
12. संकरता की अवधारणा क्या है?
13. हिंदी प्रवासी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या-क्या है?
14. समकालीन हिंदी कविता में तृतीय लिंग की अस्मिता और संघर्ष को उजागर करने वाली प्रमुख रचनाओं पर

टिप्पणी लिखिए।

15. पाश्चात्य विद्वानों ने उत्तर आधुनिकतावाद को किस प्रकार परिभाषित किया है?
16. ल्योत्यार के विचारों से आप किस हद तक सहमत है?
17. क्या साहित्य इतिहास निरपेक्ष हो सकता है? अपना विचार प्रकट कीजिए।
18. जेम्सन के विचारों से आप किस हद तक सहमत है? **(6X5 = 30 Marks)**

SECTION C

III. किन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर लिखिए। प्रत्येक उत्तर तीन पृष्ठों के अन्तर्गत हों।

19. रोलां बार्थ की प्रमुख साहित्यिक अवधारणाएँ क्या-क्या थी?
20. प्राच्यवाद अथवा ओरिएंटलिज्म की मुख्य मान्यताएँ क्या-क्या है?
21. उत्तर आधुनिकतावाद के प्रमुख सिद्धांतों और उनके आलोचनात्मक पहलुओं पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
22. उत्तर आधुनिकता भारत के लिए एक मिले जाले विचार और धारणाओं के प्रतिफलस्वरूप सादृश्य है। अपना विचार प्रकट कीजिए। **(2X15 = 30 Marks)**

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श

Course Code: M23HD10DC

വിദ്യകൊണ്ട് സ്വതന്ത്രരാവുക

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

ISBN 978-81-985080-0-3

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841